THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

५

ॐ

रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला.

श्रीपञ्चास्तिकायसमयसारः ।

इंदसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥ १ ॥

संस्कृतछाया.

इन्द्रशतवन्दितेभ्यस्त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः ।
अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः ॥ १ ॥

पदार्थ—[जिनेभ्यो नमः] सर्वज्ञ वीतरागको नमस्कार होहु । अनादि चतुर्गति संसारके कारण, रागद्वेषमोहजनित अनेक दुःखोंको उपजानेवाले जो कर्मरूपी शत्रु तिनको जीतनहारे होयँ सो ही जिन है. तिस ही जिनपदको नमस्कार करना योग्य है. अन्य कोई भी देव वंदनीक नहीं हैं. क्योंकि अन्य देवोंका स्वरूप रागद्वेषरूप होता है, और जिनपद वीतराग है, इस कारण कुंदकुंदाचार्यने इनको ही नमस्कार किया. ये ही परम मंगलस्वरूप हैं। कैसे हैं सर्वज्ञ वीतरागदेव? **[इन्द्रशतवन्दितेभ्यः]** सौ इन्द्रोंकर वंदनीक हैं; अर्थात् भवनवासी देवोंके ४० इन्द्र, व्यंतर देवोंके ३२, कल्पवासी देवोंके २४, ज्योतिषी देवोंके २, मनुष्योंका १, और तिर्यंचोंका १, इस प्रकार सौ इन्द्र अनादिकालसे वर्तते हैं, सर्वज्ञ वीतराग देव भी अनादि कालसे हैं, इस कारण १०० इन्द्रोंकर नित्य ही वंदनीय हैं, अर्थात् देवाधिदेव त्रैलोक्यनाथ हैं। फिर कैसे हैं? **[त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः]** तीन लोकके जीवोंके हितकरनेवाले मधुर (मिष्ट—प्रिय), और विशद कहिये निर्मल हैं वाक्य जिनके ऐसे हैं । अर्थात् स्वर्गलोक मध्यलोक अधोलोकवर्त्ती जो समस्त जीव हैं, तिनको अखंडित निर्मल आत्मतत्त्वकी प्राप्तिकेलिये अनेक प्रकारके उपाय बताते हैं, इस कारण हितरूप हैं. तथा वे ही वचन मिष्ट हैं, क्योंकि जो परमार्थी रसिक जन हैं, तिनके

(१) "भवणालयचालीसा विंतरदेवाण होंति बत्तीसा ॥
कप्पामरचउवीसा चंदो सूरो णरो तिरओ ॥ १ ॥"

मनको हरते हैं, इस कारण अतिशय मिष्ट (प्रिय) हैं, और वे ही वचन निर्मल हैं, क्योंकि जिन वचनोंमें संशय, विमोह विभ्रम, ये तीन दोष वा पूर्वापर विरोधरूपी दोष नहिं लगते हैं; इसकारण निर्मल हैं। ये ही (जिनेन्द्र भगवान्के अनेकान्तरूप) वचन समस्त वस्तुवोंके स्वरूपको यथार्थ दिखाते हैं; इसकारण प्रमाणभूत हैं; और जो अनुभवी पुरुष हैं, वे ही इन वचनोंको अंगीकार करनेके पात्र हैं। फिर कैसे हैं जिन? [अन्तातीतगुणेभ्यः] कहिये अन्तरहित हैं गुण जिनके, अर्थात् क्षेत्रकर तथा कालकर जिनकी मर्यादा (अन्त) नहीं ऐसे परम चैतन्य शक्तिरूप समस्त वस्तुवोंको प्रकाश करनेवाले अनन्तज्ञान अनन्त दर्शनादि गुणोंका अन्त (पार) नहीं है। फिर कैसे हैं जिन? [जितभवेभ्यः] जीता है पंचपरावर्त्तनरूप अनादि संसार जिन्होंने, अर्थात्—जो कुछ करना था सो करलिया, संसारसे मुक्त (पृथक्) हुये और जो पुरुष कृतकृत्य दशाको (मोक्षावस्थाको) प्राप्त नहिं हुये उन पुरुषोंको शरणरूप हैं. ऐसे जो जिन हैं, तिनको नमस्कार होहु ॥

आगे आचार्यवर जिनागमको नमस्कार करके पंचास्तिकायरूप समयसार ग्रंथके कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं।

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमियं सुणह वोच्छामि ॥ २ ॥

संस्कृतछाया.

श्रमणमुखोद्गतार्थं चतुर्गतिनिवारणं सनिर्वाणं।
एष प्रणम्य शिरसा समयमिमं शृणुत वक्ष्यामि ॥ २ ॥

पदार्थ—[**अहं इमं समयं वक्ष्यामि**] मैं कुंदकुंदाचार्य जो हूं सो इस पंचास्तिकायरूप समयसार नामक ग्रन्थको कहूंगा. [**एष शृणुत**] इसको तुम सुनो. क्या करके कहूंगा? [**श्रमणमुखोद्गतार्थं शिरसा प्रणम्य**] श्रमण कहिये सर्वज्ञ वीतरागदेव मुनिके मुखसे उत्पन्न हुये पदार्थसमूहसहित वचन, तिनको मस्तकसे प्रणाम करके कहूंगा, क्योंकि सर्वज्ञके वचन ही प्रमाणभूत हैं, इस कारण इनके ही आगमको नमस्कार करना योग्य है, और इनका ही कथन योग्य है। कैसा है भगवत्प्रणीत आगम? [**चतुर्गतिनिवारणं**] नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, इन चार गतियोंको निवारण करनेवाला है, अर्थात् संसारके दुःखोंका विनाश करनेवाला है। फिर कैसा है आगम?—[**सनिर्वाणं**] मोक्षफलकर सहित है; अर्थात् शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप मोक्षपदका परंपरायकारणरूप है. इस प्रकार भगवत्प्रणीत आगमको नमस्कार करके पंचास्तिकाय नामक समयसारको कहूंगा.

आगम दो प्रकारका है:—एक **अर्थसमयरूप** है, एक **शब्दसमयरूप** है. शब्दसमयरूप जो आगम है सो अनेक शब्दसमयकर कहा जाता है. अर्थसमय वह है जो भगवत्प्रणीत है।

आगे शब्द, ज्ञान, अर्थ, इन तीनों भेदोंसे समयशब्दका अर्थ और लोकालोकका भेद कहते हैं:—

समवाउ पंचण्हं समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं ।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं ॥ ३ ॥

संस्कृतछाया.

समवायो वा पंचानां समय इति जिनोत्तमैः प्रज्ञप्तं ।
स एव च भवति लोकस्ततोऽमितोऽलोकः खं ॥ ३ ॥

पदार्थ—पंचास्तिकायका जो [**समवायः**] समूह सो समय है. [**इति**] इस प्रकार [**जिनोत्तमैः**] सर्वज्ञ वीतराग देव करके [**प्रज्ञप्तं**] कहा गया है, अर्थात्, समय शब्द तीन प्रकार है:—जैसे शब्दसमय, ज्ञानसमय, और अर्थसमय. इन तीनों भेदोंसे जो न पंचास्तिकायकी रागद्वेषरहित यथार्थ अक्षर, पद वाक्यकी रचना सो द्रव्यश्रुतरूप शब्दसमय है; और उस ही शब्दश्रुतका मिथ्यात्वभावके नष्ट होनेसे जो यथार्थ ज्ञान होय सो भावश्रुतरूप ज्ञानसमय है; और जो सम्यग्ज्ञानकेद्वारा पदार्थ जाने जाते हैं, उनका नाम अर्थसमय कहा जाता है. [**स एव च**] वह ही अर्थसमय पंचास्तिकायरूप सबका सब [**लोकः भवति**] लोक नामसे कहा जाता है. [**ततः**] तिस लोकसे भिन्न [**अमितः**] मर्यादारहित अनन्त [**खं**] आकाश है सो [**अलोकः**] अलोक है ।

भावार्थ—अर्थसमय लोक अलोकके भेदसे दो प्रकार है. जहां पंचास्तिकायका समूह है वह तो लोक है, और जहां अकेला आकाश ही है उसका नाम अलोक है ।

यहां कोई प्रश्न करे कि, षड्द्रव्यात्मक लोक कहा गया है सो यहां पंचास्तिकायकी लोक संज्ञा क्यों कही ? तिसका समाधानः—

यहां (इस ग्रन्थमें) मुख्यतासे पंचास्तिकायका कथन है. कालद्रव्यका कथन गौण है. इस कारण लोकसंज्ञा पंचास्तिकायकी ही कही है । कालका कथन नहीं किया है. उसमें मुख्य गौणका भेद है. षड्द्रव्यात्मक लोक यह भी कथन प्रमाण है, परन्तु यहांपर विवक्षा नहीं है ।

आगे पंचास्तिकायके विशेष नाम और सामान्य विशेष अस्तित्व और कायको कहते हैं:—

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आयासं ।
अत्थित्तह्मि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता ॥ ४ ॥

संस्कृतछाया.

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ तथैव आकाशम् ।
अस्तित्वे च नियता अनन्यमया अणुमहान्तः ॥ ४ ॥

पदार्थ—[**जीवाः**] अनन्त जीवद्रव्य, [**पुद्गलकायाः**] अनन्त पुद्गलद्रव्य, [**धर्माधर्मौ**] एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, [**तथैव**] तैसे ही [**आकाशं**] एक

आकाशद्रव्य, इन द्रव्योंके विशेष नाम सार्थक पंचास्तिकाय जानना. [**अस्तित्वे च**] और पंचास्तिकाय अपने सामान्य विशेष अस्तित्वमें [**नियताः**] निश्चित हैं, और [**अनन्यमयाः**] अपनी सत्तासे भिन्न नहीं हैं। अर्थात्—जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप हैं सो सत्ता है, और जो सत्ता है सो ही अस्तित्व कहा जाता है। वह अस्तित्व सामान्य-विशेषात्मक है। ये पंचास्तिकाय अपने अपने अस्तित्वमें है. अस्तित्व है सो अभेदरूप है. ऐसा नहीं है, जैसेंकि किसी वर्तनमें कोई वस्तु हो, किन्तु जैसे घटपटरूप होता है, वा अग्नि उष्णता एक है। जिनेन्द्र भगवान्ने दो नय वताये हैं:—एक द्रव्यार्थिकनय, और दूसरा पर्यायार्थिकनय है। इन दो नयोंके आश्रय ही कथन है। यदि इनमेंसे एक नय न हो तो तत्त्व कहे नहिं जायँ, इस कारण अस्तित्व गुण होनेके कारण द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यमें अभेद है. पर्यायार्थिकनयसे भेद है. जैसें गुण गुणीमें होता है. इस कारण अस्तित्व विषै तो ये पंचास्तिकाय वस्तुसे अभिन्नही हैं। फिर पंचास्तिकाय कैसे हैं कि, [**अणुमहान्तः**] निर्विभाग मूर्त्तीक अमूर्त्तीक प्रदेशन कर वडे है, अनेक प्रदेशी हैं।

भावार्थ—ये जो पहिले पांच द्रव्य अस्तित्वरूप कहे वे कायवन्त भी हैं, क्योंकि ये सव ही अनेक प्रदेशी हैं। एक जीवद्रव्य, और धर्म, अधर्मद्रव्य ये तीनों ही असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश अनंत प्रदेशी है। वहु प्रदेशीको काय कहा गया है। इस कारण ये ४ द्रव्य तो अखण्ड कायवन्त हैं। पुद्गलद्रव्य यद्यपि परमाणुरूप एक प्रदेशी है, तथापि मिलन शक्ति है, इस कारण काय कहिये है. द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अनन्त परमाणुस्कंध पर्यन्त व्यक्तिरूप पुद्गल कायवन्त कहा जाता है. इस कारण पुद्गलसहित ये पांचों ही अस्तिकाय जानने। कालद्रव्य (कालाणु) एक प्रदेशी है, शक्तिव्यक्तिकी(?) अपेक्षासे कालाणुवोंमें मिलन शक्ति नहीं है, इस कारण कालद्रव्य कायवन्त नहीं है।

आगे पंचास्तिकायके अस्तित्वका स्वरूप दिखाते हैं, और काय किस प्रकारसे है सो भी दिखाया जाता है:—

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
जे होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं ॥ ५ ॥

संस्कृतछाया.

येषामस्तिस्वभावः गुणैः सह पर्यायैर्विविधैः।
ते भवन्त्यस्तिकायाः निष्पन्नं यैस्त्रैलोक्यम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—[**येषां**] जिन पंचास्तिकायोंका [**विविधैः**] नाना प्रकारके [**गुणैः**] सहभूतगुण और [**पर्यायैः**] व्यतिरेकरूप अनेक पर्यायोंके [**सह**] सहित [**अस्तिस्वभावः**] अस्तित्वस्वभाव है [**ते**] वे ही पंचास्तिकाय [**अस्तिकायाः**] अस्तिकायवाले

[**भवन्ति**] हैं। कैसे हैं वे पंचास्तिकाय? [**यैः**] जिनकेद्वारा [**त्रैलोक्यं**] तीन लोक [**निष्पन्नं**] उत्पन्न हुये हैं।

भावार्थ—इन पंचास्तिकायनिको नानाप्रकारके गुणपर्यायके स्वरूपसे भेद नहीं है, एकता है। पदार्थोंमें अनेक अवस्थारूप जो परिणमन है, वे पर्यायें कहलातीं हैं. और पदार्थमें सदा अविनाशी साथ रहते हैं, वे गुण कहे जाते हैं। इस कारण एक वस्तु एक पर्यायकर उपजती है, और एक पर्यायकर नष्ट होती है, और गुणोंकर ध्रौव्य है. यह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वस्तुका अस्तित्वस्वरूप जानना, और जो गुणपर्यायोंसे सर्वथा प्रकार वस्तुकी पृथकता ही दिखाई जाय तो अन्य ही विनशै, और अन्य ही उपजै, और अन्य ही ध्रुव रहै. इस प्रकार होनेसे वस्तुका अभाव होजाता है. इस कारण कथंचित् साधनिका मात्र भेद है. स्वरूपसे तो अभेदही है। इस प्रकार पंचास्तिकायका अस्तित्व है। इन पांचों द्रव्योंको कायत्व कैसे है, सो कहते हैं कि, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये पांच पदार्थ अंशरूप अनेक प्रदेशोंको लिये हुये हैं। वे प्रदेश परस्पर अंश कल्पनाकी अपेक्षा जुदे जुदे हैं. इस कारण इनका भी नाम पर्याय है, अर्थात् उन पांचों द्रव्योंकी उन प्रदेशोंसे स्वरूपमें एकता है, भेद नहीं है अखंड है, इस कारण इन पांचों द्रव्योंको कायवंत कहा गया है।

यहां कोई प्रश्न करै कि, पुद्गल परमाणु तो अप्रदेश हैं, निरंश हैं, इनको कायत्व कैसे होय? तिसका उत्तर यह है कि:—पुद्गल परमाणुवोंमें मिलनशक्ति है, स्कन्धरूप होते हैं इस कारण सकाय हैं. इस जगह कोई यह आशंका मत करो कि, पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, इसमें अंशकल्पना वनती है; और जो जीव, धर्म, अधर्म, आकाश ये ४ द्रव्य हैं सो अमूर्तीक हैं, और अखंड हैं; इनमें अंशकथन वनता नहीं, पुद्गलमें ही वनता है। मूर्तीक पदार्थको कायकी सिद्धि होय है, इस कारण इन चारोंको अंशकल्पना मत कहो, क्योंकि अमूर्त्त अखंड वस्तुमें भी प्रत्यक्ष अंशकथन देखनेमें आता है: यह घटाकाश है, यह घटाकाश नहीं है, इस प्रकार आकाशमें भी अंशकथन होता है। इस कारण कालद्रव्यके विना अन्य पांच द्रव्योंको अंशकथन और कायत्वकथन किया गया है. इन पंचास्तिकायोंसे ही तीन लोककी रचना हुई है. इन ही पांचों द्रव्योंके उत्पादव्ययध्रौव्यरूप भाव त्रैलोक्यकी रचनारूप हैं। धर्म, अधर्म, आकाशका परिणमन ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मध्यलोक, इस प्रकार तीन भेद लिये हुये हैं। इस कारण इन तीनों द्रव्योंमें कायकथन, अंशकथन है; और जीवद्रव्य भी दण्ड कपाट प्रतर पूर्ण अवस्थावोंमें लोकप्रमाण होता है. इस कारण जीवमें भी सकाय वा अंशकथन है। पुद्गलद्रव्यमें मिलनशक्ति है, इस कारण व्यक्तरूपमहास्कन्धकी अपेक्षासे ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मध्यलोक इन तीनो लोकरूप परिणमता है. इस कारण अंशकथन पुद्गलमें भी सिद्ध होता है। इन पंचास्तिकायोंकेद्वारा लोककी सिद्धि इसी प्रकार है।

आगे पंचास्तिकाय और कालको द्रव्यसंज्ञा कहते हैं:—

ते चेव अत्थिकाया ते कालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता॥ ६॥

संस्कृतछाया.

तेचैवास्तिकायाः त्रैकालिकभावपरिणता नित्याः।
गच्छन्ति द्रव्यभावं परिवर्त्तनलिङ्गसंयुक्ताः॥ ६॥

पदार्थ—[**परिवर्त्तनलिङ्गसंयुक्ताः**] पुद्गलादि द्रव्योंका परिणमन सो ही है लिङ्ग (चिह्न) जिसका ऐसा जो काल, तिसकर संयुक्त [**ते एव**] वे ही [**अस्तिकायाः**] पंचास्तिकाय [**द्रव्यभावं**] द्रव्यके स्वरूपको [**गच्छन्ति**] [प्राप्त होते हैं. अर्थात् पुद्गलादि द्रव्योंके परिणमनसे कालद्रव्यका अस्तित्व प्रगट होता है। पुद्गल परमाणु एक प्रदेशसे प्रदेशान्तरमें जब जाता है, तब उसका नाम सूक्ष्मकालकी पर्याय अविभागी होता है. समयकाल पर्याय है। उसी समय पर्यायकेद्वारा कालद्रव्य जाना गया है. इस कारण पुद्गलादिकके परिणमनसे कालद्रव्यका अस्तित्व देखनेमें आता है। कालकी पर्यायको जाननेके लिये बहिरंग निमित्त पुद्गलका परिणाम है। इसी अकाय कालद्रव्यसहित उक्त पंचास्तिकाय ही षड्द्रव्य कहलाते हैं। जो अपने गुण पर्यायोंकर परिणमा है, परिणमता है, और परिणमैगा उसका नाम द्रव्य है। ये षड्द्रव्य कैसे हैं कि,–[**त्रैकालिकभावपरिणताः**] अतीत, अनागत, वर्तमान काल संबंधी जो भाव कहिये गुणपर्याय हैं उनसे परिणये हैं. फिर कैसे हैं ये षड्द्रव्य?– [**नित्याः**] नित्य अविनाशीरूप हैं। **भावार्थ**–यद्यपि पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे त्रिकालपरिणामीकर विनाशीक हैं; परन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा टंकोत्कीर्णरूप (टांकीसे उकेरे हुयेकी समान जैसेका तैसा) सदा अविनाशी हैं।

आगे यद्यपि षड्द्रव्य परस्पर अत्यन्त मिलेहुये हैं, तथापि अपने स्वरूपको छोडते नहीं ऐसा कथन करते हैं:—

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति॥ ७॥

संस्कृतछाया.

अन्योऽन्यं प्रविशन्ति ददन्त्यवकाशमन्योऽन्यस्य॥
मिलन्त्यपि च नित्यं स्वकं स्वभावं न विजहन्ति॥ ७॥

पदार्थ—[**अन्योऽन्यं प्रविशन्ति**] छहों द्रव्य परस्पर सम्बन्ध करते हैं, अर्थात् एक दूसरेसे मिलते हैं, और [**अन्योऽन्यं**] परस्पर एक दूसरेको [**अवकाशं**] स्थान-दान [**ददन्ति**] देते हैं. कोई भी द्रव्य किसी द्रव्यको भी बाधा नहीं देता [**अपि च**] और [**नित्यं**] सदाकाल [**मिलन्ति**] मिलते रहते हैं. अर्थात् परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप

मिलते हैं, तथापि [**स्वकं**] आत्मीक शक्तिरूप [**स्वभावं**] परिणामोंको [**न विजहन्ति**] नहीं छोडते हैं।

भावार्थ—यद्यपि छहों द्रव्य एक क्षेत्रमें रहते हैं, तथापि अपनी २ सत्ताको कोई भी द्रव्य छोडता नहीं है। इस कारण ये द्रव्य मिलकर एक नहीं हो जाते. सब अपने २ स्वभावको लिये पृथक् २ अविनाशी रहते हैं। यद्यपि व्यवहारनयसे वंधकी अपेक्षासे जीव पुद्गल एक है, तथापि निश्चयनयकर अपने स्वरूपको छोडते नहीं है।

आगे सत्ताका स्वरूप कहते हैं:—

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का॥ ८॥

संस्कृतछाया.

सत्ता सर्वपदस्था सविश्वरूपा अनन्तपर्याया॥
भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका सप्रतिपक्षा भवत्येका॥ ८॥

पदार्थ—[**सत्ता**] अस्तित्वस्वरूप [**एका**] एक [**भवति**] है. फिर कैसी है? [**सर्वपदस्था**] समस्त पदार्थोंमें स्थित है [**सविश्वरूपा**] नानाप्रकारके स्वरूपोंसे संयुक्त है [**अनन्तपर्य्याया**] अनन्त हैं परिणाम जिसविषै ऐसी है [**भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका**] उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है [**सप्रतिपक्षा**] प्रतिपक्षसंयुक्त है।

भावार्थ—जो अस्तित्व है, सो ही सत्ता है. जो सत्ता लिये है, वही वस्तु है. वस्तु नित्य अनित्य स्वरूप है। यदि वस्तुको सर्वथा नित्य ही माना जाय तो सत्ताका नाश होजाय; क्योंकि नित्य वस्तुमें क्षणवर्त्ती पर्यायके अभावसे परिणामका अभाव होता है. परिणामके अभावसे वस्तुका अभाव होता है। जैसे मृत्पिंडादिक पर्यायोंके नाश होनेसे मृत्तिकाका नाश होता है। कदाचित् वस्तुको क्षणिक ही माना जाय तो यह वस्तु वही है जो मैंने पहिले देखी थी. इस प्रकारके ज्ञानका नाश होनेसे वस्तुका अभाव हो जायगा. इस कारण यह वस्तु जो है, सो मैंने पहिले देखी थी, ऐसे ज्ञानके निमित्त वस्तुको ध्रौव्य (नित्य) मानना योग्य है। जैसे बालक युवा वृद्धावस्था विषैं पुरुष वही नित्य रहता है. उसी प्रकार अनेक पर्यायोंमें द्रव्य नित्य है। इस कारण वस्तु नित्य अनित्य स्वरूप है, और इसीसे यह बात सिद्ध हुई कि, वस्तु जो है सो उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है. पर्यायोंकी अनित्यताकी अपेक्षासे उत्पादव्ययरूप है, और गुणोंकी नित्यता होनेकी अपेक्षा ध्रौव्य है. इस प्रकार तीन अवस्थाको लिये वस्तु सत्तामात्र होता है। सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है। यद्यपि नित्य अनित्यका भेद है, तथापि कथंचित्प्रकार सत्ताकी अपेक्षासे एकता है। सत्ता वही है जो नित्यानित्यात्मक है। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक जो है, सो सकल विस्तारलिये पदार्थोंमें सामान्य कथनके करनेसे सत्ता एक है, समस्त पदार्थोंमें रहती है. क्योंकि 'पदार्थ है' ऐसा जो कथन है, और 'पदार्थ है' ऐसी जो जाननेकी प्रतीति है सो उत्पादव्यय-

ध्रौव्यस्वरूप है; उसीसे सत्ता है। यदि सत्ता नहि होय तो पदार्थोंका अभाव होजाय, क्योंकि सत्ता मूल है, और जितना कुछ समस्त वस्तुका विस्तार स्वरूप है, सो भी सत्तासे गर्भित है। और अनंत पर्यायोंके जितने भेद हैं, उतने सब इन उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप भेदोंसे जाने जाते हैं। यह ही सामान्य स्वरूप सत्ता विशेषताकी अपेक्षासे प्रतिपक्ष लिये है। इस कारण सत्ता दो प्रकारकी है. अर्थात् महासत्ता और अवान्तर सत्ता। जो सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यरूप त्रिलक्षणसंयुक्त है, और एक है, तथा समस्त पदार्थोंमें रहती है, समस्तरूप है, और अनन्तपर्यायात्मक है सो तो महासत्ता है. और जो इसकी ही प्रतिपक्षिणी है, सो अवान्तरसत्ता है। सो यह महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है। उत्पादादि तीन लक्षण-गर्भित नहीं है, अनेक है. एक पदार्थमें रहती है, एक स्वरूप है; एक पर्यायात्मक है. इस प्रकार प्रतिपक्षिणी अवान्तरसत्ता जाननी। इन दोनोंमेंसे जो समस्त पदार्थोंमें सामान्य-रूपसे व्याप रही है, वह तो महासत्ता है। और जो दूसरी है सो अपने एक एक पदार्थके स्वरूपविषै निश्चिन्त विशेषरूप वर्तै है. इस कारण उसे अवान्तरसत्ता कहते हैं। महासत्ता अवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है. अवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है. इसी प्रकार सत्ताकी असत्ता है. उत्पादादि तीन लक्षणसंयुक्त जो सत्ता है, वह ही तीन लक्षणसंयुक्त नहीं है। क्योंकि जिस स्वरूपसे उत्पाद है, उसकर उत्पाद ही है; जिस स्वरू-कर व्यय है, उसकर व्ययही है; जिस स्वरूपकर ध्रौव्यता है, उसकर ध्रौव्य ही है. इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य जो वस्तुके स्वरूप हैं, उनमें एक एक स्वरूपको उत्पादादि तीन लक्षण नहीं होते. इसी कारण तीन लक्षणरूप सत्ताके तीन लक्षण नहीं हैं; और उस ही महासत्ताको अनेकता है, क्योंकि निज निज पदार्थोंमें जो सत्ता है उससे पदार्थोंका निश्चय होता है। इस कारण सर्वपदार्थव्यापिनी महासत्ता निज २ एक पदार्थकी अपेक्षासे एक एक पदार्थविषै तिष्ठे है, ऐसी है। और जो वह महासत्ता सकलस्वरूप है, सो ही एकरूप है, क्योंकि अपने अपने पदार्थोंमें निश्चित एक ही स्वरूप है। इस कारण सकल स्वरूप सत्ताको एकरूप कहा जाता है, और जो वह महासत्ता अनंतपर्य्यायात्मक है, उसीको एक पर्यायस्वरूप कहते है; क्योंकि अपने २ पर्यायोंकी अपेक्षासे द्रव्योंकी अनन्त सत्ता हैं। एक द्रव्यके निश्चित पर्यायकी अपेक्षासे एकपर्यायरूप कहा जाता है. इसकारण अनन्तपर्यायस्वरूप सत्ताको एक पर्यायस्वरूप कहते हैं। यह जो सत्ताका स्वरूप कहा, तिसमें कुछ विरोध नहीं है. क्योंकि भगवान्का उपदेश सामान्यविशेषरूप दो नयोंके आधीन है. इसकारण महासत्ता और अवान्तर सत्तावोंमें कोई विरोध नहीं है॥

आगे सत्ता और द्रव्यमें अभेद दिखाते हैं,—

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो॥ ९॥

संस्कृतछाया.

द्रवति गच्छति तांस्तान् सद्भावपर्यायान् यत् ।
द्रव्यं तत् भणन्ति अनन्यभूतं तु सत्तातः ॥ ९ ॥

पदार्थ—[**यत्**] जो सत्तामात्रवस्तु [**तान्तान्**] उन उन अपने [**सद्भावपर्यायान्**] गुणपर्य्यायस्वभावनको [**द्रवति गच्छति**] प्राप्त होती है अर्थात् एकताकर व्याप्त होती है [**तत्**] सो [**द्रव्यं**] द्रव्यनाम [**भणन्ति**] आचार्यगण कहते हैं । अर्थात्—द्रव्य उसको कहते हैं कि जो अपने सामान्यस्वरूपकरके गुणपर्यायोंसे तन्मय होकर परिणमे । [**तु**] हि फिर वह द्रव्य निश्चयसे [**सत्तातः**] गुणपर्यायात्मकसत्तासे [**अनन्यभूतं**] जुदा नहीं है ।

भावार्थ—यद्यपि कथंचित्प्रकार लक्ष्यलक्षण भेदसे सत्तासे द्रव्यका भेद है तथापि सत्ता और द्रव्यका परस्पर अभेद है । लक्ष्य वह होता है कि जो वस्तु जानी जाय. लक्षण वह होता हैं कि जिसकेद्वारा वस्तु जानी जाय. द्रव्य लक्ष्य है. सत्ता लक्षण है । लक्षणसे लक्ष्य जाना जाता है । जैसे उष्णतालक्षणसे लक्ष्यस्वरूप अग्नि जानी जाती है । तैसे ही सत्ता लक्षणकेद्वारा द्रव्यलक्ष्य लखिये है अर्थात् जाना जाता है । इस कारण पहिले जो सत्ताके लक्षण अस्तित्वस्वरूप, नास्तित्वस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूपसे रहित, एकस्वरूप और अनेकस्वरूप, सकलपदार्थव्यापी और एक पदार्थव्यापी, सकलरूप और एकरूप, अनन्तपर्यायरूप और एकपर्यायरूप इस प्रकार कहे थे, सो सब ही पृथक् नहीं हैं, एक स्वरूप ही हैं । यद्यपि वस्तुस्वरूपको दिखानेकेलिये सत्ता और द्रव्यमें भेद कहते हैं. तथापि वस्तुस्वरूपसे विचार किया जाय तो कोई भेद नहीं है । जैसे उष्णता और अग्नि अभेदरूप हैं ।

आगें द्रव्यके तीन प्रकार लक्षण दिखाते हैं,

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥ १० ॥

संस्कृतछाया.

द्रव्यं सल्लक्षणकं उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तं ।
गुणपर्यायाश्रयं वा यत्तद्भणन्ति सर्वज्ञाः ॥ १० ॥

पदार्थ—[**यत्**] जो [**सल्लक्षणकं**] सत्ता है लक्षण जिसका ऐसा है [**तत्**] तिस वस्तुको [**सर्वज्ञाः**] सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं ते [**द्रव्यं**] द्रव्य [**भणन्ति**] कहते हैं [**वा**] अथवा [**उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तं**] उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्त द्रव्यका लक्षण कहते हैं । [**वा**] अथवा [**गुणपर्यायाश्रयं**] गुणपर्यायका जो आधार है, उसको द्रव्यका लक्षण कहते हैं ।

भावार्थ—द्रव्यके तीन प्रकारके लक्षण हैं. एक तो द्रव्यका सत्तालक्षण है. दूसरा उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तलक्षण है. तीसरा गुणपर्यायश्रित लक्षण है. इन तीनों ही लक्षणोंमें पहिले २ लक्षण सामान्य हैं अगले २ विशेष हैं, सो दिखाया जाता है. जो प्रथम ही सत्लक्षण कहा, वह तो सामन्य कथनकी अपेक्षा द्रव्यका लक्षण जानना । द्रव्य अनेकान्त स्वरूप है. द्रव्यका सर्वथाप्रकार सत्ता ही लक्षण है. इस प्रकार कहनेसे लक्ष्य लक्षणमें भेद नहिं होता. इस कारण द्रव्यका लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्य भी जानना। एक वस्तुमें अविरोधी जो क्रमवर्त्ती पर्याय हैं, उनमें पूर्व भावोंका विनाश होता है, अगले भावोंका उत्पाद होता है, इस प्रकार उत्पादव्ययके होतेहुये भी द्रव्य अपने निजस्वरूपको नहिं छोडता है, वही ध्रौव्य है । ये उत्पादव्ययध्रौव्य ही द्रव्यके लक्षण हैं । ये तीनों भाव सामान्य कथनकी अपेक्षा द्रव्यसे भिन्न नहीं है । विशेष कथनकी अपेक्षा द्रव्यसे भेद दिखाया जाता है । एक ही समयमें ये तीनों भाव होते हैं, द्रव्यके स्वाभाविक लक्षण हैं. उत्पादव्यय-ध्रौव्य द्रव्यका विशेष लक्षण है. इस प्रकार सर्वथा कहा नहिं जाता, इस कारण गुण पर्याय भी द्रव्यका लक्षण है. कारण कि—द्रव्य अनेकान्तस्वरूप है. अनेकान्त तब ही होता है—जब कि द्रव्य अनन्तगुणपर्याय होंय । इसकारण गुण और पर्याय द्रव्यके स्वरूपको विशेष दिखाते हैं । जो द्रव्यसे सहभूतताकर अविनाशी हैं वे तो गुण हैं. जो क्रमवर्त्ती करकें विनाशीक हैं ते पर्य्याय हैं । ये द्रव्योंमें गुण और पर्याय कथंचित् प्रकारसे अभेद हैं और कथंचित्प्रकार भेदलिये हैं. संज्ञादि भेदकर तौ भेद है, वस्तुतः अभेद है। यह जो पहिले ही तीन प्रकार द्रव्यके लक्षण कहे, तिनमेंसे जो एक ही कोई लक्षण कहा जाय तो शेषके दो लक्षण भी उसमें गर्भित हो जाते हैं। यदि द्रव्यका लक्षण सत् कहा जाय तो उत्पादव्यय ध्रौव्य और गुणपर्यायवान् दोनों ही लक्षण गर्भित होते हैं. क्योंकि जो 'सत्' है सो नित्य अनित्यस्वरूप है. नित्य स्वभावमें ध्रौव्यता आती है. अनित्य स्वभावमें उत्पाद और व्यय आता हैं । इस प्रकार उत्पादव्ययध्रौव्य सत्लक्षणके कहनेसे आते हैं और गुणपर्याय लक्षण भी आता है. गुणके कहते ध्रौव्यता आती है और पर्यायके कहते उत्पादव्यय आते हैं । और इसी प्रकार उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण कहनेसे सत्लक्षण आता है. गुणपर्याय लक्षण भी आता है. और गुणपर्यायद्रव्यका लक्षण कहते सत्लक्षण आता है और उत्पादव्यय-ध्रौव्य लक्षण भी आता है. क्योंकि—द्रव्य नित्य अनित्यस्वरूप है. लक्षण नित्य अनित्य स्वरूपको सूचन करता है. इस कारण इन तीनों ही लक्षणोंमे सामान्य विशेषताकरके तो भेद है. वास्तवमें कुछ भी भेद नहीं है ।

आगें द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदकर द्रव्यके लक्षणका भेद दिखाते हैं ।

उप्पत्तीव विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करंति तस्सेव पज्जायाः ॥ ११ ॥

संस्कृतछाया.

उत्पत्तिर्वा विनाशो द्रव्यस्य च नास्त्यस्ति सद्भावः।
विगमोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति तस्यैव पर्यायाः॥ ११॥

पदार्थ—[**द्रव्यस्य**] अनादिनिधन त्रिकाल अविनाशी गुणपर्यायस्वरूपद्रव्यका [**उत्पत्ति**] उपजना [**वा**] अथवा [**विनाशः**] विनसना [**नास्ति**] नहीं है. [**च**] और [**सद्भावः**] सत्तामात्रस्वरूप [**अस्ति**] है [**तस्य एव**] तिस ही द्रव्यके [**पर्यायाः**] नित्य अनित्य परिणाम [**विगमोत्पादध्रुवत्वं**] उत्पादव्ययध्रौव्यको [**कुर्वन्ति**] करते हैं।

भावार्थ—अनादि अनंत अविनाशी टंकोत्कीर्ण गुणपर्यायस्वरूप जो द्रव्य है, सो उपजता विनशता नहीं है परन्तु उसी द्रव्यमें कइएक परिणाम अविनाशी हैं. कईएक परिणाम विनाशीक हैं। जो गुणरूप सहभावी हैं वे तो अविनाशी हैं और जो पर्यायरूप क्रमवर्त्ती हैं ते विनाशीक हैं। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्यार्थिकनयसे तो द्रव्य ध्रौव्य स्वरूप है और पर्यायार्थिकनयसे उपजै और विनशै भी है। इस प्रकार द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो नयोंके भेदसे द्रव्यस्वरूप निराबाध सधै है। ऐसा ही अनेकान्तरूप द्रव्यका स्वरूप मानना योग्य है।

आगें—यद्यपि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदसे द्रव्यमें भेद है तथापि अभेद दिखाते हैं,—

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति॥ १२॥

संस्कृतछाया.

पर्ययवियुतं द्रव्यं द्रव्यवियुक्ताश्च पर्याया न सन्ति।
द्वयोरनन्यभूतं भावं श्रमणा प्ररूपयन्ति॥ १२॥

पदार्थ—[**पर्ययवियुतं**] पर्यायरहित [**द्रव्यं न**] द्रव्य (पदार्थ) नहीं है [**च**] और [**द्रव्यवियुक्ताः**] द्रव्यरहित [**पर्यायाः**] पर्याय [**न सन्ति**] नहीं हैं [**श्रमणाः**] महामुनि जे हैं ते [**द्वयोः**] द्रव्य और पर्यायका [**अनन्यभूतं भावं**] अभेदस्वरूप [**प्ररूपयन्ति**] कहते हैं।

भावार्थ—जैसें गोरस अपने दूध दही घी आदिक पर्यायोंसे जुदा नहीं है, तिसी प्रकार ही द्रव्य अपनी पर्यायोंसे जुदा (पृथक्) नहीं है और पर्याय भी द्रव्यसे जुदे नहीं है. इसी प्रकार द्रव्य और पर्य्यायकी एकता है. यद्यपि कथंचित् प्रकार कथनकी अपेक्षा समझानेकेलिये भेद हैं तथापि वस्तुस्वरूपके विचारते भेद नहीं है. क्योंकि द्रव्य और पर्यायका परस्पर एक अस्तित्व है. जो द्रव्य न होय तो पर्यायका अभाव हो जाय और पर्याय नहिं होय तो द्रव्यका अभाव हो जाय। जिस प्रकार दुग्धादि पर्यायके अभावसे गोरसका

अभाव है और गौरसके अभावसे दुग्धादि पर्यायोंका अभाव होता है. इसीप्रकार इन दोनों द्रव्यपर्यायोंमेंसे एकका अभाव होनेसे दोनोंका अभाव होता है. इसकारण इन दोनोंमें एकता (अभेद) माननी योग्य है ।

आगें द्रव्य और गुणमें अभेद दिखाते हैं ।

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि ।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तह्मा ॥ १३ ॥

संस्कृतछाया.

द्रव्येन विना न गुणा गुणैर्द्रव्यं विना न सम्भवति ।
अव्यतिरिक्तो भावो द्रव्यगुणानां भवति तस्मात् ॥ १३ ॥

पदार्थ—[**द्रव्येन विना**] सत्तामात्र वस्तुके विना [**गुणाः**] वस्तुको जनानेवाले सहभूतलक्षणरूप गुण [**न सम्भवति**] नहीं होते [**गुणैः विना**] गुणोंके विना [**द्रव्यं**] द्रव्य [**न सम्भवति**] नहीं होता. [**तस्मात्**] तिस कारणसे [**द्रव्यगुणानां**] द्रव्य और गुणोंका [**अव्यतिरिक्तः**] जुदा नहीं है ऐसा [**भावः**] स्वरूप [**भवति**] होता है।

भावार्थ—द्रव्य और गुणोंकी एकता (अभिन्नता) है अर्थात् पुद्गलद्रव्यसे जुदे स्पर्श रस गन्ध वर्ण नहीं पाये जाते. सो दृष्टान्त विशेषताकर दिखाया जाता है । जैसें एक आम (आम्रफल) द्रव्य है और उसमें स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं. जो आम्रफल न होय तो जो स्पर्शादि गुण हैं, उनका अभाव हो जाय. क्योंकि आश्रयविना गुण कहांसे होय ? और जो स्पर्शादि गुण नहीं होय तो आमका (आम्रफलका) अभाव होय क्योंकि गुणके विना आमका अस्तित्व कहां ? अपने गुणोंकर ही आमका अस्तित्व है । इसी प्रकार द्रव्य और गुणकी एकता (अभेदता) जाननी. यद्यपि किसी ही एक प्रकारसे कथनकी अपेक्षा द्रव्य और गुणमें भेद भी है, तथापि वस्तुस्वरूपकर तो अभेद ही है ॥

आगें जिसकेद्वारा द्रव्यका स्वरूप निराबाध सधता है, ऐसी स्यात्पदगर्भित जो सप्तभङ्गिवाणी है, उसका स्वरूप दिखाया जाता है ।

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं ।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥ १४ ॥

संस्कृतछाया.

स्यादस्ति नास्त्युभयमवक्तव्यं पुनश्च तत्रितयं ।
द्रव्यं खलु सप्तभङ्गमादेशवशेन सम्भवति ॥ १४ ॥

पदार्थ—[**खलु**] निश्चयसे [**द्रव्यं**] अनेकान्तस्वरूप पदार्थ [**आदेशवशेन**] विवक्षाके वशसें [**सप्तभङ्गं**] सातप्रकारसे [**सम्भवति**] होता है । वे सात प्रकार कौन कौनसे हैं सो कहते हैं,—[**स्यात् अस्ति**] किस ही एक प्रकार अस्तिरूप है. [**स्यात्**

नास्ति] किस ही एक प्रकार नास्तिरूप है. [**उभयं**] किस ही एक प्रकार अस्तिनास्ति रूप है. [**अवक्तव्यं**] किस ही एक प्रकार वचनगोचर नहीं है. [**पुनश्च**] फिर भी [**तत् त्रितयं**] वे ही आदिके तीनों भंग अवक्तव्यसे कहिये हैं. प्रथम ही–[**स्यात् अस्ति अवक्तव्यं**] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्तिरूप अवक्तव्य है. दूसरा भंग–[**स्यात् नास्ति अवक्तव्यं**] किस ही एक प्रकार द्रव्य नास्तिरूप अवक्तव्य है और तीसरा भंग—[**स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यं**] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्ति नास्तिरूप अवक्तव्य है । ये सप्तभङ्ग द्रव्यका स्वरूप दिखानेकेलिये वीतरागदेवने कहे हैं । यही कथन विशेषताकर दिखाया जाता है ।

१. स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव इस अपने चतुष्टयकी अपेक्षा तो द्रव्य अस्तिस्वरूप है अर्थात् आपसा है ॥

२. परद्रव्य परक्षेत्र परकाल और परभाव इस परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य नास्ति स्वरूप है अर्थात् परसदृश नहीं है ।

३. उपर्युक्त स्वचतुष्टय परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य क्रमसे तीन कालमें अपने भावनिकर अस्तिनास्तिस्वरूप है. अर्थात् आपसा है परसदृश नहीं है ।

४. और स्वचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य एक ही काल वचनगोचर नही है, इस कारण अवक्तव्य है. अर्थात् कहनेमें नहीं आता ।

५. और वही स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्य अस्तिस्वरूप कहिये तथापि अवक्तव्य है ।

६. और वही द्रव्य परचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति स्वरूप है, तथापि कहा जाता नहीं ।

७. और वही द्रव्य स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और परचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही वार स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्तिस्वरूप है तथापि अवक्तव्य है ।

इन सप्तभङ्गोंका विशेष स्वरूप जिनागमसे (अन्यान्य जैनशास्त्रोंसे) जान लेना. हमसे अल्पज्ञोंकी बुद्धिमें विशेष कुछ आता नहीं है । कुछ संक्षेप मात्र कहते हैं । जैसें कि–एक ही पुरुष पुत्रकी अपेक्षा पिता कहाता है और वही पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र कहलाता है और वही पुरुष मामाकी अपेक्षा भाणजा कहलाता है और भाणजेकी अपेक्षा मामा कहलाता है. स्त्रीकी अपेक्षा भरतार (पति) कहलाता है. वहनकी अपेक्षा भाई भी कहलाता है. तथा वही पुरुष अपने वैरीकी अपेक्षा शत्रु कहलाता है और इष्टकी अपेक्षा मित्र भी कहलाता है. इत्यादि अनेक नातोंसे एक ही पुरुष कथंचित् अनेकप्रकार कहा जाता है. उसही प्रकार एक द्रव्य सप्तभङ्गकेद्वारा साधा जाता है ।

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति ॥ १५ ॥

संस्कृतछाया.

भावस्य नास्ति नाशो नास्ति अभावस्य चैव उत्पादः।
गुणपर्यायेषु भावा उत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति ॥ १५ ॥

पदार्थ—[**भावस्य**] सत्‌रूप पदार्थका [**नाशः**] नाश [**नास्ति**] नहीं है [**च एव**] और निश्चयसे [**अभावस्य**] अवस्तुका [**उत्पादः**] उपजना [**नास्ति**] नहीं है। यदि ऐसा है तो वस्तुके उत्पादव्यय किसप्रकार होते हैं? सो दिखाया जाता है. [**भावाः**] जो पदार्थ हैं ते [**गुणपर्यायेषु**] गुणपर्यायोंमें ही [**उत्पादव्ययान्**] उत्पाद और व्यय [**प्रकुर्वन्ति**] करते हैं।

भावार्थ—जो वस्तु है उसका तो नाश नहीं है और जो वस्तु नहीं है, उसका उत्पाद (उपजना) नहीं है। इसकारण द्रव्यार्थिकनयसे न तो द्रव्य उपजै है और न विनशै है। और जो त्रिकाल अविनाशी द्रव्यके उत्पादव्यय होते हैं, वे पर्यायार्थिक नयकी विवक्षाकर गुणपर्यायोंमें जानने। जैसें गोरस अपने द्रव्यत्वकर उपजता विनशता नहीं है—अन्यद्रव्यरूप होकर नहिं परणमता है आपसरीखा ही है, परन्तु उसी गोरसमें दधि, माखन, घृतादि, पर्याय उपजै विनशै हैं, वे अपने स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणोंके परिणमनसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाते हैं. इसी प्रकार द्रव्य अपने स्वरूपसे अन्यद्रव्यरूप होकरके नहिं परिणमता है. सदा आपसरीखा है. अपने २ गुण परिणामनसें एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाता है, इस कारण उपजते विनशते कहे जाते हैं।

आगें षड्द्रव्योंके गुणपर्याय कहते हैं।

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा (?) ॥ १६ ॥

संस्कृतछाया.

भावा जीवाद्या जीवगुणाश्चेतना चोपयोगः।
सुरनरनारकतिर्यञ्चो जीवस्य च पर्यायाः बहवः ॥ १६ ॥

पदार्थ—[**भावाः**] पदार्थ [**जीवाद्याः**] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये छै जानने। इन षट् द्रव्योंके जो गुण पर्याय हैं, वे सिद्धान्तोंमें प्रसिद्ध हैं, तथापि इनमें जीवनामा पदार्थ प्रधान है। उसका स्वरूप जाननेकेलिये असाधारण लक्षण कहा जाता है. [**जीवगुणाः चेतना च उपयोगः**] जीव द्रव्यका निज लक्षण एक तो शुद्धाशुद्ध अनुभूतिरूप चेतना है और दूसरा—शुद्धाशुद्धचैतन्यपरिणामरूप उपयोग है. ये जीवद्रव्यके गुण हैं. [**च**] फिर [**जीवस्य**] जीवके [**बहवः**] नानाप्रकारके, [**सुरनरनारकतिर्यञ्चः पर्यायाः**] देवता मनुष्य नारकी तिर्यञ्च ये अशुद्धपर्याय जानने।

भावार्थ—जीव द्रव्यके दो लक्षण हैं. एक तो चेतना है दूसरा उपयोग है। अनुभूतिका नाम चेतना है। वह अनुभूति ज्ञान, कर्म कर्मफलके भेदसे तीन प्रकारकी है। जो ज्ञानभावसे स्वरूपका वेदना सो तो **ज्ञानचेतना** है, और जो कर्मका वेदना सो **कर्मचेतना** है और कर्मफलका वेदना सो **कर्मफलचेतना** है । शुद्धाशुद्ध जीवका सामान्य लक्षण है। जो चैतन्यभावकी परणतिरूप होय प्रवर्तै सो **उपयोग** है. वह उपयोग दो प्रकारका है. एक सविकल्प और दूसरा निर्विकल्प। सविकल्प उपयोग तो ज्ञानका लक्षण है और निर्विकल्प दर्शनका लक्षण है। ज्ञान आठ प्रकारका है। कुमति १ कुश्रुति २ कुअवधि ३ मति ४ श्रुति ५ अवधि ६ मनःपर्यय ७ और केवल ८। दर्शन भी चक्षु अचक्षु अवधि और केवल इन भेदोंसे चार प्रकारका है। केवलज्ञान और केवल दर्शन ये दोय अखंड उपयोग शुद्ध जीवके लक्षण हैं. बाकीके दश उपयोग अशुद्ध जीवके होते हैं. ये तो जीवके गुण जानने। और जीवके पर्याय भी शुद्धाशुद्धके भेदसे दो प्रकारकी है। जो अगुरुलघु षड्गुणीहानिवृद्धिरूप आगम प्रमाणताकर जानी जाती है, वह तो शुद्ध पर्याय कहलाती है और जो परद्रव्यके संबंधसे चारगतिरूप नरनारकादि हैं, ते अशुद्ध आत्माकी पर्य्याय हैं।

आगें पदार्थके नाश और उत्पादको निषेधते हैं।

मणुसत्तणेण (?) णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्त जीवभावो ण णस्सदि जायदे अण्णो॥ १७॥

संस्कृतछाया.

मनुष्यत्वेन नष्टो देही देवो भवतीतरो वा।
उभयत्र जीवभावो न नश्यति न जायतेऽन्यः॥ १७॥

पदार्थ—[**मनुष्यत्वेन**] मनुष्य पर्यायसे [**नष्टः**] विनशा [**देही**] जीव [**देवः भवति**] देवपर्यायरूप परिणमता है। भावार्थ—अनादिकालसे लेकर यह संसारी जीव मोहके वशीभूत हो अज्ञानभावरूप परिणमता है । इसकारण स्वाभाविक षट्गुणी हानि वृद्धिरूप जे अगुरुलघुपर्याय धारावाही अखंडित त्रिकाल समयवर्त्ती है, तिन भावनपरिणमता नहीं है, विभाव भावनसे परिणमन होताहुवा मनुष्य देवता होता है. अथवा और नरकादि पर्यायोंको धारण करता है। पर्यायसे पर्यायान्तररूप होकर उपजै विनशै है। यद्यपि ऐसा है तथापि [**उभयत्र जीवभावः**] संसारी पर्यायकी अपेक्षा उत्पादव्ययके होतेसन्ते भी जीवभाव कहा जाता है. आत्माका निजस्वरूप [**न नश्यति**] नाश नहिं होता. [**न जायते**] और न उत्पन्न होता। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सदा टंकोत्कीर्ण अविनाशी है. सदा निःकलंक शुद्धस्वरूप है।

आगें यद्यपि पर्यायार्थिक नयसे कथंचित्प्रकारसे द्रव्य उपजता विनशता है, तथापि न उपजता है न विनशता है, ऐसा कहते हैं।

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्तिपज्जाओ ॥ १८ ॥

संस्कृतछाया.

स एव याति मरणं याति न नष्टो न चैवोत्पन्नः।
उत्पन्नश्च विनष्टो देवो मनुष्य इति पर्य्यायः ॥ १८ ॥

पदार्थ—[**स एव**] वह ही जीव [**याति**] उपजै है, जो कि [**मरणं**] मरण-भावसहित [**याति**] प्राप्त होता है. [**न नष्टः**] स्वभावसे वही जीव न विनशा है [**च**] और [**एव**] निश्चयसे [**न उत्पन्नः**] न उपजा है। सदा एकरूप है। तब कौन उपजा विनशा है? [**पर्यायः**] पर्याय ही [**उत्पन्नः**] उपजा [**च**] और [**विनष्टः**] विनशा है। कैसें? जैसें कि–[**देवः**] देवपर्याय उत्पन्न हुवा [**मनुष्यः**] मनुष्यपर्याय विनशा है [**इति**] यह पर्यायका उत्पादव्यय है. जीवको ध्रौव्य जानना।

भावार्थ—जो पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा पहिले पिछले पर्यायनिकर उपजता विनशता देखा जाता है, वही द्रव्य उत्पादव्यय अवस्थाके होतेसन्ते भी अपने अविनाशी स्वाभाविक एक स्वभावकर सदा न तो उपजता है और न विनशता है. और जो वे पूर्व उत्तर पर्याय हैं, वे ही विनाशीक स्वभावको धरै है। पहिले पर्यायोंका विनाश होता है अगले पर्यायोंका उत्पाद होता है। जो द्रव्य पहिले पर्यायोंमें तिष्ठता (रहता) है, वह ही द्रव्य अगले पर्यायोंमें विद्यमान है। पर्यायोंके भेदसे द्रव्योंमें भेद कहा जाता है. परंतु वह द्रव्य जिस समय जिन पर्यायोंसे परिणमता है, उस समय उन ही पर्यायोंसे तन्मय है. द्रव्यका यह ही स्वभाव है जो कि परिणमनसों एकभाव (एकता) धरता है। क्योंकि कथंचित्प्रकारसे परिणाम परिणामी (गुणगुणी)की एकता है। इसकारण परिणामनसे द्रव्य यद्यपि उपजता विनशता भी है, तथापि ध्रौव्य जानना।

आगें द्रव्यके स्वाभाविक ध्रौव्यभावकर 'सत्'का नाश नही, 'असत्'का उत्पाद नहीं, ऐसा कहते हैं।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ[1] जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो ॥ १९ ॥

संस्कृतछाया.

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य नास्त्युत्पादः।
तावज्जीवानां देवो मनुष्य इति गतिनामः ॥ १९ ॥

---

१ तावदिवो ऐसा भी पाठ है परन्तु हमें दोनोंके भी शुद्ध होनेमें संदेह है.

पदार्थ—[**एवं**] इस पूर्वोक्त प्रकारसे [**सतः**] स्वाभाविक अविनाशी स्वभावका [**विनाशः**] नाश [**न अस्ति**] नहीं है. [**असतः जीवस्य**] जो स्वाभाविक जीवभाव नहीं है तिसका [**उत्पादः**] उपजना [**नास्ति**] नहीं है [**तावत्**] प्रथम ही यह जीवका स्वरूप जानना. और [**जीवानां**] जीवोंका [**देव मनुष्यः इति**] देव है, मनुष्य है, इत्यादि कथन है सो [**गतिनामः**] गतिनामवाले नामकर्मकी विपाकअवस्थासे उत्पन्न हुवा कर्मजनित भाव है।

भावार्थ—जीव द्रव्यका कथन दो प्रकार है। एक तौ उत्पादव्ययकी मुख्यतालियेहुये, दूसरा ध्रौव्यभावकी मुख्यतालियेहुये। इन दोनों कथनोंमें जब ध्रौव्यभावकी मुख्यताकर कथन किया जाय, तव इस ही प्रकार कहा जाता है कि जो जीवद्रव्य मरता है, सो ही उपजता है. और जो उपजता है, वही मरता है। पर्यायोंकी परंपरामें यद्यपि अविनाशी वस्तुके कथनका प्रयोजन नहीं है, तथापि व्यवहारमात्र ध्रौव्यस्वरूप दिखानेकेलिये ऐसें ही कथन किया जाता है। और जो उत्पादव्ययकी अपेक्षा जीवद्रव्यका कथन किया जाता है कि और ही उपजै है, और ही विनशै है, सो यह कथन गतिनामकर्मके उदयसे जानना। कैसें कि जैसे,—मनुष्यपर्याय विनशै है, देवपर्याय उपजै है सो कर्मजनित विभावपर्यायकी अपेक्षा यह कथन अविरुद्ध है. इसकारण यह वात सिद्ध हुई कि ध्रौव्यताकी अपेक्षासे तो वही जीव उपजै और वही जीव विनशै है और उत्पादव्ययकी अपेक्षा अन्य जीव उपजै है और अन्यही विनशै है। यह ही कथन दृष्टान्तसे विशेष दिखाया जाता है। जैसें—एक वडा बांस है, उसमें क्रमसे अनेक पौरी हैं. उस वांसका जो विचार किया जाता है तो दो प्रकारके विचारसे उस वांसकी सिद्धि होती है. एक सामान्यरूप वांसका कथन है. एक उसमें विशेषरूप पौरियोंका कथन है. जब पौरियोंका कथन किया जाता है तो जो पौरी अपने परिणामको लियेहुये जितनी हैं, उतनी ही हैं। अन्य पौरीसे मिलती नहीं हैं. अपने अपने परिमाणलियेहुये सब पौरी न्यारी न्यारी हैं. वांस सब पौरियोंमें एक ही है. जव वांसका विचार पौरियोंकी पृथक्तासे किया जाय, तब बांसका एक कथन आवै नही. जिस पौरीकी अपेक्षासे वांस कहा जाय सो तिस ही पौरीका वांस होता है. उसको और पौरीका वांस नहिं कहा जाता. अन्य पौरीकी अपेक्षा वही वांस अन्य पौरीका कहा जाता है, इस प्रकार पौरियोंकी अपेक्षासे बांसकी अनेकता है और जो सामान्यरूप सब पौरियोंमें वांसका कथन न किया जाय तौ एक वांसका कथन कहा जाता है. इस कारण वांसकी अपेक्षा एक वांस है। पौरीनकी अपेक्षा एक वांस नहीं है. इसी प्रकार त्रिकाल अविनाशी जीव द्रव्य एक है. उसमें क्रमवर्त्ती देवमनुष्यादि अनेक पर्याय हैं, सो वे पर्याय अपने २ परिमाण लियेहुये हैं। किसी भी पर्यायसे कोई पर्याय मिलती नहीं है, सब न्यारी न्यारी हैं। जव पर्यायोंकी अपेक्षा जीवका विचार किया जाता है तो

अविनाशी एक जीवका कथन आता नहीं. और जो पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं लीजाय तो जीवद्रव्य त्रिकालविषै अभेदस्वरूप एक ही कहा जाता है. इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि—जीवद्रव्य निजभावकर तो सदा टंकोत्कीर्ण एकस्वरूप नित्य है और पर्यायकी अपेक्षा नित्य नहीं है. पर्यायोंकी अनेकतासे अनेक होता है. अन्य पर्यायकी अपेक्षा अन्य भी कहा जाता है. इस कारण द्रव्यके कथनकी अपेक्षा सत्का नाश नहीं और असत्का उत्पाद नहीं है. पर्याय कथनकी अपेक्षा नाश उत्पाद कहा जाता है।

आगें सर्वथा प्रकारसे संसारपर्यायका अभावरूप सिद्धपदको दिखाते हैं.

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो॥ २०॥

संस्कृतछाया.

ज्ञानावरणाद्या भावा जीवेन सुष्ठुः अनुबद्धाः।
तेषामभावं कृत्वाऽभूतपूर्वो भवति सिद्धः॥ २०॥

पदार्थ—[**ज्ञानावरणाद्याः**] ज्ञानावरणीय आदि आठप्रकार [**भावाः**] कर्मपर्यायें जे हैं ते [**जीवेन**] संसारी जीवको [**सुष्ठुः**] अनादि कालसे लेकर राग द्वेष मोहके वशसे भलीभांति अतिशय गाढे [**अनुबद्धाः**] बांधे हुये हैं [**तेषां**] उन कर्मोंका [**अभावं**] मूल सत्तासे नाश [**कृत्वा**] करकें [**अभूतपूर्वः**] जो अनादिकालसे लेकर किसीकालमें भी नहिं हुवा था ऐसा [**सिद्धः**] सिद्ध परमेष्ठी पद [**भवति**] होता है।

भावार्थ—द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेदसे नय दो प्रकारका है। जब द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षा की जाती है, तब तो त्रिकालविषै जीवद्रव्य सदा अविनाशी टंकोत्कीर्ण संसार पर्याय अवस्थाके होते हुये भी उत्पाद नाशसे रहित सिद्ध समान है। पर्यायार्थिकनयकी विवक्षाकर जीवद्रव्य जब जैसी देवादिकपर्यायको धारण करता है तब तैसा ही होकर परिणमतासंता उत्पाद नाश अवस्थाको धरता है. इन ही दोऊ नयोंका विलास दिखाया जाता है

अनादि कालसे लेकर संसारी जीवके ज्ञानावरणादि कर्मोंके सम्बन्धोंसे संसारी पर्याय है. तहां भव्य जीवको काललब्धिसे सम्यग्दर्शनादि मोक्षकी सामग्री पानेसे सिद्ध पर्याय यद्यपि होती है तथापि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सिद्धपर्याय नूतन (नया) हुवा नहिं कहा जा सक्ता. अनादिनिधन ज्योंका त्यों ही है। कैसे? जैसें कि,—अपनी थोरी स्थिति लिये नामकर्मके उदयसे निर्मापित देवादिक पर्याय होते हैं, उनमें कोई एक पर्याय अशुद्ध कारणसे जीवके उत्पन्न हुये संते नवीन पर्याय हुवा नहिं कहा जाता. क्योंकि—संसारीके अशुद्धपर्यायोंकी सन्तान होती ही है. जो पहिले न होती तो नवीन पर्याय उत्पन्न हुवा कहा जाता। इस कारण जबतक जीव संसारमें है, तबतक पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे नया संसार-पर्याय उपज्या नहिं कहा जाता, पहिला ही है। उसी प्रकार द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा नवीन

सिद्धपर्याय उपज्या नहिं कहा जाता किन्तु शास्वता सदा जीवद्रव्यमें आत्मीक भावरूप सिद्ध पर्याय तिष्टै ही है। संसारपर्यायको नष्ट करके सिद्धपर्याय नवीन उत्पन्न हुवा, ऐसा जो कथन है सो पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे है। जैसें एक बडा वांस है, उसके आधे बाँसमें तो चित्र कियेहुये हैं और आधे वांसमें चित्र कियेहुये नहीं है। जिस आधे भागमें चित्र नहीं, वह तो ढक रख्खा है और जिस अर्धभागमें चित्र हैं सो निरावरण (उघड़ाहुवा) है। जो पुरुष इस वांसके इस भेदको नहीं जानता होय, उसको यह बांस दिखाया जाय तौ वह पुरुष पूरे वांसको चित्रित कहैगा, क्योंकि चित्ररहित जो अर्द्ध भाग निर्मल है, उसको जाणता नहीं है। उसही प्रकार यह जीव पदार्थ एक भाग तो अनेक संसारपर्यायोंके द्वारा चित्रित हुवा वहुरूप है और एक भाग शुद्ध सिद्धपर्याय लियेहुये हैं. जो शुद्धपर्याय है सो प्रत्यक्ष नहीं है. ऐसे जीव द्रव्यका स्वरूप जो अज्ञानी जीव नहिं जानता होय, सो संसारपर्यायको देखकर जीव द्रव्यके स्वरूपको सर्वथा अशुद्ध ही मानैगा। जब सम्यग्ज्ञान होय, तब सर्वज्ञप्रणीत यथार्थ आगम ज्ञान अनुमान स्वसंवेदनज्ञान होय तब इनके वलसे यथार्थ शुद्ध आत्मीक स्वरूपको जान देख आचरण कर, समस्त कर्म पर्यायोंको नाश करकें सिद्धपदको प्राप्त होता है. जैसे जलादिकसे धोनेपर चित्रित बांस निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानकर मिथ्यात्वादि भावोंके नाश होनेसे आत्मा शुद्ध होता है।

आगे जीवके उत्पादव्यय दशावोंकर '**सत्का**' उच्छेद '**असत्**' का उत्पाद इनकी संक्षेपतासे सिद्धि दिखाते हैं।

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो॥ २१॥

संस्कृतछाया.

एवं भावमभावं भावाभावमभावभावं च।
गुणपर्ययैः सहितः संसरन् करोति जीवः॥ २१॥

पदार्थ—[**एवं**] इस पूर्वोक्तप्रकार पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे [**संसरन्**] पंचपरावर्तन अवस्थावोंसे संसारमें भ्रमण करता हुवा यह [**जीवः**] आत्मा [**भावं**] देवादिक पर्यायोंको [**करोति**] करता है [**च**] और [**अभावं**] मनुष्यादि पर्यायोंका नाश करता है. [**च**] तथा [**भावाभावं**] विद्यमान देवादिक पर्यायोंके नाशका आरंभ करता है [**च**] और [**अभावभावं**] जो विद्यमान नहीं है मनुष्यादि पर्याय तिसके उत्पादका आरंभ करता है। कैसा है यह जीव [**गुणपर्ययैः**] जैसी अवस्था लियेहुये है, उसही तरह अपने शुद्ध अशुद्ध गुणपर्यायोंकर [**सहितः**] संयुक्त है।

भावार्थ—अपने द्रव्यत्वस्वरूपकर समस्त पदार्थ उपजते विनशते नहीं, किंतु नित्य

है. इस कारण जीवद्रव्य भी अपने द्रव्यत्वकर नित्य है । उस ही जीवद्रव्यके अशुद्धपर्यायकी अपेक्षा भाव, अभाव, भावाभाव, अभावभाव, इन भेदसे चार प्रकार पर्यायका अस्तित्व कहा गया है । जहां देवादिपर्यायोंकी उत्पत्तिरूप होय परिणमता है, तहां तो भावका कर्तृत्व कहा जाता है. और जहां मनुष्यादि पर्यायके नाशरूप परिणमै है, तहां अभावका कर्तृत्व कहा जाता है । और जहां विद्यमान देवादिक पर्यायके नाशकी प्रारंभदशारूप होय परिणमता है, तहां भावअभावका कर्तृत्व है । और जहां नहीं है मनुष्यादि पर्याय उसकी प्रारंभदशारूप होकर परिणमता है, तहां अभाव भावका कर्तृत्व कहा जाता है । यह चार प्रकार पर्यायकी विवक्षासे अखंडित व्याख्यान जानना । द्रव्यपर्यायकी मुख्यता और गौणतासे द्रव्योंमें भेद होता है, वह भेद दिखाया जाता है । जव जीवका कथन पर्यायकी गौणता और द्रव्यकी मुख्यतासे किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकार कर्तृत्व नहिं संभवता । और जव द्रव्यकी गौणता और पर्यायकी मुख्यतासे जीवका कथन किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकारके पर्यायका कर्तृत्व अविरुद्ध संभवता है । इसप्रकार यह मुख्य गौण भेदके कारण व्याख्यान भगवत्सर्वज्ञप्रणीत अनेकान्तवादमे विरोधभावको नहिं धरता है । स्यात्पदसे अविरुद्ध साधता है । जैसे द्रव्यकी अशुद्धपर्यायके कथनसे सिद्धि की, उसीप्रकार आगम प्रमाणसे शुद्ध पर्यायोंकी भी विवक्षा जाननी । अन्य द्रव्योंका भी सिद्धान्तानुसार गुणपर्यायका कथन साध लेना । यह सामान्य स्वरूप षड्द्रव्योंका व्याख्यान जानना.

आगे सामान्यतासे कहा जो यह षड्द्रव्योंका सामन्यवर्णन तिनमेंसे पांचद्रव्योंको पंचास्तिकाय संज्ञा स्थापन करते हैं ।

जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा ।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स ॥ २२ ॥

संस्कृतछाया.

जीवाः पुद्गलकायाः आकाशमस्तिकायौ शेषौ ।
अमया अस्तित्वमयाः कारणभूता हि लोकस्य ॥ २२ ॥

पदार्थ—[**जीवः**] एक तो जीवद्रव्य कायवन्त है [**पुद्गलकायाः**] दूसरा पुद्गलद्रव्य कायवन्त हैं और (आकाशः) तीसरा आकाशद्रव्य कायवन्त है और [**शेषौ**] चौथा धर्म और पांचवां अधर्मद्रव्य भी [**कायौ**] कायवन्त हैं । ये पांच द्रव्य कायवन्त कैसे हैं [**अमया**] किसीके भी वनाये हुये नहीं हैं, स्वभावहीसे स्वयं सिद्ध हैं । फिर कैसे हैं? [**अस्तित्वमयाः**] उत्पादव्ययध्रौव्यरूप जो सद्भाव तिसकर अपनेस्वरूप अस्तित्वको लियेहुये परिणामी हैं । फिर कैसे हैं? [**हि**] निश्चयकरके [**लोकस्य**] नानाप्रकारकी परणतिरूप लोकके [**कारणभूताः**] निमित्तभूत हैं अर्थात् लोक इनसे ही वना हुवा हैं ।

भावार्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छ द्रव्य हैं. इनमेंसे काल द्रव्यके विना पांचद्रव्य पंचास्तिकाय हैं. क्योंकि इन पांचों ही द्रव्योंके प्रदेशोंका समूह है. जहां प्रदेशोंका समूह होय तहाँ काय संज्ञा कही जाती है. इस कारण ये पांचों ही द्रव्य कायवन्त हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है. इस कारण वह अकाय है. यह कथन विशेषकरके आगमप्रमाणसे जाना जाता है।

आगे यद्यपि कालको कायसंज्ञा नहिं कही, तथापि द्रव्यसंज्ञा है. इसके विना सिद्धि होती नहीं. यह काल अस्तिस्वरूप वस्तु है, ऐसा कथन करते हैं।

सब्भाव सभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो॥ २३॥

संस्कृतछाया.

सद्भावस्वभावानां जीवानां तथैव पुद्गलानां च।
परिवर्त्तनसम्भूतः कालो नियमेन प्रज्ञप्तः॥ २३॥

पदार्थ—[**सद्भावस्वभावानां**] उत्पादव्ययध्रुवरूप अस्तिभाव जो है सो [**जीवानां**] जीवोंके [**च**] और [**तथैव**] तैसे ही [**पुद्गलानां**] पुद्गलोंके अर्थात् इन दोनों पदार्थोंके [**परिवर्त्तनसम्भूतः**] नवजीर्णरूप परिणमनकर जो प्रगट देखनेमें आता है, ऐसा जो पदार्थ है सो [**नियमेन**] निश्चयकरके [**कालः**] काल [**प्रज्ञप्तः**] भगवन्त देवाधिदेवने कहा है।

भावार्थ—इस लोकमें जीव और पुद्गलके समय समयमें नवजीर्णतारूप स्वभाव ही से परिणाम है. सो परिणाम किस ही एक द्रव्यकी विना सहायताके होता नहीं। कैसे? जैसे कि गतिस्थिति अवगाहना धर्मादि द्रव्यके सहाय विना नहिं होय, तैसें ही जीव पुद्गलकी परिणति किस ही एक द्रव्यकी सहायताके विना नहिं होती. इसकारण परिणमनको. कोई द्रव्य सहाय चाहिये, ऐसा अनुमान आता है. अतएव आगम प्रमाणतासे कालद्रव्य-ही निमित्त कारण बनता है. उस कालके विना द्रव्योंके परिणामकी सिद्धि होती नहीं। इस कारण निश्चय काल अवश्य मानना योग्य है। उस विश्चयकालकी जो पर्याय है, सो समया-दिरूप व्यवहार काल जानना। यह व्यवहारकाल जीव और पुद्गलको परिणतिद्वारा प्रगट होता है। पुद्गलके नवजीर्णपरिणामके आधीन जाना जाता है। इन जीव पुद्गलके परिणामोंको और कालको आपसमें निमित्तनैमित्तिकभाव है। कालके अस्तित्वसे जीवपुद्गलके परि-णामका अस्तित्व है। और जीवपुद्गलके परिणामोंसे कालद्रव्यका पर्याय जाना जाता है।

आगे निश्चयकालके स्वरूपको दिखाते हैं और व्यवहारकालको कथंचित् प्रकारसे पराधीनता दिखाते हैं।

ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालोत्ति॥ २४॥

संस्कृतछाया.

व्यपगतपञ्चवर्णरसो व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शश्च ।
अगुरुलघुको अमूर्त्तो वर्त्तनलक्षणश्च काल इति ॥ २४ ॥

पदार्थ—[कालः] निश्चय काल [इति] इस प्रकार जानना कि [व्यपगतपञ्चवर्णरसः] नहीं है पांच वर्ण और पांच रस जिसमें (च) और [व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शः] नहीं है दोगन्ध आठ स्पर्शगुण जिसमें, फिर कैसा है? [अगुरुलघुकः] षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अगुरुलघुगुणसंयुक्त है। [च] फिर कैसा है निश्चयकाल? [वर्त्तनलक्षणः] अन्य द्रव्योंके परिणमावनेको बाह्य निमित्त है लक्षण जिसका, ऐसा यह लक्षण कालाणुरूप निश्चय कालद्रव्यका जानना।

भावार्थ—कालद्रव्य अन्य द्रव्योंकी परिणतिको सहाई है. कैसें? जैसें कि—शीतकालमें शिष्यजन पठनक्रिया अपने आप करते हैं, तिनको वहिरंगमें अग्नि सहाय होता है. तथा जैसें कुंभकारका चाक आपहीतैं फिरता है, तिसके परिभ्रमणको सहाय नीचेंकी कीली होती है. इसी प्रकार ही सब द्रव्योंकी परणतिको निमित्तभूत कालद्रव्य है।

यहां कोई प्रश्नकरै कि—लोकाकाशसे बाहर कालद्रव्य नहीं हैं तहाँ आकाश किसकी सहायतासे परिणमता है?

तिसका उत्तर—जैसें—कुंभकारका चाक एक जगहँ फिराया जाता है, परन्तु वह चाक सर्वांग फिरता है. तथा जैसें—एक जगहँ स्पर्शेन्द्रियका मनोज्ञ विषय होता है, परन्तु सुखका अनुभव सर्वांग होता है। तथा—सर्प एक जगहँ काटता है, परन्तु विष सर्वांगमें चढता है। तथा फोड़े आदि व्याधि एक जगहँ होती हैं, परन्तु वेदना सर्वांगमें होती है—तैसें ही कालद्रव्य लोकाकाशमें तिष्ठता है, परन्तु अलोकाकाशकी परिणतिको भी निमित्त कारणरूप सहाय होता है।

फिर यहां कोई प्रश्न करै कि—कालद्रव्य अन्यद्रव्योंकी परणतिको तो सहाय है, परन्तु कालद्रव्यकी परणतिको कौन सहाय है?

उत्तर—कालको कालही सहाय है. जैसें कि आकाशको आधार आकाश ही है. तथा जैसें ज्ञान सूर्य रत्न दीपादिक पदार्थ स्वपरप्रकाशक होते हैं. इनके प्रकाशको अन्य वस्तु सहाय नहिं होती है—तैसें ही कालद्रव्य भी स्वपरिणतिको स्वयं ही सहाय है. इसकी परिणतिको अन्य निमित्त नहीं हैं।

फिर कोई प्रश्नकरै कि—जैसें काल अपनी परिणतिको आप सहायक है, तैसें अन्य जीवादिक द्रव्य भी अपनी परिणतिको सहाय क्यों नहीं होवे? कालकी सहायता क्यों बताते हो?

उत्तर—कालद्रव्यका विशेष गुण यही है जो कि अन्य पदार्थोंकी परिणतिको निमित्त-

भूत वर्त्तना लक्षण हो. जैसें आकाश धर्म अधर्म इनके विशेषगुण अन्यद्रव्योंको अवकाश, गमन, स्थानको सहाय देना है. तैसें ही कालद्रव्य अन्य द्रव्योंके परिणमावनेको सहाय है। और उपादान अपनी परिणतिको आप ही सब द्रव्य हैं। उपादान एक द्रव्यको अन्य द्रव्य नहिं होता। कथंचित्प्रकारनिमित्तकारण अन्य द्रव्यको अन्य पदार्थ होता है. अवकाश गति स्थिति परणतिको आकाश आदिक द्रव्य कहे हैं. और जो अन्य द्रव्य निमित्त न माना जाय तो जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य रह जाय. ऐसा होनेसे आगम विरोध होय और लोकमर्यादा न रहै, लोक षड्द्रव्यमयी है, यह सब कथन निश्चय कालका जानना—

अब व्यवहारकालका वर्णन किया जाता है.

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदुअयणसंवच्छरोत्ति कालो परायत्तो ॥ २५ ॥

संस्कृतछाया.

समयो निमिषः काष्टा कला च नाली ततो दिवारात्रं।
मासर्त्वयनसंवत्सरमिति कालः परायत्तः ॥ २५ ॥

पदार्थ—[**कालः इति**] यह व्यवहार काल [**परायत्तः**] यद्यपि निश्चयकालकी समपर्याय है तथापि जीव पुद्गलके नवजीर्णरूप परिणामसे उत्पन्न हुवा कहा जाता है। अन्यके द्वारा कालकी पर्यायका परिमाण किया जाता है, तातैं पराधीन है. सो ही दिखाया जाता है. [**समयः**] मंदगतिसे परिणया जो परमाणु तिसकी अतिसूक्ष्म चाल जितनेमें होय सो समय है [**निमिषः**] जितनेमें नेत्रकी पलक खुले उसका नाम निमिष है. असंख्यात समय जब वीतते हैं, तब एक निमिष होता है. और [**काष्टा**] पंद्रह निमिष मिलै तो एक काष्टा होय। [च] और [**कला**] जो वीस काष्टा होय तो एक कला होती है। और [**नाली**] कहिये कुछ अधिक जो वीस कला वीतै तो एक नाली वा घड़ी होती है. सो जलकटोरी घड़ियाल आदिकसे जानी जाती है। जो दोय घड़ी होय तो मुहूर्त होय। जो तीस महूरत वीत जाय तो एक दिनरात्रि होता है, सो सूर्यकी गतिसे जाना जाता है। और [**मासर्त्वयनसंवत्सरं**] तीस दिनका महीना, दो महीनेका ऋतु, तीन ऋतुका अयन, दो अयनका एक वर्ष होता है और जहांतांई वर्ष गिने जांय, तहांतांई संख्यातकाल कहा जाता है। इसके उपरान्त पल्य सागर आदिक असंख्यात वा अनंतकाल जानना। यह व्यवहारकाल इसी प्रकार द्रव्यके परिणमनकी मर्यादासे गण लिया जाता है. मूलपर्याय निश्चयकाल है। सबसे सूक्ष्म 'समय' नामा कालकी पर्याय है. अन्य सब स्थूलकालके पर्याय हैं। समयके अतिरिक्त अन्य कालका सूक्ष्म भेद कोई नहीं है। परद्रव्यके परिणमन विना व्यवहारकालकी मर्यादा नहिं कही जाती. इस कारण यह पराधीन है। निश्चयकाल स्वाधीन है।

आगे व्यवहारकालको पराधीनता किस प्रकार है सो युक्तिपूर्वक समाधान करते हैं।

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।
पुग्गलदव्वेण विणा तह्मा कालो पडुच्चभवो ॥ २६ ॥

संस्कृतछाया.

नास्ति चिरं वा क्षिप्रं मात्रारहितं तु सापि खलु मात्रा।
पुद्गलद्रव्येन विना तस्मात्कालः प्रतीत्यभवः ॥ २६ ॥

पदार्थ—[**मात्रारहितं**] कालके परिमाण विना [**चिरं**] बहुतकाल [**क्षिप्रं**] शीघ्र-ही ऐसा कालका अल्प बहुत्व [**नास्ति**] नहीं है। अर्थात्—कालकी मर्य्यादाविना थोड़े बहुत कालका कथन नहिं होता. इस कारण कालके परिमाणका कथन अवश्य करना योग्य है। [**तु**] फिर [**सापि**] वह भी [**खलु**] निश्चयसे [**मात्रा**] कालकी मर्यादा [**पुद्गलद्रव्येन विना**] पुद्गल द्रव्यके विना [**नास्ति**] नहीं हैं। अर्थात्—परमाणुकी मंदगति, आंखका खुलना, सूर्यादिककी चाल इत्यादि अनेक प्रकारके जे पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, तिनहीकर कालका परिमाण होता है। पुद्गलद्रव्यके विना कालकी मर्यादा होती नहीं [**तस्मात्**] तिस कारणसे [**कालः**] व्यवहार काल [**प्रतीत्यभवः**] पुद्गलद्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न, ऐसा कहा जाता है।

भावार्थ—पुद्गलद्रव्यकी आदिअंत क्रियाकर व्यवहार काल गण लिया जाता है। परन्तु पर्याय निश्चयकालकी ही है। यद्यपि यह काल कायके अभावसे पंचास्तिकायविषै नहीं कहा, तथापि जान लेना चाहिये कि—लोककी सिद्धि षड्द्रव्योंके विना होती नहीं—क्योंकि—जीव पुद्गलकी परणतिकी सिद्धि निश्चयकालके सहाय विना होती नहीं और जीव पुद्गलके नवजीर्ण परिणामकी मर्यादाविना व्यवहारकालकी सिद्धि होती नही। इस कारण कालद्रव्यका स्वरूप जो जिनमती हैं, तिनको भलीभांति सूक्ष्मदृष्टिकर जानना चाहिये।

इति श्रीसमयसारके व्याख्यानमें षड्द्रव्यपंचास्तिकायका सामान्यव्याख्यान पूर्ण भया॥१॥

आगें इनही षड्द्रव्यपंचास्तिकायका विशेष व्याख्यान किया जाता है। सो पहिले ही संसारी जीवका स्वरूप नयविलासकर उपाधिसंयुक्त और उपाधिरहित दिखाते हैं।

जीवोत्ति हवदि चेदा उपओगविसेसिदो पहूकत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥ २७ ॥

संस्कृतछाया.

जीव इति भवति चेतयितोपयोगविशेषितः प्रभुः कर्त्ता।
भोक्ता च देहमात्रो न हि मूर्त्तः कर्मसंयुक्तः ॥ २७ ॥

पदार्थ—[**जीवः**] जो सदा (त्रिकालमें) निश्चयनयसे भावप्राणोंकर व्यवहार

नयसे द्रव्य प्राणोंकर जीवै है. सो [इति] यह जीवनामा पदार्थ [भवति] होता है। सो यह जीवनामा पदार्थ कैसा है? [चेतयिता] निश्चय नयकी अपेक्षा अपने चेतना गुणसे अभेद एक वस्तु है. व्यवहारकर गुणभेदसे चेतनागुणसंयुक्त है. इस कारण जानने वाला है। फिर कैसा है? [उपयोगविशेषितः] जाननेरूप परिणामोंसे विशेषितः कहिये लखा जाता है। जो यहां कोई पूछै कि चेतना और उपयोग इन दोनोंमें क्या भेद है? तिसका उत्तर यह है कि—चेतना तो गुणरूप है. उपयोग उस चेतनाकी जाननरूप पर्याय है. यह ही इनमें भेद है। फिर कैसा है यह आत्मा? [प्रभुः] आस्रव संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष इन पदार्थोंमें निश्चय करके आप भावकर्मोंकी समर्थतासंयुक्त है। व्यवहारसे द्रव्यकर्मोंकी ईश्वरता संयुक्त है। इस कारण प्रभु है। फिर कैसा है? [कर्त्ता] निश्चय नयसे तो पौद्गलिक कर्मोंका निमित्त पाकर जो जो परिणाम होते हैं, तिनका कर्त्ता है। व्यवहारसे आत्माके अशुद्ध परिणामोंका निमित्त पाय जो पौद्गलीक कर्म परिणाम उपजते हैं तिनका कर्त्ता है। फिर कैसा है? [भोक्ता] निश्चयनयसे तो शुभ अशुभ कर्मोंके निमित्तसे उत्पन्न हुये जे सुखदुःखमय परिणाम, तिनका भोक्ता है और व्यवहारसे शुभ अशुभ कर्मके उदयसे उत्पन्न जो इष्ट अनिष्ट विषय तिनका भोक्ता है। [च] फिर कैसा है? [देहमात्रः] निश्चयनयसे यद्यपि लोकमात्र असंख्यात प्रदेशी है, तथापि व्यवहार नयकी अपेक्षा संकोचविस्तारशक्तिसे नाम कर्मके द्वारा निर्मापित जो लघु दीर्घ शरीर है, उसके परिमाण ही तिष्ठै है. इसकारण देहपरिमाण है। फिर कैसा है? [न हि मूर्त्तः] यद्यपि व्यवहारकर कर्मनसे एक स्वभाव होनेसे मूर्तीक विभाव परिणामरूप परिणमता है. तथापि निश्चय स्वाभाविक भावसे अमूर्त्त है. फिर कैसा है? [कर्मसंयुक्तः] निश्चयनयसे पुद्गल कर्मोंका निमित्त पाय उत्पन्न हुये जे अशुद्ध चैतन्य विभाव परिणामकर्म, उनकर संयुक्त है। व्यवहारसे अशुद्ध चैतन्य परिणामोंका निमित्त पाय जो हुये हैं पुद्गलपरिणामरूप द्रव्य कर्म, तिनकरके सहित है. ऐसा यह संसारी आत्माका शुद्ध अशुद्ध कथन नयोंकी विवक्षासे सिद्धान्तानुसार जान लेना।

आगे मोक्षविषै तिष्ठे हुये जे आत्मा, तिनका उपाधिरहित शुद्ध स्वरूप कहा जाता है।

कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता।
सो सव्वणाणदरसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं॥ २८॥

संस्कृतछाया.

कर्ममलविप्रमुक्तं ऊर्ध्वं लोकस्यान्तमधिगम्य।
स सर्वज्ञानदर्शी लभते सुखमतीन्द्रियमनन्तम्॥ २८॥

पदार्थ—[यः] जो जीव [कर्ममलविप्रमुक्तः] ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्म भावकर्म कर सर्व प्रकारसे मुक्त हुवा है [सः] वह [सर्वज्ञानदर्शी] सबका देखने जाननेवाला शुद्ध

जीव [**उर्ध्वं**] ऊंचे ऊर्ध्वगतिस्वभावसे [**लोकस्य अन्तं**] तीन लोकसे ऊपर सिद्ध क्षेत्रको [**अधिगम्य**] प्राप्त होकर [**अतीन्द्रियं**] सविकार पराधीन इन्द्रिय सुखसे रहित ऐसे [**अनन्तं**] अमार्यादीक [**सुखं**] आत्मीक स्वाभाविक अतीन्द्रिय सुखको [**लभते**] प्राप्त होता है।

भावार्थ—यह संसारी आत्मा परद्रव्यके संबंधसे जब छूटता है, उस ही समय सिद्ध क्षेत्रमें जाकर तिष्ठता है. यद्यपि जीवका ऊर्ध्वगमनस्वभाव है, तथापि आगें धर्मास्तिकाय नहीं है. इस कारण अलोकमें नहिं जाता, वहींपर ठहर जाता है। अनन्तज्ञान अनन्त दर्शनस्वरूपसंयुक्त अनन्त अतीन्द्रिय सुखको भोगता है। मोक्षावस्थामें भी इसके आत्मीक अविनाशी भावप्राण हैं। उनसे सदा जीवै है. इस कारण तहां भी जीवत्वशक्ति होती है। और उस ही चैतन्यस्वभाव शुद्धस्वरूपके अनुभवसे चेतयिता कहलाता है। और उसही शुद्ध जीवको चैतन्य परिणामरूप उपयोगी भी कहा जाता है और उसके ही समस्त आत्मीक शक्तियोंकी समर्थता प्रगट हुई है. इस कारण प्रभुत्व भी कहा जाता है। और निजस्वरूप अन्य पदार्थोंमें नही, ऐसे अपने स्वरूपको सदा परिणमता है, तातैं यही जीव कर्ता है। और स्वाधीन सुखकी प्राप्तिसे यही भोक्ता भी कहा जाता है और यही चर्मशरीर अवगाहनसे किंचित् ऊन पुरुषाकार आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना लियेहुये है. इस कारण देहमात्र भी कहलाता है। पौद्गलीक उपाधिसे सर्वथा रहित होगया है. इस कारण अमूर्त्तीक कहलाता है और वही द्रव्यकर्म भावकर्मसे मुक्त होगया है इस कारण कर्मसंयुक्त नहीं है। जो पहिली गाथामें संसारी जीवके विशेष कहे थे, वेही विशेष मुक्त जीवके भी होना संभव है। परन्तु उनमेंसे एक कर्मसंयुक्तपना नहीं बनै है और सब मिलते हैं। कर्म जो है सो दो प्रकारका है. एक द्रव्यकर्म है एकभावकर्म है। जीवके संबंधसे जो पुद्गलवर्गणास्कन्ध हैं वे तो द्रव्यकर्म कहलाता है और चेतनाके विभावपर्याय हैं—वे भावकर्म हैं।

यहां कोई पूछै कि आत्माका लक्षण तो चेतना है सो वह विभावरूप कैसें होय?

उत्तर—संसारी जीवके अनादि कालसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका सम्बन्ध है। उन कर्मोंके संयोगसे आत्माकी चैतन्यशक्ति भी अपने निजस्वरूपसे गिरीहुई है. तातैं विभावरूप होता है। जैसें कि कीचके संबंधसे जलका स्वच्छ स्वभाव था सो छोड दिया है. तैसें ही कर्मके संबंधसे चेतना विभावरूप हुई है. इस कारण समस्त पदार्थोंके जाननेको असमर्थ है। एक देश कछुयक पदार्थोंको क्षयोपशमकी यथायोग्यतासे जानता है। और जब काललब्धि होती है तब सम्यग्दर्शनादि सामग्री आकर मिल जाती है. तब ज्ञानावरणादि कर्मोंका संबंध नष्ट होता है और शुद्ध चेतना प्रगट होती है—उस शुद्ध चेतनाके प्रगट होनेपर यह जीव त्रिकालवर्त्ती समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें प्रत्यक्ष जानलेता है। निश्चल कूटस्थ

अवस्थाको कथंचित्प्रकार प्राप्त होता है। और भांति होती नहीं, कुछ और जानना रहा नाहीं, इस कारण अपने स्वरूपसे निवृत्ति नहिं होती ऐसी, शुद्ध चेतनासे निश्चल हुवा जो यह आत्मा सो सर्वदर्शी सर्वज्ञभावको प्राप्त हो गया है तव इसके द्रव्यकर्मके जो कारण हैं विभाव भावकर्म, तिनके कर्तृत्वका उच्छेद होता है। और कर्म उपाधिके उदयसे उत्पन्न होते हैं जे सुखदुख विभाव परिणाम तिनको भोगना भी नष्ट होता है। और अनादि कालसे लेकर विभाव पर्य्यायोंके होनेसे हुवा था जो आकुलतारूप खेद उसके विनाश होनेसे स्वरूपमें स्थिर अनन्त चैतन्य स्वरूप आत्माके स्वाधीन आत्मीक स्वरूपका अनुभूत रूप जो अनाकुल अनन्त सुख प्रगट हुवा है उसका अनन्तकालपर्यन्त भोग वना रहैगा। यह मोक्षावस्थामें शुद्ध आत्माका स्वरूप जानना।

आगे पहिले ही कह आये जो आत्माके ज्ञानदर्शन सुखभाव तिनको फिर भी आचार्य निरुपाधि शुद्धरूप कहते हैं।

जादो सयं स चेदा सवण्हू सव्वलोगदरसी य।
पप्पोदि सुहमणन्तं अव्वावाधं सगममुत्तं॥ २९॥

संस्कृतछाया.

जातः स्वयं स चेतयिता सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोति सुखमनन्तमव्याबाधं स्वकममूर्त्तम्॥ २९॥

पदार्थ—[**सः**] वह शुद्धरूप [**चेतयिता**] चिदात्मा [**स्वयं**] आप अपने स्वाभाविक भावोंसे [**सर्वज्ञः**] सबका जाननेवाला [**च**] और [**सर्वदर्शी**] सबका देखनेहारा ऐसा [**जातः**] हुवा है। और वही भगवान [**अनन्तं**] नहीं है पार जिसका और [**अव्यावाधं**] वाधारहित निरन्तर अखंडित है तथा [**अमूर्त्तं**] अतीन्द्रिय अमूर्त्तीक है ऐसे [**स्वकं**] आत्मीक [**सुखं**] आकुलतारहित परम सुखको [**प्राप्नोति**] पाता है।

भावार्थ—आत्मा जो है सो ज्ञानदर्शनरूप सुखस्वभाव है, सो संसार अवस्थामें अनादि जो कर्मवन्धके कारण संकलेस तिस कर सावरण हुवा है। आत्मशक्ति घाती गई है। परद्रव्यके संवंधसे क्षयोपशम ज्ञानके वलसे क्रमशः कुछ २ जानता वा देखता है। इस कारण पराधीन मूर्त्तीक इन्द्रियगोचर वाधासंयुक्त विनाशीक सुखको भोगता है। और जव इसके सर्वथा प्रकार कर्मक्लेश विनशै है. तव वाधारहित परकी सहाय विना आप ही एकहीवार समस्त पदार्थोंको जानै वा देखै है। और स्वाधीन अमूर्त्तीक परसंयोगरहित अतीन्द्रिय अखंडित अनन्त सुखको भोगता है। इस कारण सिद्ध परमेष्ठी स्वयं जानने देखनेवाला सुखका अनुभवन करनेवाला आपही है। और परसे कुछ प्रयोजन नहीं है।

यहां कोई नास्तिक मती तर्क करता है कि, सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि सवका जानने देखनेवाला प्रत्यक्षमें कोई नहिं दीखता। जैसें गर्दभके सींग नहीं, तैसें ही कोई सर्वज्ञ नहीं हैं।

उत्तर—सर्वज्ञ इस देशमें नहीं कि इस कालमें ही नहीं अथवा तीन लोकमें ही नहीं या तीन कालमें ही नहीं है? यदि कहो कि इस देशमें और इस कालमें नहीं तो ठीक है क्योंकि इस समय कोई सर्वज्ञ प्रत्यक्ष देखनेमें नहिं आता और जो कहो कि तीन लोकमें तथा तीन कालमें भी नहीं है तो तुमने यह वात किसप्रकार जानी? क्योंकि तीन लोक और तीन कालकी वात सर्वज्ञके विना कोई जान ही नहिं सक्ता और जो तुमने यह वात निश्चय करके जानली कि—कहीं भी सर्वज्ञ नहीं और किसी कालमें भी न तो हुवा न होगा तो हम कहते हैं कि तुम ही सर्वज्ञ हो—क्योंकि जो तीन लोक और तीन कालकी जानै वह ही सर्वज्ञ है। और जो तुम तीन लोक और तीन कालकी वात नहिं जानते तो तुमने तीन लोक और तीन कालमें सर्वज्ञ नहीं, ऐसा किस प्रकार जाना? जो सबका जाननहारा देखनहारा होय, वही सर्वज्ञको निषेध कर सक्ता है और किसीकी भी गम्य नहीं है। इस कारण तुम ही सर्वज्ञ हो. इस न्यायसे सर्वज्ञकी सिद्धि होती है. निषेध नहिं होता। जो वस्तु इस देशकालमें नहीं और सूक्ष्म परमाणु आदिक जो वस्तु हैं और जो अमूर्त्त हैं तिन वस्तुवोंका ज्ञाता एक सर्वज्ञ ही है। और कोई नहीं है।

आगें जीवत्व गुणका व्याख्यान करते हैं।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जिविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाऊ उस्सासो॥ ३०॥

संस्कृतछाया.

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीवष्यति यः खलु जीवितः पूर्वं।
स जीवः प्राणाः पुनर्वलमिन्द्रियमायुरुच्छ्वासः॥ ३०॥

पदार्थ—[**यः**] जो [**चतुर्भिः प्राणैः**] चार प्राणोंकर [**जीवति**] वर्त्तमान कालमें जीता है [**जीवष्यति**] आगामी काल जीवैगा. [**पूर्वं जीवितः**] पूर्वही जीवै था [**सः**] वह [**खलु**] निश्चयकरकें [**जीवः**] जीवनामा पदार्थ है। [**पुनः**] फिर उस जीवके [**प्राणाः**] चार प्राण हैं। वे कौन कौनसे हैं? [**वलं**] एक तो मनवचनकायरूप वल प्राण हैं और दूजा [**इंद्रियम्**] स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्ररूप ये पांच इन्द्रिय प्राण हैं। तीसरा [**आयुः**] आयुःप्राण है चौथा [**उच्छ्वासः**] श्वासोच्छ्वास प्राण है।

भावार्थ—इन्द्रिय वल आयुः श्वासोच्छ्वास इन चारों ही प्राणोंमें जो चैतन्यरूप परिणति हैं वे तो भावप्राण हैं और इनकी ही जो पुद्गलस्वरूप परणति हैं, वे द्रव्य प्राण कहलाते हैं। ये दोनों जातिके प्राण संसारी जीवके सदा अखंडित सन्तानकर प्रवर्त्तते हैं इनही प्राणोंकर संसारमें जीवता कहलाता है और मोक्षावस्थामें केवल शुद्धचैतन्यादि गुणरूप भावप्राणोंसे जीता है. इस कारण वह शुद्ध जीव है।

आगें जीवोंका स्वाभाविक प्रदेशोंकी अपेक्षा प्रमाण कहते हैं और मुक्त संसारी जीवका भेद कहते हैं ।

अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे ।
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा ॥ ३१ ॥
केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा ।
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥ ३२ ॥

संस्कृतछाया.

अगुरुलघुका अनन्तास्तैरनन्तैः परिणताः सर्वे ।
देशैरसंख्याताः स्याल्लोकं सर्वमापन्नाः ॥ ३१ ॥
केचित्तु अनापन्ना मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः ।
वियुताश्च तैर्बहवः सिद्धाः संसारिणो जीवाः ॥ ३२ ॥

पदार्थ—[**अगुरुलघुकाः**] समय समयमें षट्गुणी हानिवृद्धिलिये अगुरुलघुगुण [**अनन्ताः**] अनन्त हैं. वे अगुरुलघु गुण आत्माके स्वरूपमें थिरताके कारण अगुरुलघु स्वभाव तिसके अविभागी अंश अति सूक्ष्म हैं. आगमकथित ही प्रमाण कहनेमें आते हैं । [**तैः अनन्तैः**] उन अगुरु लघु अनन्त गुणोंकेद्वारा [**सर्वे**] जितने समस्त जीव हैं तितने सव ही [**परिणताः**] परणये हैं अर्थात् ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो अनन्त अगुरुलघुगुण रहित हों किन्तु सबमें पाये जाते हैं । और वे सब ही जीव [**देशैः**] प्रदेशोंकेद्वारा [**असंख्याताः**] लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी हैं । अर्थात्–एक एक जीवके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं । उन जीवोंमेंसे कितने ही जीव [**स्यात्**] किस ही एक प्रकारसे दंडकपाटादि अवस्थावोंमें [**सर्वं लोकं**] तीनसे तेतालीस रज्जुप्रमाण घनाकाररूप समस्त लोकके प्रमाणको [**आपन्नाः**] प्राप्त हुये हैं । दंडकपाटादिमें सब ही जातिके कर्मोंके उदयसे प्रदेशोंका विस्तार लोकप्रमाण होता है । इस कारण समुद्घातकी अपेक्षासे कई जीव लोकके प्रमाणानुसार कहे गये हैं । और [**केचित्तु अनापन्नाः**] कई जीव समुद्घातके विना सर्व लोकप्रमाण नहीं है, निज २ शरीरके प्रमाण ही हैं । उस अनन्त जीव राशिमें [**बहवः जीवाः**] अनन्तानन्त जीव [**मिथ्यादर्शनकषाययोगयुक्ताः**] अनादि कालसे मिथ्यात्व कषायके योगसे संयुक्त [**संसारिणः**] संसारी हैं । अर्थात् जितने जीव मिथ्यादर्शनकषाययोग संयुक्त हैं वे सब संसारी कहे जाते हैं और जे [**तैः**] उन मिथ्यात्व कषायके योगोंसे [**वियुक्ताः**] रहित शुद्ध जीव हैं वे [**सिद्धाः**] सिद्ध हैं. वे सिद्ध (मुक्त जीव भी) अनन्त हैं. यह शुद्धाशुद्धजीवोंका सामान्यस्वरूप जानना.

आगें देहमात्र जीव किस दृष्टांतसे है सो कहा जाता है।

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरं पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो सदेहमत्तं पभासयदि ॥ ३३ ॥

संस्कृतछाया.

यथा पद्मरागरत्नं क्षिप्तं क्षीरे प्रभासयति क्षीरं।
तथा देही देहस्थः स्वदेहमात्रं प्रभासयति ॥ ३३ ॥

पदार्थ—[**यथा**] जिस प्रकार [**पद्मरागरत्नं**] पद्मरागनामा महामणि जो है सो [**क्षीरे क्षिप्तं**] दूधमें डाला हुवा [**क्षीरं**] दूधको उस ही अपनी प्रभासे [**प्रभासयति**] प्रकाशमान करै है [**तथा**] तैसें ही [**देही**] संसारी जीव [**देहस्थः**] देहमें रहता हुवा [**स्वदेहमात्रं**] आपको देहके बराबर ही [**प्रभासयति**] प्रकाश करता है।

भावार्थ—पद्मराग नामा रत्न दुग्धसे भरेहुये वर्त्तनमें डाला जाय तो उस रत्नमें ऐसा गुण है कि अपनी प्रभासे समस्त दुग्धको अपने रंगसे रंगकर अपनी प्रभाको दुग्धकी बराबर ही प्रकाशमान करता है. उसी प्रकार यह संसारी जीव भी अनादि कषायोंके द्वारा मैला होता हुवा शरीरमें रहता है. उस शरीरमें अपने प्रदेशोंसे व्याप्त होकर रहता है. इसलिये शरीरके परिमाण होकर तिष्ठता है और जिस प्रकार वही रत्नसहित दुग्ध अग्निके संयोगसे उबलकर बढता है तो उसके साथ ही रत्नकी प्रभा भी बढती है और जब अग्निका संयोग न्यून होता है, तब रत्नकी प्रभा घट जाती है. इसी प्रकार ही स्निग्ध पौष्टिक आहारादिके प्रभावसे शरीर ज्यों ज्यों बढता है त्यों त्यों शरीरस्थ जीवके प्रदेश भी बढते रहते हैं. और आहारादिककी न्यूनतासे जैसें २ शरीर क्षीण होता है तैसे २ जीवके प्रदेश भी संकुचित होते रहते हैं। और जो उस रत्नको बहुतसे दूधमें डाला जाय तो उसकी प्रभा भी विस्तृत होकर समस्त दूधमें व्याप्त हो जायगी—तैसें ही बडे शरीरमें जीव जाता है तो जीव अपने प्रदेशोंको विस्तार करके उस ही प्रमाण हो जाता है—और वही रत्न जब थोड़े दूधमें डारा जाता है तो उसकी प्रभा भी संकुचित होकर दूधके प्रमाण ही प्रकाश करती है. इसीप्रकार बडे शरीरसे निकलकर छोटे शरीरमें जानेसे जीवके भी प्रदेश संकुचित होकर उस छोटे शरीरके बराबर रहैंगे—इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि यह आत्मा कर्मजनित संकोचविस्ताररूप शक्तिके प्रभावसे जब जैसा शरीर धरता है तब तैसा ही होकर प्रवर्तै है। उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजनकी स्वयंभूरमण समुद्रमें महामच्छकी होती है। और जघन्य अवगाहना अलब्ध पर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवोंकी है।

आगें जीवका देहसे अन्य देहमें अस्तित्व कहते हैं और देहसे जुदा दिखाते हैं तथा अन्य देहके धारण करनेका कारण भी बताते हैं।

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥ ३४ ॥

संस्कृतछाया.

सर्वत्रास्ति जीवो न चैक एककाये एक्यस्थः।
अध्यवसायविशिष्टश्चेष्टते मलिनो रजोमलैः॥ ३४॥

पदार्थ—[**जीवः**] आतमा है सो [**सर्वत्र**] संसार अवस्थामें क्रमवर्त्ती अनेक पर्यायोंमें सव जगह [**अस्ति**] है। अर्थात्—जैसें एक शरीरमें आतमा प्रवर्त्ते है तैसें ही जव और पर्यायान्तर धारण करता है, तव तहां भी तैसें ही प्रवर्त्ते है. इसलिये समस्त पर्यायोंकी परंपरासे वही जीव रहै है. नया कोई जीव उपजता नहीं [**च**] और [**एककाये**] व्यवहारनयकी अपेक्षासे यद्यपि एक शरीरमें [**एक्यस्थः**] क्षीरनीरकी तरह मिलकर एक स्वरूप धरकर तिष्ठता है तथापि [**एकः न**] निश्चयनयकी अपेक्षा देहसें मिलकर एकमेक होता नही। निजस्वरूपसे जुदा ही रहता है। और वह ही जीव जव [**अध्यवसायविशिष्टः**] अशुद्ध रागद्वेष मोह परिणामोंसे संयुक्त होता है तव [**रजोमलैः**] ज्ञानावरणादि कर्मरूप मैलसे [**मलिनः**] मैला होता [**चेष्टते**] संसारमें परिभ्रमण करता है।

भावार्थ—यद्यपि यह आतमा शरीरादि परद्रव्यसे जुदा ही है तथापि संसार अवस्थामें अनादि कर्मसंवंधसे नानाप्रकारके विभावभाव धारण करता है. उन विभाव भावोंसे नये कर्मवंध होते हैं—उन कर्मोंके उदयसे फिर देहसे देहांतरको धारै है जिससे कि संसार वढता है।

आगें सिद्धोंके जीवका स्वभाव दिखाते हैं और उनके ही किंचित् ऊन चरमदेहपरिमाण शुद्ध प्रदेशस्वरूप देह कहते हैं।

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा॥ ३५॥

संस्कृतछाया.

येषां जीवस्वभावो नास्त्यभावश्च सर्वथा तस्य।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धा वाग्गोचरमतीताः॥ ३५॥

पदार्थ—[**येषां**] जिन जीवोंके [**जीवस्वभावः**] जीवकी जीवतव्यताका कारण जो प्राणरूप भाव सो [**नास्ति**] नहीं है। [**च**] और उन ही जीवोंके [**तस्य**] तिस ही प्राणका [**सर्वथा**] सर्व तरहसें [**अभावः**] अभाव [**नास्ति**] नहीं है. कथंचित्प्रकार प्राण भी है [**ते सिद्धाः**] वे सिद्ध [**भवन्ति**] होते हैं। कैसे हैं वे सिद्ध? [**भिन्नदेहाः**] शरीररहित अमूर्त्तीक हैं। फिर कैसे हैं? [**वाग्गोचरमतीताः**] वचनातीत है महिमा जिनकी ऐसे हैं।

भावार्थ—सिद्धान्तमें प्राण दो प्रकारके कहे हैं—एक निश्चय, एक व्यवहार. जितने शुद्धज्ञानादिक भाव हैं वे तो निश्चयप्राण हैं और जो अशुद्ध इन्द्रियादिक प्राण हैं सो

व्यवहारप्राण हैं। प्राण उसको कहते हैं कि जिसके द्वारा जीवद्रव्यका अस्तित्व है। जीव भी संसार और सिद्धके भेदसे दो प्रकारके हैं। जो अशुद्ध प्राणोंके द्वारा जीता है सो तो संसारी है और जो शुद्ध प्राणोंसे जीता है वह सिद्ध जीव है। इसकारण सिद्धोंके कथंचित् प्रकार प्राण हैं भी और नहीं भी हैं। जो निश्चय प्राण हैं वे तो पाये जाते हैं और जो व्यवहार प्राण हैं वे नहीं हैं। फिर उन ही सिद्धोंके क्षीरनीरकी समान देहसे संबंध भी नहीं है। किंचित् ऊन (कम) चरम (अन्तके) शरीरप्रमाण प्रदेशोंकी अवगाहना है। ज्ञानादि अनन्तगुणसंयुक्त अपार महिमालिये आत्मलीन अविनाशी स्वरूपसहित तिष्ठते हैं।

आगें संसारी जीवके जैसे कार्यकारणभाव हैं, तैसे सिद्ध जीवके नहीं हैं, ऐसा कथन करते हैं।

ण कुदोचि वि उपण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि॥ ३६॥

संस्कृतछाया.

न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात् कार्यं न तेन सः सिद्धः।
उत्पादयति न किंचिदपि कारणमपि तेन न स भवति॥ ३६॥

पदार्थ—[**यस्मात्**] जिस कारणसे [**कुतश्चित् अपि**] किसी और वस्तुसे भी [**सिद्धः**] शुद्ध सिद्धजीव है सो [**उत्पन्नः न**] उपजा नहीं। [**तेन**] तिस कारण [**सः**] वह सिद्ध [**कार्यं**] कार्यरूप नहीं है कार्य उसे कहते हैं जो किसी कारणसे उपजा हो सो सिद्ध किसीसे भी नहिं उपजे, इसलिये सिद्ध कार्य नहीं है। और जिस कारणसे [**किंचित् अपि**] और कुछ भी वस्तु [**उत्पादयति**] उपजावता (न) नहीं है [**तेन**] तिस कारणसे [**सः**] वह सिद्ध जीव [**कारणं अपि**] कारणरूप भी [**न भवति**] नहीं है। कारण वही कहलाता है जो किसहीका उपजानेवाला हो, सो सिद्ध कुछ उपजावते नहीं. इसलिये सिद्ध कारण भी नहीं हैं।

भावार्थ—जैसें संसारी जीव कार्य कारण भावरूप है तैसें सिद्ध नहीं है. सो ही दिखाया जाता है।

संसारी जीवके अनादि पुद्गल संबंधके होनेसे भाव कर्मरूप परिणति और द्रव्यकर्मरूप परिणति है। इनके कारण देव मनुष्य तिर्यंच नारकी पर्यायरूप जीव उपजता है। इस कारण द्रव्यकर्मभावकर्मरूप अशुद्ध परिणति कारण है और चार गतिरूप जीवका होना सो कार्य है। सिद्ध जो हैं सो कार्यरूप नहीं है। क्योंकि द्रव्यकर्मभावकर्मका जब सर्वथा प्रकारसे नाश होता है, तब ही सिद्धपद होता है। और संसारी जीव जो है सो द्रव्य भावरूप अशुद्ध परिणतिको उपजावता हुवा चारगतिरूप कार्यको उत्पन्न करता है. इस कारण संसारी जीव कारण भी कहा जाता है। सिद्ध कारण नहीं हैं क्योंकि सिद्धोंसे चार

गतिरूप कार्य नहीं होता। सिद्धके अशुद्ध परिणति सर्वथा नष्ट होगई है. सो अपने शुद्ध स्वरूपको ही उपजाते हैं। और कुछ भी नहिं उपजाते।

आगें कइयक बौद्धमती जीवका सर्वथा अभाव होना उसको ही मोक्ष कहते हैं, तिनका निषेध करते हैं।

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥ ३७ ॥

संस्कृतछाया.

शाश्वतमथोच्छेदो भव्यमभव्यं च शून्यमितरच्च।
विज्ञानमविज्ञानं नापि युज्यते असति सद्भावे ॥ ३७ ॥

पदार्थ—[**सद्भावे**] मोक्षावस्थामें शुद्ध सत्तामात्र जीव वस्तुके [**असति**] अभाव होते सते [**शास्वतं**] जीव द्रव्यस्वरूप करके अविनाशी है ऐसा कथन [**न युज्यते**] नहीं संभवता. जो मोक्षमें जीव ही नहीं तो शास्वता कौन होगा? [**अथ**] और [**उच्छेदः**] नित्य जीवद्रव्यके समयसमयविषै पर्यायकी अपेक्षासे नाश होता है. यह भी कथन वनैगा नहीं। जो मोक्षमें वस्तु ही नहीं है तो नाश किसका कहा जाय (च) और [**भव्यं**] समय समयमें शुद्ध भावोंके परिणमनका होना सो भव्य भाव है [**अभव्यं**] जो अशुद्ध भाव विनष्ट हुये तिनका जो अन होना सो अभव्यभाव कहाता है. ये दोनों प्रकारके भव्य अभव्य भाव जो मुक्तमें जीव नहिं होय तो किसके होय? [**च**] तथा [**शून्यं**] परद्रव्यस्वरूपसे जीवद्रव्यरहित है. इसको शून्यभाव कहते हैं [**इतरं**] अपने स्वरूपसे पूर्ण है इसको अशून्यभाव कहते हैं जो मोक्षमें वस्तुही नही है तो ये दोनों भाव किसके कहे जायंगे? [**च**] और [**विज्ञानं**] यथार्थ पदार्थका जानना [**अविज्ञानं**] औरका और जानना। ज्ञान अज्ञान दोनों प्रकारके भाव यदि मोक्षमें जीव नहिं होय तो कहे नहिं जांय—क्योंकि किसी जीवमें ज्ञान अनंत है किसी जीवमें ज्ञान सान्त है। किसी जीवमें अज्ञान अनंत है किसी जीवमें अज्ञान सान्त है। शुद्ध जीव द्रव्यमें केवल ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त ज्ञान है सम्यग्दृष्टी जीवके क्षयोपशम ज्ञानकी अपेक्षा सान्त ज्ञान है। अभव्य मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा अनन्त अज्ञान है. भव्यमिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा सान्त अज्ञान है। सिद्धोंमें समस्त त्रिकालवर्त्ती पदार्थोंके जाननेरूप ज्ञान हैं, इस कारण ज्ञानभाव कहा जाता है और कथंचित्प्रकार अज्ञान भाव भी कहा जाता है। क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञानका सिद्धमें अभाव है। इसलिये विनाशीक ज्ञानीकी अपेक्षा अज्ञान भाव जानना। यह दोनों प्रकारके ज्ञान अज्ञान भाव जो मोक्षमें जीवका अभाव होय तो नहिं वन सक्के?

भावार्थ—जे अज्ञानी जीव मोक्ष अवस्थामें जीवका नाश मानते हैं उनको समझानेके लिये आठ भाव हैं इन आठ भावोंसे ही मोक्षमें जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है। और

जो ये आठ भाव नहिं होय तो द्रव्यका अभाव होजाय द्रव्यके अभावसे संसार और मोक्ष दोनों अवस्थाका अभाव होय इस कारण इन आठों भावज्ञानोंको जानना चाहिये। ध्रौव्यभाव १ व्ययभाव २ भव्यभाव ३ अभव्यभाव ४ शून्यभाव ५ पूर्वाभाव ६ ज्ञानभाव ७ अज्ञानभाव ८ इन आठ भावोंसे जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है। और जीवद्रव्यके अस्तित्वसे इन आठोंका अस्तित्व रहता है।

आगे चैतन्यस्वरूप आत्माके गुणोंका व्याख्यान करते हैं।

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासि चेदगभावेण तिविहेण ॥ ३८ ॥

संस्कृतछाया.

कर्मणां फलमेकः एकः कार्यं तु ज्ञानमथैकः।
चेतयति जीवराशिश्चेतकभावेन त्रिविधेन ॥ ३८ ॥

पदार्थ—[**एकः**] एक जीवराशि तो [**कर्मणां**] कर्मोके [**फलं**] सुखदुखरूप फलको [**चेतयति**] वेदै है. [**तु**] और [**एकः**] एक जीवराशि ऐसी है कि कुछ उद्यम लिये [**कार्यं**] सुखदुखरूप कर्मोके भोगनेके निमित्त इष्ट अनिष्ट विकलपरूप कार्यको विशेषताके साथ वेदै है. [**अथ**] और [**एकः**] एक जीवराशि ऐसी है कि- [**ज्ञानं**] शुद्धज्ञानको ही विशेषतारूप वेदती है. [**त्रिविधेन**] यह पूर्वोक्त कर्मचेतना कर्मफल चेतना और ज्ञानचेतना इसप्रकार तीन भेद लिये है [**चेतकभावेन**] चैतन्य भावोंसे ही [**जीवराशिः**] समस्त जीवराशि है। ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो इस त्रिगुणमयी चेतनासे रहित हो। इस कारण आत्माके चैतन्यगुण जानलेना।

भावार्थ—अनेक जीव ऐसे हैं कि जिनके विशेषता करके ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनी वीर्यान्तराय इन कर्मोका उदय है. इन कर्मोके उदयसे आत्मीक शक्तिसे रहित हुये परिणमते हैं। इस कारण विशेषताकर सुखदुखरूप कर्मफलको भोगते हैं। निरुद्यमी हुये विकलपरूप इष्ट अनिष्ट कार्यकारणको असमर्थ है इसलिये इन जीवोंको मुख्यतासे कर्मफल-चेतना गुणको धरनहारे जानने। और जो जीव ज्ञानावरण दर्शनावरण और मोह कर्मके विशेष उदयसे अतिमलीन हुये चैतन्यशक्तिकर हीन परणमे हैं परंतु उनके वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम कुछ अधिक हुवा है, इस कारण सुखदुखरूप कर्मफलके भोगवनेको इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष मोहलिये उद्यमी हुये कार्य करनेको समर्थ हैं, वे जीव मुख्यतासे कर्मचेतनागुणसंयुक्त जानने। और जिन जीवोंके सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरण मोह और अन्तरायकर्म गये हैं. अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तसुख अनन्तवीर्य ये गुण प्रगट हुये हैं कर्म और कर्मफलके भोगनेमें विकलपरहित हैं और आत्मीक पराधीनतारहित स्वाभाविक सुखमें लीन होगये हैं, वे ज्ञानचेतनागुणसंयुक्त कहाते हैं।

आगें इस तीन प्रकारकी चेतनाके धरनहारे कोन २ जीव हैं सो दिखाया जाता है।

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥ ३९ ॥

संस्कृतछाया.

सर्वे खलु कर्मफलं स्थावरकायास्त्रसा हि कार्ययुतं।
प्राणित्वमतिक्रान्ताः ज्ञानं विन्दन्ति ते जीवाः ॥ ३९ ॥

पदार्थ—[**खलु**] निश्चयसे [**सर्वे**] पृथिवी काय आदि जे समस्त ही पांच प्रकार [**स्थावरकायाः**] स्थावर जीव हैं ते [**कर्मफलं**] कर्मोका जो दुखसुखरूप फल तिसको प्रगटपणे रागद्वेषकी विशेषता रहित अप्रगटरूप अपनी शक्त्यनुसार [**विन्दन्ति**] वेदते हैं। क्योंकि एकेन्द्रिय जीवोंके केवलमात्र कर्मफलचेतनारूप ही मुख्य है. [**हि**] निश्चय करके [**त्रसाः**] द्वेन्द्रियादिक जीव हैं ते [**कार्ययुतं**] कर्मका जो फल है सुखदुखरूप तिसको रागद्वेष मोहकी विशेषतालिये उद्यमी हुये इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें कार्य करते सन्ते भोगते हैं. इस कारण वे जीव कर्मफलचेतनाकी मुखतासहित जान लेना। और जो जीव [**प्राणित्वं**] दशप्राणोंको [**अतिक्रान्ताः**] रहित हैं अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं [**ते**] वे [**जीवाः**] शुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानी जीव [**ज्ञानं**] केवल ज्ञान चैतन्य भावहीको [**विन्दन्ति**] साक्षात् परमानन्द सुखरूप अनुभवै हैं। ऐसे जीव ज्ञानचेतनासंयुक्त कहाते हैं। ये तीन प्रकारके जीव तीन प्रकारकी चेतनाके धरनहारे जानने।

आगे उपयोगगुणका व्याख्यान करते हैं।

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥ ४० ॥

संस्कृतछाया.

उपयोगः खलु द्विविधो ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः।
जीवस्य सर्वकालमनन्यभूतं विजानीहि ॥ ४० ॥

पदार्थ—[**खलु**] निश्चय करकें [**उपयोगः**] चेतनतालिये जो परिणाम है सो [**द्विविधः**] दो प्रकारका है। वे दो प्रकार कौन २ से हैं? [**ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः**] ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ऐसे दो भेद लियेहुये हैं। जो विशेषतालिये पदार्थोंको जानै सो तौ ज्ञानोपयोग कहलाता है और जो सामान्यस्वरूप पदार्थोंका जानै सो दर्शनोपयोग कहा जाता है। सो दुविध उपयोग [**जीवस्य**] आत्मद्रव्यके [**सर्वकालं**] सदाकाल [**अनन्यभूतं**] प्रदेशोंसे जुदा नहीं ऐसा [**विजानीहि**] हे शिष्य तू जान। यद्यपि व्यवहार नयाश्रित गुणगुणीके भेदसे आत्मा और उपयोगमें भेद है तथापि वस्तुकी एकताके न्यायसे एकही है भेद करनेमें नहिं आता क्योंकि गुणके नाश होनेसे गुणीका भी नाश है और गुणीके नाशसे गुणका नाश है इस कारण एकता है।

आगें ज्ञानोपयोगके भेद दिखाते हैं।

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥ ४१ ॥

संस्कृतछाया.

आभिनिवोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानानि पञ्चभेदानि।
कुमतिश्रुतविभङ्गानि च त्रीण्यपि ज्ञानैः संयुक्तानि ॥ ४१ ॥

पदार्थ—[**आभिनिवोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि**] मति श्रुत अवधि मनःपर्यय, केवल [**पञ्चभेदानि ज्ञानानि**] ये पांच प्रकारके सम्यग्ज्ञान हैं। [**च**] और [**कुमतिश्रुतविभङ्गानि त्रीणि अपि**] कुमति कुश्रुत विभङ्गावधि ये तीन कुज्ञान भी [**ज्ञानैः संयुक्तानि**] पूर्वोक्त पांचों ज्ञानोंसहित गण लेने। ये ज्ञानके आठ भेद हैं।

भावार्थ—स्वाभाविक भावसे यह आत्मा अपने समस्त प्रदेशव्यापी अनन्तनिरावरण शुद्धज्ञानसंयुक्त है। परन्तु अनादिकालसे लेकर कर्म संयोगसे दूषित हुवा प्रवर्त्ते है। इसलिये सर्वांग असंख्यात प्रदेशोंमें ज्ञानावरण कर्मके द्वारा आच्छादित है। उस ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मतिज्ञान प्रगट होता है। तव मन और पांच इन्द्रियोंके अवलंबनसे किंचित् मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्यको विशेषता कर जिस ज्ञानकेद्वारा परोक्षरूप जानता है उसका नाम मतिज्ञान है। और उस ही ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मनके अवलंवसे किंचिन्मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानका नाम श्रुतज्ञान है। जो कोई यहां पूछै कि श्रुतज्ञान तो एकेन्द्रियसे लगाकर असैनी जीव पर्यन्त कहा है. उसका समाधान यह है कि—उनके मिथ्याज्ञान है. इस कारण वह श्रुतज्ञान नहिं लेना और अक्षरात्मक श्रुतज्ञानको ही प्रधानता है। इस कारण भी वह श्रुतज्ञान नहिं लेना। मनके अवलंवनसे जो परोक्षरूप जाना जाय उस श्रुतज्ञानको द्रव्यभावके द्वारा जानना और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे जिस ज्ञानके द्वारा एकदेशप्रत्यक्षरूप किंचिन्मूर्त्तीक द्रव्य जानै तिसका नाम अवधिज्ञान है। और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे अन्यजीवके मनोगत मूर्त्तीक द्रव्यको एक देश प्रत्यक्ष जिस ज्ञानके द्वारा जानै, उसका नाम मनःपर्ययज्ञान कहा जाता है। और सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसे जिस ज्ञानके द्वारा समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य, गुण पर्यायसहित प्रत्यक्ष जाने जांय उसका नाम केवलज्ञान है। मिथ्यादर्शनसहित जो मतिश्रुतअवधिज्ञान हैं, वे ही कुमति कुश्रुत कुअवधिज्ञान कहलाते हैं। ये आठ प्रकारके ज्ञान जिनागमसे विशेपता कर जानने।

आगें दर्शनोपयोगके नाम और स्वरूपका कथन किया जाता है।

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥ ४२ ॥

संस्कृतछाया.

दर्शनमपि चक्षुर्युतमचक्षुर्युतमपि चावधिना सहितं।
अनिधनमनन्तविषयं कैवल्यं चापि प्रज्ञप्तम्॥ ४२॥

पदार्थ—[**चक्षुर्युतं**] द्रवितनेत्रके अवलंबनसे जो [**दर्शनं**] देखना है उसका नाम चक्षुदर्शन [**प्रज्ञप्तं**] भगवाननें कहा है [**च**] और [**अचक्षुर्युतं**] नेत्र इन्द्रियके विना अन्य चारों द्रव्य इन्द्रियोंके और मनके अवलंवनसे देखा जाय उसका नाम अचक्षुदर्शन है। [**च**] और [**अवधिना सहितं**] अवधिज्ञानके द्वारा [**अपि**] निश्चयसे जो देखना है, उसको अवधिदर्शन कहते हैं। और जो [**अनिधनं**] अन्तरहित [**अनन्तविषयं**] समस्त अनंत पदार्थ हैं विषय जिसके सो [**कैवल्यं**] केवलदर्शन [**प्रज्ञप्तं**] कहा गया है।

भावार्थ—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन चार भेदों द्वारा दर्शनोपयोग जानना. दर्शन और ज्ञानमें सामान्य और विशेषका भेद मात्र है. जो विशेषरूप जानै उसको ज्ञान कहते हैं इस कारण दर्शनका सामान्य जानना लक्षण है। आत्मा स्वाभाविक भावोंसे सर्वांग प्रदेशोंमें निर्मल अनन्तदर्शनमयी है परन्तु वही आत्मा अनादि दर्शनावरण कर्मके उदयसे आच्छादित है. इसकारण दर्शन शक्तिसे रहित है। उसही आत्माके अन्तरंग चक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंगनेत्रके अवलंबनकर किंचित् मूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखा जाय उसका नाम चक्षुदर्शन कहा जाता है। और अन्तरंगमें अचक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंग नेत्र इन्द्रिय विना चार इन्द्रियों और द्रव्यमनके अवलंवनसे किंचित् मूर्त्तीक द्रव्य अमूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखे जांय उसका नाम अचक्षुदर्शन कहा जाता है। और जो अवधि दर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे किंचिन्मूर्त्तीक द्रव्योंको प्रत्यक्ष देखै उसका नाम अवधिदर्शन है। और जिसके द्वारा सर्वथा प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखा जांय उसको केवल दर्शन कहते हैं। इसप्रकार दर्शनका स्वरूप जानना।

आगें कहते हैं कि एक आत्माके अनेक ज्ञान होते हैं इसमें कुछ दूषण नहीं है।

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तह्मा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं॥ ४३॥

संस्कृतछाया.

न विकल्पते ज्ञानात् ज्ञानी ज्ञानानि भवन्त्यनेकानि।
तस्मात्तु विश्वरूपं भणितं द्रव्यमिति ज्ञानीभिः॥ ४३॥

पदार्थ—[**ज्ञानात्**] ज्ञानगुणसे [**ज्ञानी**] आत्मा [**न विकल्पते**] भेद भावको प्राप्त नहिं होता है। अर्थात्—परमार्थसे तो गुणगुणीमें भेद होता नहीं है क्योंकि द्रव्य क्षेत्र काल भावसे गुणगुणी एक है। जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव गुणीका है वही गुणका है और जो गुणका है सो गुणीका है। इसी प्रकार अभेदनयकी अपेक्षा एकता जाननी. भेदनयसे

आत्मामें [ज्ञानानि] मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इन पांच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे [अनेकानि] दो तीन चार [भवन्ति] होते हैं। भावार्थ—यद्यपि आत्मद्रव्य और ज्ञानगुणकी एकता है तथापि ज्ञानगुणके अनेक भेद करनेमें कोई विरोध वा दोष नहीं है क्योंकि द्रव्य कथंचित्प्रकार भेद अभेद स्वरूप है अनेकान्तके विना द्रव्यकी सिद्धि नहीं है [तस्मात् तु] तिस कारणसे [ज्ञानीभिः] जो अनेकांत विद्याके जानकार ज्ञानी जीवोंके द्वारा [द्रव्यं] पदार्थ है सो [विश्वरूपं] अनेक प्रकारका [भणितं] कहा गया है [इति] इस प्रकार वस्तुका स्वरूप जानना।

भावार्थ—यद्यपि द्रव्य अनन्तगुण अनन्तपर्यायके आधारसे एक वस्तु है तथापि वही द्रव्य अनेक प्रकार भी कहा जाता है। इससे यह बात सिद्ध भई कि अभेदसे आत्मा एक है अनेक ज्ञानके पर्यायभेदोंसें अनेक हैं।

आगें जो सर्वथा प्रकार द्रव्यसे गुण भिन्न होंय और गुणोंसे द्रव्य भिन्न होय तो वडा दोष लगता है ऐसा कथन करते हैं।

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।
दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥ ४४ ॥

संस्कृतछाया.

यदि भवति द्रव्यमन्यद्गुणश्च गुणाश्च द्रव्यतोऽन्ये।
द्रव्यानन्त्यमथवा द्रव्याभावं प्रकुर्व्वन्ति ॥ ४४ ॥

पदार्थ—[च] और सर्वथा प्रकार [यदि] जो [द्रव्यं] अनेक गुणात्मक वस्तु है सो [गुणतः] अंशरूपगुणसे [अन्यत्] प्रदेशभेदसे जुदा [भवति] होय (च) और [द्रव्यतः] अंशीस्वरूप द्रव्यसे [गुणाः] अंशरूप गुण [अन्ये] प्रदेशोंसे भिन्न होंहि तो [द्रव्यानन्त्यं] एक द्रव्यके अनन्तद्रव्य होय जांय। अथवा जो अनन्तद्रव्य नहिं होंय तो [ते] वे गुण जुदे हुये सन्ते [द्रव्याभावं] द्रव्यके अभावको [प्रकुर्वन्ति] करते हैं।

भावार्थ—आचार्योंने भी गुणगुणीमें कथंचित्प्रकार भेद दिखाया है। जो उनमें सर्वथा प्रकार भेद होंहि तो एक द्रव्यके अनन्त भेद हो जाते हैं. सो दिखाया जाता है। गुण अंशरूप है गुणी अंशी है। अंशसे अंशी जुदा नहिं हो सक्ता. अंशीके आश्रय ही अंश रहते हैं और जो यों कहिये कि अंशसे अंशी जुदा होता है तो वे अंश आधारके विना किस अंशीके आश्रयसे रहै? उसकेलिये अन्य कोई अंशी चाहिये कि जिसके आधार अंश रहैं। और जो कहो कि अन्य अंशी है उसके आधार रहते हैं तो उस अंशीसे भी अंश जुदे कहने होंगे। और यदि कहोगे कि उससे भी अंश जुदे हैं तो फिर अन्य अंशीकी कल्पना की जायगी. इसप्रकार कल्पना करनेसे गुणगुणीकी स्थिति नहिं होयगी. क्योंकि गुण अनन्त हैं जुदा कहनेसे द्रव्य भी अनन्त होंयगे सो एक दोष तो यह आवैगा.

दूसरा दोष यह है कि–द्रव्यका अभाव हो जायगा. क्योंकि द्रव्य वह कहलाता है जो गुणोंका समूह हो, इसलिये द्रव्यसे गुण जुदा होय तो द्रव्यका अभाव होता है. इसकारण सर्वथा प्रकार गुणगुणीका भेद नहीं है, कथंचित्प्रकारसे भेद जानना।

अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमणण्णत्तं।
णिच्छंति णिच्चयह्णू तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥ ४५ ॥

संस्कृतछाया.

अविभक्तमनन्यत्वं द्रव्यगुणानां विभक्तमन्यत्वं।
नेच्छन्ति निश्चयज्ञास्तद्विपरीतं हि वा तेषां ॥ ४५ ॥

पदार्थ—[**द्रव्यगुणानां**] द्रव्य और गुणोंका [**अनन्यत्वं**] एक भाव है सो [**अविभक्तं**] प्रदेशभेदसे रहित है। द्रव्यके नाश होनेसे गुणका अभाव और गुणोंके नाश होनेसे द्रव्यका अभाव ऐसा एकभाव है. अर्थात् जैसें एक परमाणुकी अपने एक प्रदेशसे पृथक्ता नहीं है और जैसे उसही परमाणुमें स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणोंकी पृथक्ता नहीं है तैसें ही समस्त द्रव्योंमें प्रदेशभेदरहित गुणपर्यायका अभेद भाव जानना। ऐसी प्रदेशभेदरहित द्रव्यगुणोंकी एकता आचार्यजीने अंगीकारकी है और [**निश्चयज्ञाः**] गुणगुणीमें कथंचित् भेदसे निश्चयस्वरूपके जाननहारे हैं ते [**अन्यत्वं**] द्रव्यगुणोंमें भेदभाव [**विभक्तं**] प्रदेशभेदसे रहित [**न इच्छंति**] नहिं चाहते हैं। भावार्थ–द्रव्य और गुणोंमें संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिसे यद्यपि भेद है तथापि ऐसा भेद नहीं है कि जिससे प्रदेशोंकी पृथक्ता होय। अतएव यह बात सिद्ध हुई कि गुणगुणीमें वस्तुरूप विचारसे प्रदेशोंकी एकतासे कुछ भी भिन्नता नहीं है. संज्ञामात्रसे भिन्नता है। एक द्रव्यमें भेद अभेद इसी प्रकार जानना [**वा**] अथवा [**हि**] निश्चयसे [**तेषां**] उन द्रव्यगुणोंके [**तद्विपरीतं**] उस पूर्वोक्त प्रकार भेद अभेदसे जो और प्रकार भेद अभेद है उसको [**न इच्छन्ति**] जो तत्त्वस्वरूपके वेत्ता हैं ते वस्तुमें नहिं मानते।

भावार्थ—वस्तुमें कथंचित् गुणगुणीका जो भेद अभेद है, उसका वस्तुको साधनके वास्ते मानते हैं और जो उपचारमात्र पदार्थोंमें भेद अभेद लोकव्यवहारसे है उसको आचार्य नहिं मानते क्योंकि लोकव्यवहारसे कुछ वस्तुका स्वरूप सधता नहीं है. सो दिखाया जाता है। जैसे–लोकव्यवहारसे विन्ध्याचल और हिमाचलमें वडा भेद कहा जाता है क्योंकि हिमाचल कहीं है और विन्ध्याचल कहीं है. इसको नाम भेद कहते हैं तथा मिले हुये दुग्धजलको अभेद कहते हैं परमार्थसे जल जुदा है दुग्ध जुदा है। लोकव्यवहारसे एक माना जाता है क्योंकि दुग्ध और जलमें प्रदेशोंकी ही पृथक्ता है। इसप्रकार लोकव्यवहार कथित गुणगुणीमें भेदाभेद नहिं माने जांय तो प्रदेशभेदरहित जो गुणगुणीमें कथंचित्प्रकार भेद अभेद परमार्थ दिखानेकेलिये कृपावन्त आचार्योंने दिखाया है सो भले प्रकार जानना चाहिये–

आगें व्यपदेश, संस्थान, संख्या, विषय, इन चार भेदोंसे सर्वथा प्रकार द्रव्य और गुणमें भेद दिखाते हैं।

ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा।
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्झंते ॥ ४६ ॥

संस्कृतछाया.

व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्च भवन्ति ते बहुकाः।
ते तेषामनन्यत्वे अन्यत्वे चापि विद्यन्ते ॥ ४६ ॥

पदार्थ—[**तेषां**] उनद्रव्य और गुणोंके [**ते**] जिनसे गुणगुणीमें भेद होता है वे [**व्यपदेशाः**] कथनके भेद और [**संस्थानानि**] आकारभेद [**संख्या**] गणना [**च**] और [**विषयाः**] जिनमें रहै ऐसे आधार भाव ये चार प्रकारके भेद [**बहुकाः**] बहुत प्रकारके [**भवन्ति**] होते हैं. और [**ते**] वे व्यपदेशादिक चार प्रकारके भेद [**अनन्यत्वे**] कथंचित्प्रकार अभेदभावमें [**च**] और [**अन्यत्वे**] कथंचित्प्रकार भेद भावमें [**अपि**] भी [**विद्यन्ते**] प्रवर्त्तैं हैं।

भावार्थ—ये चार प्रकारके व्यपदेशादिक भाव अभेदमें भी हैं और भेदमें भी हैं। इनकी दो प्रकारकी विवक्षा है. जब एक द्रव्यकी अपेक्षा कथन किया जाय तब तो ये चार भाव अभेदकथनकी अपेक्षा कहे जाते हैं और जब अनेक द्रव्यकी अपेक्षा कथन किया जाय तब ये ही व्यपदेशादिक चार भाव भेदकथनकी अपेक्षा कहे जाते हैं। आगें ये ही दोनों भेद दृष्टान्तसे दिखाये जाते हैं। जैसें किसही पुरुषकी गाय कहना, यह भेदमें व्यपदेश है. तैसे ही वृक्षकी शाखा, द्रव्यके गुण, यह अभेदमें व्यपदेश जानना। और यह व्यपदेश षट्कारककी अपेक्षा भी है. सो दिखाया जाता है। जैसें कोई पुरुष फलको अंकुसीकर धनवन्तपुरुषके निमित्त वृक्षसे वाड़ीमें तोड़ै है. यह भेदमें व्यपदेश है। और मृत्तिका जैसें अपने घटभावको आपकर अपने निमित्त आपसे आपमें करै है, तैसें ही आत्मा आपको अपनेद्वारा अपने निमित्त आत्मासे आपमें जानै है. सो यह अभेदमें व्यपदेश जानना। और जैसें बडे पुरुषकी गाय बडी है, यह भेद संस्थान है तैसे ही बडे वृक्षकी बडी शाखा, मूर्त्तीक द्रव्यके मूर्त्तीक गुण यह अभेद संस्थान जानना। और जैसें किसी पुरुषकी दशगौवें हैं. ऐसे कहना सो भेदसंख्या है. तैसें ही एक वृक्षकी दशशाखायें, एक द्रव्यके अनंतगुण, यह अभेद संख्या जाननी। और जैसे गोकुलमें गाय है, ऐसा कहना यह भेद विषय है तैसें ही वृक्षमें शाखा—द्रव्यमें गुण यह अभेद विषय है। व्यपदेश संस्थान संख्या विषय ये चार प्रकारके भेद द्रव्यगुणमें अभेदरूप दिखाये जाते हैं, अन्यद्रव्यसे भेदकर दिखाये जाते हैं। यद्यपि द्रव्यगुणमें व्यपदेशादिक कहे जाते हैं तथापि वस्तुके विचारसे नहीं हैं।

आगें भेद अभेद कथनका स्वरूप प्रगटकर दिखाया जाता है—

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं ।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥ ४७ ॥

संस्कृतछाया.

ज्ञानं धनं च करोति धनिनं यथा ज्ञानिनं च द्विविधाभ्यां ।
भणंति तथा पृथक्त्वमेकत्वं चापि तत्त्वज्ञाः ॥ ४७ ॥

पदार्थ—[**यथा**] जैसें [**धनं**] द्रव्य सो [**धनिनं**] पुरुषको धनवान [**करोति**] करता है अर्थात् धन जुदा है पुरुष जुदा है परन्तु धनके संवन्धसे पुरुष धनी वा धनवान् ऐसा नाम पाता है [**च**] और [**ज्ञानं**] चैतन्यगुण जो है सो [**ज्ञानिनं**] आत्माको 'ज्ञानी' ऐसा नाम कहलाता है. ज्ञान और आत्माको प्रदेशभेदरहित एकता है। परन्तु गुणगुणीके कथनकी अपेक्षा ज्ञान गुणके द्वारा आत्मा 'ज्ञानी' ऐसा नाम धारण करता है [**तथा**] तैसें ही [**द्विविधाभ्यां**] इन दो प्रकारके भेदाभेद कथनद्वारा [**तत्त्वज्ञाः**] वस्तुस्वरूपके जाननेवाले पुरुष हैं ते [**पृथक्त्वं**] प्रदेशभेदकी पृथकतासे जो संबंध है उसको पृथक्त्व कहते हैं. [**च**] और [**अपि**] निश्चयसे [**एकत्वं**] प्रदेशोंकी एकतासे संबंध है उसका नाम एकत्व है ऐसे दो भेदोंको [**भणन्ति**] कहते हैं।

भावार्थ—व्यवहार दो प्रकारका है. एक पृथक्त्व और एक एकत्व. जहांपर भिन्न द्रव्योंमें एकताका संबंध दिखाया जाय उसका नाम पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है. और एक वस्तुमें भेद दिखाया जाय उसका नाम एकत्व व्यवहार कहा जाता है. सो ये दोनों प्रकारका संवन्ध धन धनी ज्ञान ज्ञानीमें व्यपदेशादिक चार प्रकारसे दिखाया जाता है। धन जो है सो अपने नाम संस्थान संख्या और विषय इन चारों भेदोंसे जुदा है—और पुरुष अपने नाम संस्थान संख्या विषयरूप चार भेदोंसे जुदा है। परन्तु धनके सम्बन्धसे पुरुष धनी कहलाता है. इसीको पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है। ज्ञान और ज्ञानीमें एकता है परन्तु नाम संख्या संस्थान विषयोंसे ज्ञानका भेद किया जाता है। वस्तुस्वरूपको भली भाँति जाननेके कारण उस ज्ञानके सम्बन्धसे ज्ञानी नाम पाता है. इसको एकत्व व्यवहार कहते हैं। ये दो प्रकारका सम्बन्ध समस्त द्रव्योंमें चार प्रकारसे जानना।

आगें ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथाप्रकार जो भेद ही माना जाय तो वडा दोष आता है, ऐसा कथन करते हैं।

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स ।
दोह्नं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥ ४८ ॥

संस्कृतछाया.

ज्ञानी ज्ञानं च सदार्थान्तरितेत्वन्योऽन्यस्य ।
द्वयोरचेतनत्वं प्रसजति सम्यग् जिनावमतं ॥ ४८ ॥

पदार्थ—[**ज्ञानी**] आत्मा [**च**] और [**ज्ञानं**] चैतन्यगुणका [**सदा**] सदाकाल [**अर्थान्तरिते**] सर्वथा प्रकारभेद होय [**तु अन्योऽन्यस्य**] तो परस्पर [**द्वयोः**] ज्ञानी और ज्ञानके [**अचेतनत्वं**] जड़भाव [**प्रसजति**] होता है [**सम्यक्**] यथार्थमें यह [**जिनावमतं**] जिनेन्द्र भगवान्‌का कथन है ।

भावार्थ—जैसें अग्निद्रव्यमें उष्णता गुण है. जो इस अग्नि और उष्णतागुणमें पृथक्ता होती तो इंधनको जला नहिं सक्ती थी. जो प्रथमसे ही उष्णगुण जुदा होता तो काहेसे जलावे ? और जो अग्नि जुदी होती तो उष्णगुण किसके आश्रय रहै ? निराश्रय होकर वह भी जलानेकी क्रियासे रहित हो जाता. क्योंकि गुणगुणी परस्पर जुदा होनेपर कार्य करनेको असमर्थ होते हैं । जो दोनोंकी एकता होय तो जलानेकी क्रियामें समर्थ होय. उसीप्रकार ज्ञानी और ज्ञान परस्पर जुदा होनेपर जाननेकी क्रियामें असमर्थता होती है. ज्ञानविना ज्ञानी कैसें जाने ? और ज्ञानीविना ज्ञान निराश्रय होता तो यह भी जाननरूप क्रियामें असमर्थ होता. ज्ञानी और ज्ञानके परस्पर जुदा होनेपर दोनों अचेतन होते हैं । और जो कोई यहां यह कहैं कि पृथक्‌रूप दांतसे काटनेपर पुरुष ही काटनहारा कहलाता है. इसीप्रकार पृथक्‌रूप ज्ञानकेद्वारा आत्माको जाननेहारा मानो तो इसमें क्या दोष है ? ताका उत्तर—काटनेकी क्रियामें दांत बाह्य निमित्त है. उपादान काटनेकी शक्ति पुरुषमें है जो पुरुषमें काटनेकी शक्ति न होती तो दांत कुछ कार्यकारी नहीं होते—इसलिये पुरुषका गुणप्रधान है, उस अपने गुणसे पुरुषके एकता है. इसी कारण ज्ञानी और ज्ञानके एक संबंध है. पुरुष और दांतकासा संबंध नहीं है. गुणगुणी वे ही कहाते हैं जिनके प्रदेशोंकी एकता होय. ज्ञान और ज्ञानीमें संयोगसम्बन्ध नहीं है, तन्मयभाव है ।

आगें ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथाप्रकार भेद है. परन्तु मिलापकर एक है ऐसी एकताको निषेध करते हैं—

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी ।
अण्णाणीति च वयणं एगत्तप्पसाधगं होदि ॥ ४९ ॥

संस्कृतछाया.

न हि सः समवायादर्थान्तरितस्तु ज्ञानतो ज्ञानी ।
अज्ञानीति च वचनमेकत्वप्रसाधकं भवति ॥ ४९ ॥

पदार्थ—[**सः**] वह [**हि**] निश्चयसें [**ज्ञानी**] चैतन्यस्वरूप आत्मा [**समवायात्**] अपने मिलापसे [**ज्ञानतः**] ज्ञानगुणसे [**अर्थान्तरितस्तु**] भिन्नस्वरूप तो [**न**] नहीं है

क्योंकि [**अज्ञानी**] आत्मा अज्ञानगुणसंयुक्त है [**इति वचनं**] यह कथन [**एकत्वप्रसाधकं**] गुणगुणीमें एकताका साधनहारा [**भवति**] होता है।

भावार्थ—ज्ञानी और ज्ञानगुणकी प्रदेशभेदरहित एकता है और जो कहिये कि एकता नहीं है ज्ञानसंबंधसे ज्ञानी जुदा है-तो जब ज्ञान गुणका संबंध ज्ञानीके पूर्व ही नहीं था, तब ज्ञानी अज्ञानी था कि ज्ञानी? जो कहोगे कि ज्ञानी था तो ज्ञान गुणके कथनका कुछ प्रयोजन नहीं, स्वरूपसे ही ज्ञानी था और जो कहोगे कि पहिले अज्ञानी था पीछेसे ज्ञानका संबंध होनेसे ज्ञानी हुवा है तो जब अज्ञानी था तो अज्ञान गुणके संबंधसे अज्ञानी था कि अज्ञानगुणसे एकमेक था? जो कहोगे कि-अज्ञानगुणके संबंधसे ही अज्ञानी ही था तौ वह अज्ञानी था. अज्ञानके संबंधसे कुछ प्रयोजन नहीं है. स्वभावसे ही अज्ञानी थपे है. इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि-ज्ञान गुणका जो प्रदेशभेदरहित ज्ञानीसे एकभाव माना जाय तो आत्माके अज्ञानगुणसे एकभाव होता सन्ता अज्ञानी पद थपता है-इसकारण ज्ञान और ज्ञानीमें अनादिकी अनन्त एकता है। ऐसी एकता है जो ज्ञानके अभावसे ज्ञानीका अभाव हो जाता है—और ज्ञानीके अभावसे ज्ञानका अभाव होता है। और जो यों नहिं माना जाय तो आत्मा अज्ञानभावकी एकतासे अवश्यमेव अज्ञानी होता है और जो ऐसा कहा जाता है कि अज्ञानका नाश करकें आत्मा ज्ञानी होता है सो यह कथन कर्म उपाधिसंबंधसे व्यवहारनयकी अपेक्षा जानना। जैसें सूर्य मेघपटलद्वारा आच्छादित हुवा प्रभारहित कहा जाता है परन्तु सूर्य अपने स्वभावसे उस प्रभावतैं त्रिकाल जुदा होता नाही. पटलकी उपाधिसे प्रभासे हीन अधिक कहा जाता है. तैसें ही यह आत्मा अनादि पुद्गलउपाधिसम्बन्धसे अज्ञानी हुवा प्रवर्तै है. परन्तु वह आत्मा अपने स्वाभाविक अखंड केवलज्ञान स्वभावसे स्वरूपसे किसी कालमें भी जुदा नहिं होता। कर्मकी उपाधिसे ज्ञानकी हीनता अधिकता कही जाती है. इसकारण निश्चय करकें ज्ञानीसे ज्ञानगुण जुदा नहीं है। कर्मउपाधिके वशसें अज्ञानी कहा जाता है. कर्मके घटनेसे ज्ञानी होता है. यह कथन व्यवहारनयकी अपेक्षा जानना।

आगें गुणगुणीमें एकभावके विना और किसीप्रकारका संबंध नहीं है ऐसा कथन करते हैं.

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदोय अजुदसिद्धो य।
तह्मा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा॥ ५०॥

संस्कृतछाया.

समवर्त्तित्वं समवायः अपृथग्भूतत्वमयुतसिद्धत्वं च।
तस्माद्द्रव्यगुणानां अयुता सिद्धिरिति निर्दिष्टा॥ ५०॥

पदार्थ—[**समवर्त्तित्वं**] द्रव्य और गुणोंके एक अस्तित्वकर अनादि अनन्त धारा-

वाहीरूप जो प्रवृत्ति है तिसका नाम जिनमतमें [**समवायः**] समवाय है। भावार्थ—संबंध दो प्रकारके हैं एक संयोगसंबंध है और एक समवायसंबंध है—जैसें जीवपुद्गलका संबंध है सो तो संयोगसंबन्ध है। और समवायसम्बन्ध वहां कहिये जहाँ कि अनेक भावोंका एक अस्तित्व होय सकैं. जैसें गुणगुणीमें सम्बन्ध है। गुणोंके नाश होनेसे गुणीका नाश और गुणीके नाश होनेसे गुणोंका नाश होय। इसप्रकार अनेक भावोंका जहां सम्बन्ध होय उसीका नाम समवायसम्बन्ध कहा जाता है। [**च अपृथग्भूतं**] और वही गुणगुणीका समवायसम्बन्ध प्रदेशभेदरहित जानना। यद्यपि संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिकसे गुणगुणीमें भेद है तथापि स्वरूपसे भेद नहीं हैं। जैसें सुवर्णके और पीतादि गुणके समवायसम्बन्धमें प्रदेशभेद नहीं है, इसीप्रकार गुणगुणीकी एकता है। [**च**] और [**अयुतसिद्धत्वं**] वही गुणगुणीका समवायसम्बन्ध मिलकर नहिं हुवा है अनादि सिद्ध एकही है [**तस्मात्**] तिसकारणसे [**द्रव्यगुणानां**] गुणगुणीमें वे समवाय सम्बन्ध [**अयुता सिद्धिः**] अनादिसिद्धि [**इति**] इसप्रकार [**निर्दिष्टा**] भगवंत देवने दिखाया है. ऐसा गुणगुणीविषै समवायसम्बन्ध जानना।

आगें दृष्टांतसहित गुणगुणीकी एकताका कथन संक्षेपसे करते हैं.

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसा हि।
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति॥ ५१॥
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो॥ ५२॥

संस्कृतछाया.

वर्णरसगन्धस्पर्शाः परमाणुप्ररूपिता विशेषा हि।
द्रव्यतश्च अनन्याः अन्यत्वप्रकाशका भवन्ति॥ ५१॥
दर्शनज्ञाने तथा जीवनिबद्धे अनन्यभूते।
व्यपदेशतः पृथक्त्वं कुरुते हि नो स्वभावात्॥ ५२॥

पदार्थ—[**हि**] निश्चयसे [**परमाणुप्ररूपिताः**] परमाणुवोंमे कहे जे [**वर्णरसगंधस्पर्शाः**] वर्णरसगंधस्पर्श ऐसे चार [**विशेषाः**] गुणोंसे [**द्रव्यतः अनन्याः**] पुद्गलद्रव्यसे पृथक् नहीं है.–भावार्थ–निश्चय नयकी अपेक्षा वर्ण रस गन्ध स्पर्श ये चार गुण समवायसंबंधसे पुद्गलद्रव्यसे जुदे नहीं है [**च**] और ये ही चारों वर्णादिकगुण [**अन्यत्वप्रकाशकाः भवन्ति**] व्यवहारकी अपेक्षा पुद्गलद्रव्यसे पृथकताको भी प्रगट करता है। भावार्थ—यद्यपि ये वर्णादिक गुण निश्चयकरके पुद्गलसे एक हैं तथापि—व्यवहारनयकी अपेक्षा संज्ञा भेदकर भेद भी कहा जाता है. प्रदेशभेदसे भेद नहीं है। [**तथा**] और जैसें पुद्गलद्रव्यसे वर्णादिक गुण अभिन्न है. तैसें ही निश्चय नयसे [**जीवनिबद्धे**] जीव

समवायसम्बन्धलिये [दर्शनज्ञाने] दर्शन ज्ञान असाधारण गुण भी [अनन्यभूते] जुदे नहीं है [व्यपदेशतः] संज्ञादि भेदके कथनसे आचार्य आत्मा और ज्ञानदर्शनमें [पृथक्त्वं] भेदभावको [कुरुते] करते हैं. तथापि [हि] निश्चयसे [स्वभावात्] निजस्वरूपसे [नो] भेद संभवता नहीं है। भगवन्तका मत अनेकान्त है. दोय नयोंसे सधता है. इस कारण निश्चय व्यवहारसे भेद अभेद गुणगुणीकास्वरूप परमागमसे विशेषरूप जानना। यह चारप्रकार दर्शनोपयोग आठप्रकार ज्ञानोपयोग शुद्धअशुद्ध भेद कथनसे सामान्यस्वरूप पूर्वोक्त प्रकारसे जानना. यह उपयोग गुणका व्याख्यान पूर्ण हुवा।

आगें कर्तृत्वका अधिकार कहते हैं. जिसमेंसे जीव निश्चयनयसे परभावनका कर्त्ता नहीं है, अपने स्वभावके ही कर्ता होते हैं। वे ही जीव अपने परिणामोंको करते हुये अनादि अनन्त हैं कि सादिसान्त हैं अथवा सादिअनन्त है? और ऐसे अपने भावोंको परिणमते हैं कि नहीं परिणमैंगे? ऐसी आशंका होनेपर आचार्य समाधान करते हैं।

जीवा अणाइणिहिणा संता णंता य जीवभावादो।
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पधाणा य ॥ ५३ ॥

संस्कृतछाया.

जीवाः अनादिनिधनाः सान्ता अनन्ताश्च जीवभावात्।
सद्भावतोऽनन्ताः पञ्चाग्रगुणप्रधाना च ॥ ५३ ॥

पदार्थ—[**जीवाः**] आत्मद्रव्य जे हैं ते [**अनादिनिधनाः**] सहजशुद्धचेतन पारिणामिक भावोंसे अनादि अनन्त हैं. स्वाभाविक भावकी अपेक्षा जीव तीनों कालोंमें टंकोत्कीर्ण अविनाशी है [च] और वे ही जीव [**सान्ताः**] सादि सान्त भी हैं और [**अनन्ताः**] सादि अनन्त भी हैं। औदयिक और क्षायोपशमिक भावोंसे सादिसान्त हैं क्योंकि [**जीवभावात्**] जीवके कर्मजनित भाव होनेसे औदयिक और क्षायोपशमिकभाव कर्मजनित हैं. कर्म वन्धै भी है और निर्जरै भी है तातैं कर्म आदिअंतलियेहुये हैं. उन कर्मजनित भावोंकी अपेक्षा जीव सादिसान्त जान लेना. और वे ही जीव क्षायिक भावोंकी अपेक्षा सादि अनन्त हैं क्योंकि कर्मके—क्षयसे क्षायिक भाव उत्पन्न होते हैं इस कारण सादि हैं. आगें अनन्तकालपर्यंत रहैंगे. इस कारण अनन्त हैं. ऐसा क्षायिक भाव सादि अनन्त हैं. सो क्षायिकभाव जैसें शुद्ध सिद्धका भाव अविनाशी निश्चलरूप है, तैसा अनन्तकालताईं रहैगा [**सद्भावतः**] सत्तास्वरूपसे जीवद्रव्य [**अनन्ताः**] अनन्त हैं. भव्य अभव्यके भेदसे जीवराशि अनन्त है. अभव्य जीव अनन्त हैं. उनसे अनन्तगुणा अधिक भव्यराशि है।

जो कोई यहां प्रश्न करै कि आत्मा तो अनादि अनन्त सहजीक चैतन्यभावोंसे संयुक्त है, उसके सादिसान्त सादिअनन्त भाव कैसे हो सक्ते हैं? इसका उत्तर—

अनादि कर्मसम्बन्धसे यह आत्मा अशुद्धभावसे परिणमै है. इस कारण सादिसान्त सादिअनन्तभाव होता है. जैसें कीचसे मिला हुवा जल अशुद्ध होता है. उस कीचके मिलाप होने न होनेकर शुद्धअशुद्ध जल कहा जाता है. तैसें ही इस आत्माके कर्म सम्बन्ध होने न होनेके कारण सादिसान्त सादिअनन्त भाव कहे जाते हैं [च] और [**पञ्चाग्रगुणप्रधानाः**] औदयिक, औपसमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, और पारिणामिक इन पांच भावोंकी प्रधानतालिये प्रवर्त्तै है ।

आगें जीवोंके पांच भावोंसे यद्यपि सादिसान्त अनादि अनन्त भाव हैं तथापि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयसे विरोध नहीं है ऐसा कथन करते हैं ।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स होइ उप्पादो ।
इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णोण्ण विरुद्धमविरुद्धं ॥ ५४ ॥

संस्कृतछाया.

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य भवत्युत्पादः ।
इति जिनवरैर्भणितमन्योऽन्यविरुद्धमविरुद्धम् ॥ ५४ ॥

पदार्थ—[**एवं**] इस पूर्वोक्त प्रकारके भावोंसे परिणये जो जीव हैं उनके जब उत्पादव्ययकी अपेक्षा कीजे तब [**सतः**] विद्यमान जो मनुष्यादिकपर्याय उसका तो [**विनाशः**] विनाश होना और [**असतः**] अविद्यमान [**जीवस्य**] जीवका [**उत्पादः**] देवादिकपर्यायकी उत्पत्ति [**भवति**] होती है [**इति जिनवरैः**] इस प्रकार जिनेन्द्र भगवानकेद्वारा [**अन्योऽन्यविरुद्धं**] यद्यपि परस्परविरुद्ध है तथापि [**अविरुद्धं**] विरोधरहित [**भणितं**] कहा गया है ।

भावार्थ—भगवानके मतमें दो नय हैं. एक द्रव्यार्थिक नय—दूसरा पर्यायार्थिक नय है । द्रव्यार्थिक नयसे वस्तुका न तो उत्पाद है. और न नाश है । और पर्यायार्थिक नयसे नाश भी है और उत्पाद भी है । जैसें कि जल नित्य अनित्यस्वरूप है. द्रव्यकी अपेक्षा तो जल नित्य है—और कल्लोलोंकी अपेक्षा उपजना विनशना होनेके कारण अनित्य है. इसी प्रकार द्रव्य नित्यअनित्यस्वरूप कथंचित्प्रकारसे जान लेना ।

आगें जीवके उत्पादव्ययका कारण कर्मउपाधि दिखाते हैं ।

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी ।
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं ॥ ५५ ॥

संस्कृतछाया.

नारकतिर्यङ्मनुष्या देवा इति नामसंयुताः प्रकृतयः ।
कुर्वन्ति सतो नाशमसतो भावस्योत्पादं ॥ ५५ ॥

पदार्थ—[**नारकतिर्यङ्मनुष्याः देवाः**] नरक तिर्यञ्च मनुष्य देव [**इति नामसंयुताः**] इन नामोंकर संयुक्त [**प्रकृतयः**] नामकर्मसम्बन्धिनी प्रकृतियें [**सतः**] विद्यमानपर्यायके [**नाशं**] विनाशको [**कुर्वन्ति**] करतीं हैं। और [**असतः**] अविद्यमान [**भावस्य**] पर्यायकी [**उत्पादः**] उत्पत्तिको [**कुर्वन्ति**] करतीं हैं।

भावार्थ—जैसें समुद्र अपने जलसमूहसे उत्पादव्ययअवस्थाको प्राप्त नहिं होता अपने स्वरूपसे स्थिर रहै परन्तु चारों ही दिशावोंकी पवन आनेसे कल्लोलोंका उत्पादव्यय होता रहता है. तैसें ही जीवद्रव्य अपने आत्मीकस्वभावोंसे उपजता विनशता नहीं है सदा टंकोत्कीर्ण है. परन्तु उस ही जीवके अनादि कर्मोपाधिके वशसे चारगति नामकर्म उदय उत्पादव्ययदशाको करता है।

आगें जीवके पांच भावोंका वर्णन करते हैं।

उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा॥ ५६॥

संस्कृतछाया.

उदयेनोपशमेन च क्षयेण च द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां परिणामेन।
युक्तास्ते जीवगुणा वहुषु चार्थेषु विस्तीर्ण्णाः॥ ५६॥

पदार्थ—[**ये**] जो भाव [**उदयेन**] कर्मके उदयकर [**च**] और [**उपशमेन**] कर्मोंके उपशम होनेकर [**च**] तथा [**क्षयेण**] कर्मोंके क्षयकर [**द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां**] उपशम और क्षय इन दोनों जातिके मिलेहुये कर्मपरिणामोंकर [**च**] और [**परिणामेन**] आत्मीक निजभावोंकर [**युक्ताः**] संयुक्त हैं [**ते**] वे भाव [**जीवगुणाः**] जीवके सामान्यतासे पांच भाव जानने। कैसे हैं वे भाव? [**वहुषु अर्थेषु**] नानाप्रकारके भेदोंमें [**विस्तीर्णाः**] विस्तारलिये हुये हैं।

भावार्थ—सिद्धान्तमें जीवके पांच भाव कहे हैं. औदयिक १ औपशमिक २ क्षायिक ३ क्षायोपशमिक ४ और पारिणामिक ५। जो शुभाशुभ कर्मके उदयसे जीवके भाव होंय उनको औदयिकभाव कहते हैं। और कर्मोंके उपशमसे जीवके जो जो भाव होते हैं उनको औपशमिकभाव कहते हैं. जैसें कीचके नीचें वैठनेसे जल निर्मल होता है उसी प्रकार कर्मोंके उपशम होनेसे औपशमिक भाव होते हैं। और जो भावकर्मके उदय अनुदयकर होंय ते क्षायोपशमिक भाव कहाते हैं। और जो सर्वथा प्रकार कर्मोंके क्षय होनेसे भाव होते हैं उनको क्षायिक भाव कहते हैं। जिनकरके जीव अस्तित्वरूप है सो पारिणामिक भाव होते हैं। ये पांच भाव जीवके होते हैं। इनमेंसे ४ भाव कर्मोपाधिके निमित्तसे होते हैं. एक पारिणामिक भाव कर्मोपाधिरहित स्वाभाविक भाव है। कर्मोपाधिके भेदसे और स्वरूपके भेद होनेसे ये ही पांच भाव नानाप्रकारके होते हैं।

औदयिक औपशमिक और क्षायोपशमिक ये तीन भाव कर्मजनित हैं क्योंकि कर्मके उदयसे उपशमसे और क्षयोपशमसे होते हैं. इस कारण कर्मजनित कहे जाते हैं। यद्यपि क्षायिक भाव शुद्ध हैं अविनाशी हैं तथापि कर्मके नाश होनेसे होते हैं, इस कारण इनको भी कर्मजनित कहते हैं । और पारिणामिक भाव कर्मजनित नहीं हैं. क्योंकि वे शुद्ध पारिणामिक भाव जीवके स्वभाव ही हैं. इसकारण कर्मजनित नहीं हैं। और इन पारिणामिकोंके भेद भव्यत्व अभव्यत्व दो भाव हैं, वे भी कर्म जनित नहीं है। यद्यपि कर्मकी अपेक्षा भव्य अभव्य स्वभाव जाने जाते हैं. जिसके कर्मका नाश होना है, सो भव्य कहा जाता है. जिसके कर्मका नाश नहिं होना है सो अभव्य कहा जाता है. तथापि कर्मसे उपजे नहिं कहे जा सक्ते। क्योंकि कोई भव्य अभव्य कर्म नहीं है. इस कारण कर्मजनित नहीं। भवस्थितिके उपरि जैसा कुछ केवल ज्ञानमें प्रतिभास रहा है, जिस जीवका जैसा स्वभाव है तैसा ही होता है, इस कारण भव्य अभव्य स्वभाव भवस्थितिके उपरि है. कर्म-जनित नहीं है। ये तीन प्रकारके पारिणामिक भाव स्वभावजनित हैं।

आगें इन औदयिकादि पांच भावोंका कर्त्ता जीवको दिखाते हैं।

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।
सो तेण तस्स कत्ता हवदित्ति य सासणे पढिदं ॥ ५७ ॥

संस्कृतछाया.

कर्म वेदयमानो जीवो भावं करोति यादृशकं।
स तेन तस्य कर्त्ता भवतीति च शासने पठितं ॥ ५७ ॥

पदार्थ—[**कर्म वेदयमानः**] उदय अवस्थाको प्राप्त हुये द्रव्यकर्मको अनुभवकर्त्ता [**जीवः**] आत्मा [**यादृशकं भावं**] जैसा अपने परिणामको [**करोति**] करता है [**सः**] वह आत्मा [**तस्य**] तिस परिणामका [**तेन**] उसकारणकर [**कर्ता**] करनेहारा [**भवति**] होता है [**इति**] इसप्रकार कथन [**शासने**] जिनेन्द्रभगवान्के मतमें [**पठितं**] तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंने कहा है।

भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादिसम्बन्ध द्रव्यकर्मका सम्बन्ध है. उस द्रव्यकर्मका व्यवहारनयकर भोक्ता है. जब जिस द्रव्यकर्मको भोगता है, तब उस ही द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर जीवके जीवमयी चिद्विकाररूप परिणाम होते हैं. सो परिणाम जीवकी करतूत है. इसकारण कर्मका कर्ता आत्मा कहा जाता है. इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिन भावोंसे आत्मा परिणमता है. उन भावोंका अवश्य कर्त्ता जानना. कर्ता कर्म क्रिया इन तीन प्रकारसे कर्तृत्वकी सिद्धि होती है. जो परिणमै सो तो कर्त्ता, जो परिणाम सो कर्म, और जो करतूत सो क्रिया कही जाती है।

आगें द्रव्यकर्मका निमित्तपाकर औदयिकादि भावोंका कर्त्ता आत्मा है यह कथन किया जाता है।

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं तह्मा भावं तु कम्मकदं॥ ५८॥

संस्कृतछाया.

कर्मणा विनोदयो जीवस्य न विद्यत उपशमो वा।
क्षायिकः क्षायोपशमिकस्तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः॥ ५८॥

पदार्थ—[**कर्मणा विना**] द्रव्यकर्मके विना [**जीवस्य**] आत्माके [**उदयः**] रागादि विभावोंका उदय [**वा**] अथवा [**उपशमः**] द्रव्यकर्मके विना उपशम भाव भी [**न विद्यते**] नहीं है जो द्रव्यकर्म ही नहिं होय तो उपशमता किसकी होय? और औपशमिकभाव कहांसे होय? [**वा क्षायिकः**] अथवा क्षायिकभाव भी द्रव्यकर्मके विना नहिं होय. जो द्रव्यकर्म ही नहिं होय तो क्षय किसका होय? तथा क्षायकभाव भी कहांसे होय? [**वा**] अथवा [**क्षायोपशमिकः**] द्रव्यकर्मके विना क्षायोपशमिक भाव भी नहिं होते. क्योंकि जो द्रव्यकर्म ही नहीं है तो क्षायोपशमदशा किसकी होय? और क्षायोपशमिक भाव कहांसे होय? [**तस्मात्**] तिस कारणसे [**भावः तु**] ये चार प्रकारके जीवके भाव हैं सो [**कर्मकृतः**] कर्मने ही किये हैं।

भावार्थ—औदयिक, औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक ये चारों ही भाव कर्मजनित जानने. कर्मके निमित्तविना होते नहीं है। इस कारण आत्माके स्वाभाविक भाव जानने। यद्यपि इन चारों ही भावोंका भावकर्मकी अपेक्षा आत्मा कर्त्ता है. तथापि व्यवहार नयसे द्रव्यकर्म इनका कर्त्ता है. क्योंकि उदय उपशम क्षयोपशम और क्षय ये चारों ही अवस्थायें द्रव्यकर्मकी हैं. द्रव्यकर्म अपनी शक्तिसे इन चारों अवस्थावोंको परिणमता है. इन चारों अवस्थावोंका निमित्त पाकर आत्मा परिणमता है. इस कारण व्यवहार नयसे इन चारों भावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म जानना निश्चय नयसे आत्मा कर्त्ता जानना।

आगें सर्वथा प्रकारसे जो जीवभावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म कहा जाय तो दूषण है ऐसा कथन किया जाता है।

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं॥ ५९॥

संस्कृतछाया.

भावो यदि कर्मकृतः आत्मा कर्मणो भवति कथं कर्त्ता।
न करोत्यात्मा किंचिदपि मुक्त्वान्यत् स्वकं भावं॥ ५९॥

पदार्थ—[**यदि**] जो सर्वथा प्रकार [**भावः**] भावकर्म [**कर्मकृतः**] द्रव्यकर्मके

औदयिक औपशमिक और क्षायोपशमिक ये तीन भाव कर्मजनित हैं क्योंकि कर्मके उदयसे उपशमसे और क्षयोपशमसे होते हैं. इस कारण कर्मजनित कहे जाते हैं। यद्यपि क्षायिक भाव शुद्ध हैं अविनाशी हैं तथापि कर्मके नाश होनेसे होते हैं, इस कारण इनको भी कर्मजनित कहते हैं । और पारिणामिक भाव कर्मजनित नहीं हैं. क्योंकि वे शुद्ध पारिणामिक भाव जीवके स्वभाव ही हैं. इसकारण कर्मजनित नहीं हैं। और इन पारिणामिकोंके भेद भव्यत्व अभव्यत्व दो भाव हैं, वे भी कर्म जनित नहीं है। यद्यपि कर्मकी अपेक्षा भव्य अभव्य स्वभाव जाने जाते हैं. जिसके कर्मका नाश होना है, सो भव्य कहा जाता है. जिसके कर्मका नाश नहिं होना है सो अभव्य कहा जाता है. तथापि कर्मसे उपजे नहिं कहे जा सक्ते। क्योंकि कोई भव्य अभव्य कर्म नहीं है. इस कारण कर्मजनित नहीं। भवस्थितिके उपरि जैसा कुछ केवल ज्ञानमें प्रतिभास रहा है, जिस जीवका जैसा स्वभाव है तैसा ही होता है, इस कारण भव्य अभव्य स्वभाव भवस्थितिके उपरि है. कर्मजनित नहीं है। ये तीन प्रकारके पारिणामिक भाव स्वभावजनित हैं।

आगें इन औदयिकादि पांच भावोंका कर्त्ता जीवको दिखाते हैं।

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।
सो तेण तस्स कत्ता हवदित्ति य सासणे पढिदं ॥ ५७ ॥

संस्कृतछाया.

कर्म वेदयमानो जीवो भावं करोति यादृशकं।
स तेन तस्य कर्त्ता भवतीति च शासने पठितं ॥ ५७ ॥

पदार्थ—[**कर्म वेदयमानः**] उदय अवस्थाको प्राप्त हुये द्रव्यकर्मको अनुभवकर्त्ता [**जीवः**] आत्मा [**यादृशकं भावं**] जैसा अपने परिणामको [**करोति**] करता है [**सः**] वह आत्मा [**तस्य**] तिस परिणामका [**तेन**] उसकारणकर [**कर्ता**] करनेहारा [**भवति**] होता है [**इति**] इसप्रकार कथन [**शासने**] जिनेन्द्रभगवान्के मतमें [**पठितं**] तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंने कहा है।

भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादिसम्बन्ध द्रव्यकर्मका सम्बन्ध है. उस द्रव्यकर्मका व्यवहारनयकर भोक्ता है. जब जिस द्रव्यकर्मको भोगता है, तब उस ही द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर जीवके जीवमयी चिद्विकाररूप परिणाम होते हैं. सो परिणाम जीवकी करतूत है. इसकारण कर्मका कर्ता आत्मा कहा जाता है. इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिन भावोंसे आत्मा परिणमता है. उन भावोंका अवश्य कर्त्ता जानना. कर्ता कर्म क्रिया इन तीन प्रकारसे कर्तृत्वकी सिद्धि होती है. जो परिणमै सो तो कर्त्ता, जो परिणाम सो कर्म, और जो करतूत सो क्रिया कही जाती है।

आगें द्रव्यकर्मका निमित्तपाकर औदयिकादि भावोंका कर्त्ता आत्मा है यह कथन किया जाता है।

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं तह्मा भावं तु कम्मकदं॥ ५८॥

संस्कृतछाया.

कर्मणा विनोदयो जीवस्य न विद्यत उपशमो वा।
क्षायिकः क्षायोपशमिकस्तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः॥ ५८॥

पदार्थ—[**कर्मणा विना**] द्रव्यकर्मके विना [**जीवस्य**] आत्माके [**उदयः**] रागादि विभावोंका उदय [**वा**] अथवा [**उपशमः**] द्रव्यकर्मके विना उपशम भाव भी [**न विद्यते**] नहीं है जो द्रव्यकर्म ही नहिं होय तो उपशमता किसकी होय? और औपशमिकभाव कहांसे होय? [**वा क्षायिकः**] अथवा क्षायिकभाव भी द्रव्यकर्मके विना नहिं होय. जो द्रव्यकर्म ही नहिं होय तो क्षय किसका होय? तथा क्षायकभाव भी कहांसे होय? [**वा**] अथवा [**क्षायोपशमिकः**] द्रव्यकर्मके विना क्षायोपशमिक भाव भी नहिं होते. क्योंकि जो द्रव्यकर्म ही नहीं है तो क्षायोपशमदशा किसकी होय? और क्षायोपशमिक भाव कहांसे होय? [**तस्मात्**] तिस कारणसे [**भावः तु**] ये चार प्रकारके जीवके भाव हैं सो [**कर्मकृतः**] कर्मने ही किये हैं।

भावार्थ—औदयिक, औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक ये चारों ही भाव कर्मजनित जानने. कर्मके निमित्तविना होते नहीं है। इस कारण आत्माके स्वाभाविक भाव जानने। यद्यपि इन चारों ही भावोंका भावकर्मकी अपेक्षा आत्मा कर्त्ता है. तथापि व्यवहार नयसे द्रव्यकर्म इनका कर्त्ता है. क्योंकि उदय उपशम क्षयोपशम और क्षय ये चारों ही अवस्थायें द्रव्यकर्मकी हैं. द्रव्यकर्म अपनी शक्तिसे इन चारों अवस्थावोंको परिणमता है. इन चारों अवस्थावोंका निमित्त पाकर आत्मा परिणमता है. इस कारण व्यवहार नयसे इन चारों भावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म जानना निश्चय नयसे आत्मा कर्त्ता जानना।

आगें सर्वथा प्रकारसे जो जीवभावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म कहा जाय तो दूषण है ऐसा कथन किया जाता है।

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं॥ ५९॥

संस्कृतछाया.

भावो यदि कर्मकृतः आत्मा कर्मणो भवति कथं कर्त्ता।
न करोत्यात्मा किंचिदपि मुक्त्वान्यत् स्वकं भावं॥ ५९॥

पदार्थ—[**यदि**] जो सर्वथा प्रकार [**भावः**] भावकर्म [**कर्मकृतः**] द्रव्यकर्मके

द्वारा किया होय तो [आत्मा] जीव [कर्मणः] भावकर्मका [कथं] कैसें [कर्त्ता] करनेहारा [भवति] होता है। भावार्थ—जो सर्वथा द्रव्यकर्मको औदयिकादि भावोंका कर्त्ता कहा जाय तो आत्मा अकर्त्ता होकर संसारका अभाव होय और जो कहा जाय कि आत्मा द्रव्यकर्मका कर्त्ता है. इस कारण संसारका अभाव नहीं है तो द्रव्यकर्म पुद्गलका परिणाम है. उसको आत्मा कैसें करैगा? क्योंकि [आत्मा] जीवद्रव्य जो है सो [स्वकं भावं] अपने भावकर्मको [मुक्त्वा] छोडकर [अन्यत्] अन्य [किंचित् अपि] कुछ भी परद्रव्यसंबंधी भावको [न करोति] नहिं करता है।

भावार्थ—सिद्धान्तमें कार्यकी उत्पत्तिकेलिये दो कारण कहे हैं। एक **'उपादान'** और एक **'निमित्त'**। द्रव्यकी शक्तिका नाम उपादान है. सहकारी कारणका नाम निमित्त है। जैसें घटकार्यकी उत्पत्तिकेलिये मृत्तिकाकी शक्ति तो उपादान कारण है और कुंभकार दंडचक्रादि निमित्त कारण हैं। इससे निश्चय करकें मृत्तिका (मट्टी) घटकार्यकी कर्त्ता है. व्यवहारसे कुंभकार कर्त्ता है. क्योंकि निश्चय करकें तो कुंभकार अपने चेतनमयी घटाकार परिणामोंका ही कर्त्ता है. व्यवहारसे घट कुंभकारके परिणामोंका कर्त्ता है. जहां उपादानकारण है, तहां निश्चय नय है और जहां निमित्तकारण है वहां व्यवहार नय है। और जो यों कहा जाय कि चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता सर्वथा प्रकार निश्चय नयकर घट ही है कुंभकार नहीं है तो अचेतन घट चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता कैसें होय? चैतन्यद्रव्य अचेतन परिणामोंका कर्त्ता होय अचेतनद्रव्य चैतन्यपरिणामोंका कर्त्ता नहिं होता। तैसें ही आत्मा और कर्मोंमें उपादान निमित्तका कथन जानना। इस कारण शिष्यने जो यह प्रश्न किया था कि जो सर्वथा प्रकार द्रव्यकर्म ही भावकर्मोंका कर्त्ता माना जाय तो आत्मा अकर्त्ता हो जाय. द्रव्यकर्मको करनेकेलिये फिर निमित्त कौन होगा? इस कारण आत्माके भावकर्मोंका निमित्त पाकर द्रव्यकर्म होता है. द्रव्यकर्मसे संसार होता है. आत्मा द्रव्यकर्मका कर्त्ता नहीं है. क्योंकि अपने भावकर्मके विना और परिणामोंका कर्त्ता आत्मा कदापि नहिं होता।

आगें शिष्यके इस प्रश्नका उत्तर कहा जाता है।

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं॥ ६०॥

संस्कृतछाया.

भावः कर्मनिमित्तः कर्म पुनर्भावकारणं भवति।
न तु तेषां खलु कर्त्ता न विना भूतास्तु कर्त्तारं॥ ६०॥

पदार्थ—[भावः] औदयिकादि भाव [कर्मनिमित्तः] कर्मके निमित्तपाकर होते हैं [पुनः] फिर [कर्म] ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म जो है सो [भावकारणं] औदयि-

कादि भावकर्मोंका निमित्त [भवति] होता है। [तु] और [तेषां] तिन द्रव्यकर्म भावकर्मोंका [खलु] निश्चय करकें [कर्त्ता न] आपसमें द्रव्य कर्त्ता नहीं है. न पुद्गल भावकर्मका कर्त्ता है और न जीव द्रव्यकर्मका कर्त्ता है [तु] और वे द्रव्यकर्म भावकर्म [कर्त्तारं विना] कर्त्ताके विना [नैव] निश्चय करकें नहीं [भूताः] हुये हैं अर्थात् वे द्रव्यभावकर्म कर्त्ता विना भी नहीं हुये।

भावार्थ—निश्चय नयसे जीवद्रव्य अपने चिदात्मक भावकर्मोंका कर्त्ता है–और पुद्गलद्रव्य भी निश्चयकरकें अपने द्रव्यकर्मका कर्त्ता है. व्यवहारनयकी अपेक्षा जीव द्रव्यकर्मके विभाव भावके कर्त्ता हैं। और द्रव्यकर्म जीवके विभावभावोंके कर्त्ता हैं. इस प्रकार उपादान निमित्त कारणके भेदसे जीवकर्मका कर्तृत्व निश्चय व्यवहार नयोंकर आगम प्रमाणसे जान लेना। शिष्यने जो पूर्व गाथामें प्रश्न किया था गुरुने इसप्रकार उसका समाधान किया है।

आगें फिर भी दृढ कथनके निमित्त आगमप्रमाण दिखाते हैं कि निश्चयकरकें जीवद्रव्य अपने भावकर्मोंका ही कर्त्ता है पुद्गलकर्मोंका कर्त्ता नहीं है।

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं॥ ६१॥

संस्कृतछाया.

कुर्वन् स्वकं स्वभावं आत्मा कर्त्ता स्वकस्य भावस्य।
न हि पुद्गलकर्मणामिति जिनवचनं ज्ञातव्यम्॥ ६१॥

पदार्थ—[**स्वकं**] आत्मीक [**स्वभावं**] परिणामको [**कुर्वन्**] करता हुवा [**आत्मा**] जीवद्रव्य [**स्वकस्य**] अपने [**भावस्य**] परिणामोंका [**कर्त्ता**] करनहारा होता है। [**पुद्गलकर्मणां**] पुद्गलमयी द्रव्यकर्मोंका कर्त्ता [**हि**] निश्चय करके [**न**] नहीं है [**इति**] इस प्रकार [**जिनवचनं**] जिनेन्द्रभगवान्‌की वाणी [**ज्ञातव्यं**] जाननी।

भावार्थ—आत्मा निश्चयकरकें अपने भावोंका कर्त्ता है परद्रव्यका कर्त्ता नहीं है

आगें निश्चयनयसे उपादानकारणकी अपेक्षा कर्म अपने स्वरूपका कर्त्ता है. ऐसा कथन करते हैं।

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥ ६२॥

संस्कृतछाया.

कर्मापि स्वकं करोति स्वेन स्वभावेन सम्यगात्मानं।
जीवोऽपि च तादृशकः कर्मस्वभावेन भावेन॥ ६२॥

पदार्थ—[**कर्म**] कर्मरूप परिणये पुद्गलस्कन्ध [**अपि**] निश्चयसे [**स्वेन स्वभावेन**] अपने स्वभावसे [**सम्यक्**] यथार्थ जैसेका तैसा [**स्वकं**] अपने [**आत्मानं**] स्वरूपको

[**करोति**] करता है [**च**] फिर [**जीवःअपि**] जीव पदार्थ भी [**कर्मस्वभावेन**] कर्मरूप [**भावेन**] भावोंसे [**तादृशकः**] जैसें द्रव्यकर्म आप अपने स्वरूपकेद्वारा अपना ही कर्त्ता है तैसें ही आप अपने स्वरूपद्वारा आपको करता है।

भावार्थ—जीव और पुद्गलमें अभेद षट्कारक हैं सो विशेषताकर दिखाये जाते हैं. कर्मयोग्य पुद्गलस्कंधको करता है इस कारण पुद्गलद्रव्य कर्त्ता है। ज्ञानावरणादि परिणाम कर्मको करते हैं इसकारण पुद्गलद्रव्य कर्मकारक भी है। कर्मभाव परिणमनको समर्थ ऐसी अपनी स्वशक्तिसे परिणमता है इस कारण वही पुद्गलद्रव्य करणकारक भी है। और अपना स्वरूप आपको ही देता है इसलिये सम्प्रदान है। आपसे आपको करता है इस प्रकार आप ही अपादान कारक है। अपने ही आधार अपने परिणामको करता है इस कारण आपही अधिकरण कारक है। इसप्रकार पुद्गलद्रव्य आप षट्कारकरूप परिणमता है अन्य द्रव्यके कर्तृत्वको निश्चयकरकें नहीं चाहता है। इसप्रकार जीवद्रव्य भी अपने औदयिकादि भावोंसे षट्कारकरूप होकर परिणमता है और अन्यद्रव्यके कर्तृत्वको नहिं चाहता है. इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि न तो जीव कर्मका कर्त्ता है और न कर्म जीवका कर्त्ता है।

आगें कर्म और जीवोंका अन्य कोई कर्त्ता है और इनको अन्य जीवद्रव्य फल देता है. ऐसा जो दूषण है उसकेलिये शिष्य प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं॥ ६३॥

संस्कृतछाया.

कर्म कर्म करोति यदि स आत्मा करोत्यात्मानं।
कथं तस्य फलं भुङ्क्ते आत्मा कर्म च ददाति फलं॥ ६३॥

दार्थ—[**यदि**] जो [**कर्म**] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्मसमूह जो है सो [**र्म**] अपने परिणामको [**करोति**] करता है और जो [**सः**] वह संसारी [**आत्मा**] जीवद्रव्य [**आत्मानं**] अपने स्वरूपको [**करोति**] करता है [**तदा**] तव [**तस्य**] उस कर्मका [**फलं**] उदय अवस्थाको प्राप्त हुवा जो फल तिसको [**आत्मा**] जीवद्रव्य [**कथं**] किस प्रकार [**भुङ्क्ते**] भोगता है? [**च**] और [**कर्म**] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्म [**फलं**] अपने विपाकको [**कथं**] कैसे [**ददाति**] देता है।

भावार्थ—जो कर्म अपने कर्म स्वरूपका कर्त्ता है और आतमा अपने स्वरूपका कर्त्ता है तो आतमा जड़स्वरूप कर्मको कैसें भोगवैगा? और कर्म चैतन्यस्वरूप आत्माको फल कैसें देगा? निश्चयनयकी अपेक्षा किसीप्रकार न तो कोई कर्म भोगता है और न कोई भुक्तावै है, ऐसा शिष्यने प्रश्न किया तिसका गुरु समाधान करते हैं कि—आप ही जव

आत्मा रागी द्वेषी होकर अनादि अविद्यासे परिणमता है, तब परद्रव्यसंबन्धी सुख दुःख मान लेता है और कर्म फल देता हैं ऐसा कहते हैं।

आगें शिष्यने जो यह प्रश्न किया है उसका विशेष कथन किया जाता है सो पहिले यह कहते हैं कि कर्मयोग्य पुद्गल समस्त लोकमें भरपूर होकर तिष्ठे हुये हैं।

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो।
सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं॥ ६४॥

संस्कृतछाया.

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः।
सूक्ष्मैर्बादरैश्चानन्तानन्तैर्विविधैः॥ ६४॥

पदार्थ—[**लोकः**] समस्त त्रैलोक्य [**सर्वतः**] सब जगहँ [**पुद्गलकायैः**] पुद्गल-स्कन्धोंके द्वारा [**अवगाढगाढनिचितः**] अतिशय भरपूर गाढा भराहुवा है। जैसें कज्जलकी कज्जलदानी अंजनसे भरी होती है उसी प्रकार सर्वत्र पुद्गलोंसे लोक भरपूर तिष्ठता है. कैसे हैं पुद्गल? [**सूक्ष्मैः**] अतिशय सूक्षम हैं [**च**] तथा [**बादरैः**] अतिशय बादर हैं। फिर कैसे हैं पुद्गल? [**अनन्तानन्तैः**] अपरिमाणसंख्या लियेहुये हैं। फिर कैसे हैं पुद्गल? [**हि विविधैः**] निश्चय करकें कर्म परमाणु स्कंध आदि अनेक प्रकारके हैं।

आगें कहते हैं कि अन्यसे कर्मकी उत्पत्ति नहीं है जब रागादि भावोंसे आत्मा परिण-मता है तब पुद्गलका बन्ध होता है।

अत्ता कुणदि सहावं तत्थगदा पोग्गला सभावेहिं।
गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा॥ ६५॥

संस्कृतछाया.

आत्मा करोति स्वभावं तत्रगताः पुद्गलाः स्वभावैः।
गच्छन्ति कर्मभावमन्योन्यावगाहावगाढाः॥ ६५॥

पदार्थ—[**आत्मा**] जीव [**स्वभावं**] अशुद्ध रागादि विभाव परिणामोंको [**करोति**] करता है [**तत्रगताः पुद्गलाः**] जहां जीवद्रव्य तिष्ठता है तहां वर्गणारूप पुद्गल तिष्ठते हैं ते [**स्वभावैः**] अपने परिणामोंके द्वारा [**कर्मभावं**] ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप भावको [**गच्छन्ति**] प्राप्त होते हैं। कैसे हैं वे पुद्गल? [**अन्योन्यावगाहावगाढाः**] परस्पर एक क्षेत्र अवगाहना करके अतिशय गाढे भर रहे हैं।

भावार्थ—यह आत्मा संसार अवस्थामें अनादि कालसे लेकर परद्रव्यके सम्बन्धसे अशुद्ध चेतनात्मक भावोंसे परिणमता है. वही आत्मा जब मोहरागद्वेषरूप अपने विभाव भावोंसे परिणता है, तब इन भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल अपनी ही उपादान शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मभावोंसे परिणमता है—तत्पश्चात् जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक क्षेत्रावगाह-

नारूप बंधते हैं. इससे यह बात सिद्ध हुई कि पूर्वबन्धेहुये द्रव्यकर्मोंका निमित्त पाकर जीव अपनी अशुद्ध चैतन्यशक्तिकेद्वारा रागादि भावोंका कर्त्ता होता है तब पुद्गलद्रव्य रागादि भावोंका निमित्त पाकर अपनी शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मोंका कर्त्ता होता है। परद्रव्यसे निमित्त नैमित्तिक भाव हैं उपादान अपने आपसे हैं।

आगें कर्मोंकी विचित्रताके उपादानकारणसे अन्यद्रव्य कर्त्ता नहीं है पुद्गलही है ऐसा कथन करते हैं।

जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ति।
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि॥ ६६॥

संस्कृतछाया.

यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कन्धनिर्वृत्तिः।
अकृता परैर्दृष्टा तथा कर्मणां विजानीहि॥ ६६॥

पदार्थ—[**यथा**] जैसें [**पुद्गलद्रव्याणां**] पुद्गलद्रव्योंके [**बहुप्रकारैः**] नानाप्रकारके भेदोंसे [**स्कन्धनिर्वृत्तिः**] स्कन्धोंकी परणति [**दृष्टा**] देखी जाती है. कैसी हैं स्कन्धोंकी परणति? [**परैः**] अन्यद्रव्योंके द्वारा [**अकृता**] नहिं कियीहुई अपनी शक्तिसे उत्पन्नई है [**तथा**] तैसें ही [**कर्मणां**] कर्मोंकी विचित्रता [**विजानीहि**] जानो।

भावार्थ—जैसें चन्द्रमा वा सूर्यकी प्रभाका निमित्त पाकर सन्ध्याके समय आकाशमें अनेक वर्ण, बादल, इन्द्रधनुष, मंडलादिक नाना प्रकारके पुद्गलस्कन्ध अन्यकर विना किये ही अपनी शक्तिसे अनेक प्रकार होकर परिणमते हैं, तैसें ही जीवद्रव्यके अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका निमित्त पाकर पुद्गलवर्गणायें अपनी ही शक्तिसे ज्ञानावर्णादि आठ प्रकार कर्मदशारूप होकर परिणमतीं हैं।

आगें निश्चयनयकी अपेक्षा यद्यपि जीव और पुद्गल अपने भावोंके कर्त्ता हैं. तथापि व्यवहारसे कर्मद्वारा दियेहुये सुखदुखके फलको जीव भोगता है यह कथन भी विरोधी नहीं है ऐसा कहते हैं।

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजंति॥ ६७॥

संस्कृतछाया.

जीवाः पुद्गलकायाः अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः।
काले वियुज्यमानाः सुखदुःखं ददति भुञ्जन्ति॥ ६७॥

पदार्थ—[**जीवाः**] जीवद्रव्य हैं ते [**पुद्गलकायाः**] पुद्गलवर्गणाके पुञ्ज [**अन्योऽन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः**] परस्पर अनादि कालसे लेकर अत्यन्त सघन मिलापसे वन्ध अवस्थाको प्राप्त हुये हैं। वे ही जीव पुद्गल [**काले**] उदयकाल अवस्थामें [**वियु-**

ज्यमानाः] अपना रसदेकर खिरते हैं तब [सुखदुःखं] साता असाता [ददति] देते हैं और [भुञ्जन्ति] भोगते हैं।

भावार्थ—जीव जो हैं वे पूर्वबन्धसे मोहरागद्वेषरूप भावोंसे स्निग्धरूक्ष हैं और पुद्गल अपने स्वभावसे ही स्निग्धरूक्षपरिणामोंद्वारा प्रवर्तता है। आगमप्रमाणमें गुण अंशकर जैसी कुछ बन्धअवस्था कही गई है, उस ही प्रकार अनादिकालसे लेकर आपसमें बंध रहे हैं। और जब फलकाल आता है तब पुद्गल कर्मवर्गणायें जीवके जो बंधरहीं हैं वे सुखदुःखरूप होतीं हैं. निश्चयकर आत्माके परिणामोंको निमित्त मात्र सहाय है. व्यवहारकर शुभअशुभ जो बाह्यपदार्थ हैं उनको भी कर्म निमित्त कारण हैं, सुखदुःखफलको देते हैं। और जीव जो हैं वे अपने निश्चयकर तो सुखदुःखरूप परिणामोंके भोक्ता हैं और व्यवहारकर द्रव्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुये जो शुभअशुभ पदार्थ तिनको भोगते हैं। जीवमें भोगनेका गुण है. कर्ममें यह गुण नहीं है क्योंकि कर्म जड़ है. जड़में अनुभवनशक्ति नहीं है।

आगें कर्तृत्व भोक्तृत्वका व्याख्यान संक्षेप मात्र कहा जाता है.

तह्मा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स।
भोत्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं॥ ६८॥

संस्कृतछाया.

तस्मात्कर्म कर्ता भावेन हि संयुतमथ जीवस्य।
भोक्ता तु भवति जीवश्चेतकभावेन कर्मफलं॥ ६८॥

पदार्थ—[तस्मात्] तिस कारणसे [हि] निश्चयकरकें [कर्म] द्रव्यकर्म जो है सो [कर्ता] अपने परिणामोंका कर्त्ता है कैसा है द्रव्यकर्म? [जीवस्य] आत्मद्रव्यका [भावेन] अशुद्ध चेतनात्मपरिणामोंकर [संयुतं] संयुक्त है। भावार्थ–द्रव्यकर्म अपने ज्ञानावरणादिक परिणामोंका उपादानरूप कर्त्ता है. और आत्माके अशुद्ध चेतनात्मक परिणामोंको निमित्त मात्र है। इस कारण व्यवहारकर जीव भावोंका भी कर्त्ता कहा जाता है [अथ] फिर इसी प्रकार जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका उपादानरूप कर्त्ता है. ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मको अशुद्ध चेतनात्मक भाव निमित्तभूत हैं। इस कारण व्यवहारसे जीव द्रव्यकर्मका भी कर्त्ता है [तु] और [जीवः] आत्मद्रव्य जो है सो [चेतकभावेन] अपने अशुद्ध चेतनात्मक रागादि भावोंसे [कर्मफलं] साता असातारूप कर्मफलका [भोक्ता] भोगनेवाला [भवति] होता है।

भावार्थ—जैसें जीव और कर्म निश्चय व्यवहारनयोंकेद्वारा दोनों परस्पर एक दूसरेका कर्त्ता हैं तैसें ही दोनों भोक्ता नहीं हैं। भोक्ता केवल मात्र एक जीवद्रव्य ही है क्योंकि आप चैतन्यस्वरूप है इसकारण पुद्गलद्रव्य अचेतन स्वभावसे निश्चय व्यव-

हार दोनों नयोंमेंसे एक भी नयसे भोक्ता नहीं है। इस कारण जीवद्रव्य निश्चय नयकी अपेक्षा अपने अशुद्ध चेतनात्मक सुखदुःखरूप परिणामोंका भोक्ता है। व्यवहारकर इष्टानिष्ट पदार्थोंका भोक्ता कहा जाता है।

आगें कर्मसंयुक्त जीवकी मुख्यतासे प्रभुत्व गुणका व्याख्यान करते हैं।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडति पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥ ६९ ॥

संस्कृतछाया.

एवं कर्त्ता भोक्ता भवन्नात्मा स्वकैः कर्मभिः।
हिण्डते पारमपारं संसारं मोहसंछन्नः ॥ ६९ ॥

पदार्थ—[**स्वकैः**] अनादि विद्यासे उत्पन्न कियेहुये अपने [**कर्मभिः**] ज्ञानावरणादिक कर्मोंके उदयसे [**आत्मा**] जीवद्रव्य [**एवं**] इस प्रकार [**कर्त्ता**] करनहारा [**भोक्ता**] भोगनेहारा [**भवन्**] होता हुवा [**पारं**] भव्यकी अपेक्षा सान्त [**अपारं**] अभव्यकी अपेक्षा अनन्त ऐसा जो [**संसारं**] पंचपरावर्त्तनरूप संसारको धरकर अनेक स्वरूपसे चतुर्गतिमें [**हिंडते**] भ्रमण करता है. कैसा है यह संसारी जीव? [**मोहसंछन्नः**] मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप अशुद्ध परिणतिद्वारा आच्छादित है।

भावार्थ—यह जीव अपनी ही भूलसे संसारमें अनेक विभाव पर्याय धरधरकर नचै है अर्थात् असत् वस्तुमें 'सत्'रूप मानता है. जैसें मदमत्त अगम्य पदार्थोंमें प्रवर्तै है तैसी चेष्टा करता हुवा अपना शुद्धस्वभाव विसारता है।

आगें कर्मसंयोगरहित जीवकी मुख्यतासे प्रभुत्वगुणका व्याख्यान करते हैं।

उवसंतखीणमोहो मग्गंजिणभासिदेण समुवगदो।
णाणाणुमग्गचारी वजदि णिव्वाणपुरं धीरो ॥ ७० ॥

संस्कृतछाया.

उपशान्तक्षीणमोहो मार्गं जिनभाषितेन समुपगतः।
ज्ञानानुमार्गचारी व्रजति निर्वाणपुरं धीरः ॥ ७० ॥

पदार्थ—[**उपशान्तक्षीणमोहः**] अपनी फलविपाक दशारहित उपशम भावको अथवा मूलसत्तासे विनाशभावको प्राप्त हुवा है असत्वस्तुमें प्रतीतिरूप मोहकर्म जिसका ऐसा [**धीरः**] अपने स्वरूपमें निश्चल सम्यग्दृष्टि जीव है सो [**निर्वाणपुरं**] मोक्षनगरमें [**व्रजति**] गमन करता है भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव है सो गुणस्थानपरिपाटीके क्रमसे मोहका उपशम तथा क्षय करकें मुक्त हुवा संता अनन्त आत्मीक सुखका भोक्ता होता है। कैसा है वह सम्यग्दृष्टी जीव? [**जिनभाषितेन मार्गं समुपगतः**] सर्वज्ञप्रणीत आगमकेद्वारा सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररूप मोक्षमार्गको प्राप्त हुवा है। फिर कैसा है? [**ज्ञानानुमार्गचारी**] स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञानमार्गमें प्रवर्त्तता है।

जुदा होता है तब शब्दसे रहित है। यद्यपि अपने स्निग्धरूक्ष गुणोंका कारण पाकर अनेक परमाणुरूपस्कन्धपरणतिको धरकर एक होता है तथापि अपने एकरूपसे स्वभावको नहिं छोडता सदा एक ही द्रव्य रहता है।

आगें समस्त पुद्गलोंके भेद संक्षेपतासे दिखाये जाते हैं।

उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदिय काया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे॥ ८२॥

संस्कृतछाया.

उपभोग्यमिन्द्रियैश्चेन्द्रियः काया मनश्च कर्माणि।
यद्भवति मूर्त्तमन्यत् तत्सर्वं पुद्गलं जानीयात्॥ ८२॥

पदार्थ—[**यत्**] जो [**इन्द्रियैः**] पांचों इन्द्रियोंसे [**उपभोग्यं**] स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्दरूप पांच प्रकारके विषय भोगनेमें आते हैं [**च**] और [**इन्द्रियः**] स्पर्श जीभ नासिका कर्ण नेत्र ये पांच प्रकारकी द्रव्यइन्द्रिय [**कायः**] औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पांच प्रकारके शरीर [**च**] और [**मनः**] पौद्गलीक द्रव्यमन तथा [**कर्माणि**] द्रव्यकर्म नोकर्म और [**यत्**] जो कुछ [**अन्यत्**] और कोई [**मूर्त्तं**] मूर्त्तीक पदार्थ [**भवति**] है [**तत्सर्वं**] वे समस्त [**पुद्गलं**] पुद्गलद्रव्य [**जानीयात्**] जानो।

भावार्थ—पांच प्रकार इन्द्रियोंके विषय, पांच प्रकारकी इन्द्रियें, द्रव्यमन, द्रव्यकर्म, नोकर्म, इनके सिवाय और जो अनेक पर्यायोंकी उत्पत्तिके कारण नानाप्रकारकी अनंतानंत पुद्गलवर्गणायें हैं. अनन्ती असंख्येयाणु वर्गणा हैं और अनंती वा असंख्याती संखेयाणु वर्गणा हैं, दो अणुके स्कन्धतांई और परमाणु अविभागी इत्यादि जो भेद हैं वे समस्त ही पुद्गलद्रव्यमयी जानने. यह पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुवा।

आगें धर्म अधर्म द्रव्यास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है जिसमेंसे प्रथम ही धर्म द्रव्यका स्वरूप कहा जाता है।

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं।
लोगोगाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं॥ ८३॥

संस्कृतछाया.

धार्मास्तिकायोऽरसोऽवर्णगन्धोऽशब्दोऽस्पर्शः।
लोकावगाढः स्पष्टः पृथुलोऽसंख्यातप्रदेशः॥ ८३॥

पदार्थ—[**धर्मास्तिकायः**] धर्म द्रव्य जो है सो काय सहित प्रवर्त्तै है। कैसा है वह धर्म द्रव्य? [**अरसः**] पांच प्रकारके रसरहित [**अवर्णगन्धः**] पांच प्रकारके वर्ण और दो प्रकारके गन्धरहित [**अशब्दः**] शब्दपर्यायसे रहित [**अस्पर्शः**] आठ प्रकारके स्पर्श गुणरहित है। फिर कैसा है? [**लोकावगाढः**] समस्त लोकको व्याप्त होकर तिष्ठता

है [**स्पृष्टः**] अपने प्रदेशोंके स्पर्शसे अखंडित है [**पृथुलः**] स्वभावहीसे सब जगहँ विस्तृत है। और [**असंख्यातप्रदेशः**] यद्यपि निश्चय नयसे एक अखंडित द्रव्य है तथापि व्यवहारसे असंख्यातप्रदेशी है।

भावार्थ—धर्मद्रव्य स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणोंसे रहित है इसकारण अमूर्त्तीक है क्योंकि स्पर्श रस गन्ध वर्णवती वस्तु सिद्धांतमें मूर्तीक ही है। ये चार गुण जिसमें नहिं होय उसीका नाम अमूर्त्तीक है। इस धर्मद्रव्यमें शब्द भी नहीं है क्योंकि शब्द भी मूर्तीक होते हैं इसकारण शब्द पर्यायसे रहित है। लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है। यद्यपि अखंडद्रव्य है परंतु भेद दिखानेकेलिये परमाणुवोंद्वारा असंख्यात प्रदेशी गिना जाता है।

आगें फिर भी धर्मद्रव्यका स्वरूप कुछ विशेषताकर दिखाया जाता है।

अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं ॥
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥ ८४ ॥

संस्कृतछाया.

अगुरुलघुकैः सदा तैः अनन्तैः परिणतः नित्यः।
गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतः स्वयमकार्यः ॥ ८४ ॥

पदार्थ—[**सदा**] सदाकाल [**तैः**] उन द्रव्योंके अस्तित्व करनेहारे [**अगुरुलघुकैः**] अगुरु लघु नामक [**अनन्तैः**] अनन्त गुणोंसे [**परिणतः**] समय समयमें परिणमता है। फिर कैसा है? [**नित्यः**] टंकोत्कीर्ण अविनाशी वस्तु है। फिर कैसा है? [**गतिक्रियायुक्तानां**] गमन अवस्थाकर सहित जो जीव पुद्गल हैं तिनको [**कारणभूतं**] निमित्तकारण है। फिर कैसा है? [**स्वयमकार्यः**] किसीसे उत्पन्न नहिं हुवा है।

भावार्थ—धर्मद्रव्य सदा अविनाशी टंकोत्कीर्ण वस्तु है। यद्यपि अपने अगुरुलघु गुणसे षट्गुणी हानिवृद्धिरूप परिणमता है, परिणामसे उत्पादव्ययसंयुक्त है तथापि अपने ध्रौव्य स्वरूपसे चलायमान नहिं होता क्योंकि द्रव्य वही है जो उपजे विनशै थिर रहै। इसकारण यह धर्मद्रव्य अपने ही स्वभावको परिणये जो पुद्गल तिनको उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र गतिको कारणभूत है। और यह अपनी अवस्थासे अनादि अनंत है, इस कारण कार्यरूप नही हैं। कार्य उसे कहते हैं जो किसीसे उपज्या होय। गतिको निमित्तपाय सहायी है, इसलिये यह धर्मद्रव्य कारणरूप है किन्तु कार्य नहीं है।

आगे धर्मद्रव्य गतिको निमित्तमात्र सहाय किस दृष्टान्तकर है सो दिखाया जाता है।

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए ॥
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥ ८५ ॥

संस्कृतछाया.

उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति।
तथा जीवपुद्गलानां धर्मं द्रव्यं विजानीहि ॥ ८५ ॥

पदार्थ—[**लोके**] इस लोकमें [**यथा**] जैसें [**उदकं**] जल [**मत्स्यानां**] मच्छियोंको [**गमनानुग्रहकरं**] गमनके उपकारको निमित्तमात्रसहाय [**भवति**] होता है [**तथा**] तैसें ही [**जीवपुद्गलानां**] जीव और पुद्गलोंके गमनको सहाय [**धर्मद्रव्यं**] धर्म नामा द्रव्य [**विजानीहि**] जानना।

भावार्थ—जैसें जल मच्छियोंके गमन करते समय न तो आप उनके साथ चलता है और न मच्छियोंको चलावै है किन्तु उनके गमनको निमित्तमात्र सहायक है, ऐसा ही कोई एक सभाव है। मच्छियां जो जलके विना चलनेमें असमर्थ हैं इस कारण जल निमित्तमात्र है। इसी प्रकार ही जीव और पुद्गल धर्मद्रव्यके विना गमन करनेको असमर्थ हैं जीव पुद्गलके चलते धर्मद्रव्य आप नहिं चलता और न उनको प्रेरणा करकें चलाता है. आप तो उदासीन है परन्तु कोई एक ऐसा ही अनादिनिधनस्वभाव है कि जीव पुद्गल गमन करै तो उनको निमित्तमात्र सहायक होता है।

आगें अधर्मद्रव्यका स्वरूप दिखाया जाता है।

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदि किरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव॥ ८६॥

संस्कृतछाया.

यथा भवति धर्मद्रव्यं तथा तज्जानीहि द्रव्यमधर्माख्यं।
स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं तु पृथिवीव॥ ८६॥

पदार्थ—[**यथा**] जैसें [**तत्**] जिसका स्वरूप पहिले कह आये वह [**धर्मद्रव्यं**] धर्मद्रव्य [**भवति**] होता है [**तथा**] तैसें ही [**अधर्माख्यं**] अधर्म नामक [**द्रव्यं**] द्रव्य [**स्थितिक्रिया युक्तानां**] स्थिर होनेकी क्रियायुक्त जीव पुद्गलोंको [**पृथिवी इव**] पृथिवीकी समान सहकारी [**कारणभूतं**] कारण [**जानीहि**] जान।

भावार्थ—जैसें भूमि अपने स्वभावहीसे अपनी अवस्थालिये पहिले ही तिष्ठै है स्थिर हैं और घोटकादि पदार्थोंको जोरावरी नहिं ठहराती. घोटकादि जो स्वयं ही ठहरना चाहै तो पृथिवी सहज अपनी उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र स्थितिको सहायक है। इसीप्रकार अधर्मद्रव्य जो है सो अपनी साहजिक अवस्थासे अपने असंख्यात प्रदेश लिये लोकाकाश प्रमाणतासे अविनाशी अनादि कालसे तिष्ठै है, उसका स्वभाव भी जीव पुद्गलकी स्थिरताको निमित्तमात्र कारण है, परन्तु अन्य द्रव्यको जबरदस्तीसे नहिं ठहराता। आपहीसे जो जीवपुद्गल स्थिर अवस्थारूप परिणमै तो आप अपनी स्वाभाविक उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र सहाय होता है। जैसें धर्मद्रव्य निमित्तमात्र गतिको सहायक है उसी प्रकार अधर्मद्रव्य स्थिरताको सहकारी कारण जानना। यह संक्षेप मात्र धर्म अधर्म द्रव्यका स्वरूप कहा।

आगें जो कोई कहै कि धर्म अधर्म द्रव्य है ही नहीं तो उसका समाधान करनेकेलिये आचार्य कहते हैं.

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी।
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥ ८७ ॥

संस्कृतछाया.

जातमलोकलोकं ययोः सद्भावतश्च गमनस्थितिः।
द्वावपि च मतौ विभक्तावविभक्तौ लोकमात्रौ च ॥ ८७ ॥

पदार्थ—[**ययोः**] जिन धर्माधर्म द्रव्यके [**सद्भावतः**] अस्तित्व होनेसे [**अलोकलोकं**] लोक और अलोक [**जातं**] हुवा है [**च**] और जिनसे [**गमनस्थिती**] गति स्थिति होती है वे [**द्वौ अपि**] दोनों ही [**विभक्तौ मतौ**] अपने अपने स्वरूपसे जुदे जुदे कहे गये हैं किंतु [**अविभक्तौ**] एकक्षेत्र अवगाहसे जुदे २ नहीं है। [**च**] और [**लोकमात्रौ**] असंख्यातप्रदेशी लोकमात्र है।

भावार्थ—यहां जु प्रश्न किया था कि—धर्म अधर्म द्रव्य है ही नहीं—आकाश ही गति स्थितिको सहायक है तिसका समाधान इस प्रकार हुवा कि—धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य है। जो ये दोनों नहिं होते तो लोक अलोकका भेद नहिं होता। लोक उसको कहते हैं जहां कि जीवादिक समस्त पदार्थ हों. जहां एक आकाश ही है सो अलोक है, इस कारण जीव पुद्गलकी गतिस्थिति लोकाकाशमें है अलोकाकाशमें नहीं है। जो इन धर्म अधर्मके गतिस्थिति निमित्तका गुण नहिं होता तो लोक अलोकका भेद दूर हो जाता जीव और पुद्गल ये दोनों ही द्रव्य गति स्थिति अवस्थाको धरते हैं इनकी गति स्थितिको बहिरंग कारण धर्म अधर्म द्रव्य लोकमें ही है। जो ये धर्म अधर्म द्रव्य लोकमें नहिं होते तो लोक अलोक ऐसा भेद ही नहिं होता सब जगहँ ही लोक होता इस कारण धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य है। जहांतक जीवपुद्गलगति स्थितिको करते हैं तहां तांई लोक है उससे परे अलोक जानना—इसी न्याय कर लोक अलोकका भेद धर्म अधर्म द्रव्यसे जानना। ये धर्म अधर्म द्रव्य दोनों ही अपने २ प्रदेशोंको लियेहुये जुदे जुदे हैं. एक लोकाकाश क्षेत्रकी अपेक्षा जुदे जुदे नहीं हैं क्योंकि लोकाकाशके जिन प्रदेशोंमें धर्मद्रव्य है उन ही प्रदेशोंमें अधर्मद्रव्य भी है दोनों ही हिलनचलनरूप क्रियासेरहित सर्वलोकव्यापी हैं। समस्त लोकव्यापी जीव पुद्गलोंको गतिस्थितिको सहकारी कारण हैं इसकारण दोनों ही द्रव्य लोकमात्र असंख्यातप्रदेशी हैं।

आगें धर्म अधर्म द्रव्य प्रेरक होकर गति स्थितिको कारण नहीं है अत्यन्त उदासीन हैं ऐसा कथन करनेको गाथा कहते हैं.

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स ॥
हवदि गती स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च ॥ ८८ ॥

संस्कृतछाया.

न च गच्छति धर्मास्तिको गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य।
भवति गतेः सः प्रसरो जीवानां पुद्गलानां च ॥ ८८ ॥

पदार्थ—[**धर्मास्तिकः**] धर्मास्तिकाय [**न**] नहीं [**गच्छति**] चलता हिलता है। [**च**] और [**अन्यद्रव्यस्य**] अन्य जीव पुद्गलका प्रेरक होयकर [**गमनं**] हलन चलन क्रियाको [**न**] नहीं [**करोति**] करता है [**सः**] वह धर्मद्रव्य [**जीवानां**] जीवोंकी और [**पुद्गलानां**] पुद्गलोंकी [**गतेः**] हलन चलन क्रियाका [**प्रसरः**] प्रवर्त्तक [**भवति**] होता है। [**च**] फिर इसप्रकारही अधर्मद्रव्य भी स्थितिको निमित्तमात्र कारण जानना।

भावार्थ—जैसें पवन अपने चंचलस्वभावसे ध्वजावोंकी हलन चलन क्रियाका कर्त्ता देखनेमें आता है तैसें धर्मद्रव्य नहीं है। धर्म द्रव्य जो है सो आप हलनचलनरूप क्रियासे रहित है किसी कालमें भी आप गति परणतिको (गमनक्रियाको) नहिं धारता। इसकारण जीवपुद्गलकी गतिपरणतिका सहायक किस प्रकार होता है उसका दृष्टान्त देते हैं. जैसे कि निःकम्प सरोवरमें 'जल' मच्छियोंकी गतिको सहकारी कारण है—जल स्वयं प्रेरक होकर मच्छियोंको नहिं चलाता, मच्छियें अपने ही गति परिणामके उपादान कारणसे चलतीं हैं परन्तु जलके विना नहिं चल सक्तीं, जल उनको निमित्तमात्र कारण है। उसी प्रकार जीवपुद्गलोंकी गति अपने उपादान कारणसे है धर्मद्रव्य आप चलता नही किन्तु अन्य जीवपुद्गलोंकी गतिकेलिये निमित्तमात्र होता है। इसीप्रकार अधर्मद्रव्य भी निमित्तमात्र है जैसें घोड़ा प्रथम ही गति क्रियाको करके फिर स्थिर होता है असवारकी स्थितिका कर्त्ता देखिये है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य प्रथम आप चलकर जीवपुद्गलकी स्थिरक्रियाका आप कर्त्ता नहीं है किंतु आप निःक्रिय है इसकारण गतिपूर्वस्थिति परणाम अवस्थाको प्राप्त नहिं होता है। यदि परद्रव्यकी क्रियासे इसकी गति पूर्वक्रिया नहिं होती तो किसप्रकार स्थिति क्रियाका सहकारी कारण होता है? जैसें घोड़ेकी स्थिति क्रियाका निमित्त कारण भूमि (पृथिवी) होती है। भूमि चलती नहीं परन्तु गतिक्रियाके करनेहारे घोड़ेकी स्थितिक्रियाको सहकारिणी है. उसीप्रकार अधर्मद्रव्य जीवपुद्गलकी स्थितिको उदासीन अवस्थासे स्थितिक्रियाका सहायी है।

आगें धर्म अधर्म द्रव्यको उपादानकारण गतिस्थितिका मुख्यतारूप नहीं है उदासीनमात्र भावसे निमित्तकारणमात्र कहा जाता है।

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुणतेसिमेव संभवदि।
ते सगपरणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥ ८९ ॥

संस्कृतछाया.

विद्यते येषां गमनं पुनस्तेषामेव सम्भवति।
ते स्वकपरिणामैस्तु गमनं स्थानं च कुर्वन्ति ॥ ८९ ॥

पदार्थ—धर्मद्रव्य अकेला आप ही किसी कालमें भी गतिकारण अवस्थाको नहिं धरता है और अधर्मद्रव्य भी अकेला किसी कालमें भी स्थिति कारण अवस्थाको नहिं धरता किंतु गति स्थितिपरणातिके कारण हैं । और जो ये दोनों धर्म अधर्म द्रव्य उपादानरूप मुख्यकारण गतिस्थितिके होते तो [**येषां**] जिन जीवपुद्गलोंका [**गमनं**] चलना [**स्थानं**] स्थिर होना [**विद्यते**] प्रवर्त्ते है [**पुनः**] फिर [**तेषां**] उन ही द्रव्योंका [**एव**] निश्चय करकें चलना थिर होना [**सम्भवति**] होता है । जो धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण होय कर जबरदस्तीसे जीवपुद्गलोंको चलाते और स्थिर करते तो सदाकाल जो चलते वे सदा चलते ही रहते और स्थिर होते वे सदा स्थिर ही रहते, इसकारण धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहीं हैं । [**ते**] वे जीवपुद्गल [**स्वकपरिणामैः तु**] अपने गतिस्थितिपरिणामके उपादानकारणरूपसे तो [**गमनं**] चलने [**च**] और [**स्थानं**] स्थिर होनेको [**कुर्वन्ति**] करते हैं । इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहीं हैं. व्यवहार नयकी अपेक्षा उदासीन अवस्थासे निमित्तकारण है । निश्चय करकें जीव पुद्गलोंकी गति स्थितिको उपादानकारण अपने ही परिणाम हैं ।

यह धर्मअधर्मास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुवा.

आगें आकाशद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है.

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तहय पुग्गलाणं च ॥
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥ ९० ॥

संस्कृतछाया.

सर्वेषां जीवानां शेषाणां तथैव पुद्गलानां च ।
यद्ददाति विवरमखिलं तल्लोके भवत्याकाशं ॥ ९० ॥

पदार्थ—[**सर्वेषां**] समस्त [**जीवानां**] जीवोंको [**तथैव**] तैसें ही [**शेषाणां**] धर्म अधर्म काल इन तीन द्रव्योंको [**च**] और [**पुद्गलानां**] पुद्गलोंको [**यत्**] जो [**अखिलं**] समस्त [**विवरं**] जगहँको [**ददाति**] देता है [**तत्**] वह द्रव्य [**लोके**] इस लोकमें [**आकाशं**] आकाशद्रव्य [**भवति**] होता है ।

भावार्थ—इस लोकमें पांच द्रव्योंको जो अवकाश देता है उसको आकाश कहते हैं ।

आगें लोकसे जो वाहर जो अलोकाकाश है उसका स्वरूप कहते हैं ।

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा ।
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥ ९१ ॥

संस्कृतछाया.

जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ च लोकतोऽनन्ये ।
ततोऽनन्यदन्यदाकाशमन्तव्यतिरिक्तं ॥ ९१ ॥

पदार्थ—[**जीवाः**] अनन्त जीव [**पुद्गलकायाः**] अनन्त पुद्गलपिंड [**च**] और [**धर्माधर्मौ**] धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य [**लोकतः अनन्ये**] लोकसे बाहर नाहीं। ये पांच द्रव्य लोकाकाशमें है. [**ततः**] तिस लोकाकाशसे [**अन्यत्**] जो और है [**अनन्यत्**] और नहीं भी है ऐसा [**आकाशं**] आकाशद्रव्य है सो [**अन्तव्यतिरिक्तं**] अनन्त है।

भावार्थ—आकाश लोक अलोकके भेदसे दो प्रकारका है। लोकाकाश उसे कहते है जो जीवादि पांच द्रव्योंकर सहित है। और अलोकाकाश वह है जहांपर आप एक आकाश ही है। वह अलोकाकाश एक द्रव्यकी अपेक्षा लोकसे जुदा नहीं है और वह अलोकाकाश पांचद्रव्यसे रहित है जब यह अपेक्षा लीजाय तब जुदा है। अलोकाकाश अनन्तप्रदेशी है लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है।

यहां कोई प्रश्न करै कि लोकाकाशका क्षेत्र किंचिन्मात्र है। उसमें अनन्त जीवादि पदार्थ कैसें समा रहे हैं?

उत्तर—एक घरमें जिसप्रकार अनेक दीपकोंका प्रकाश समाय रहा है और जिसप्रकार एक छोटेसे गुटकेमें वहुतसी सुवर्णकी राशि रहती है उसीप्रकार असंख्यात प्रदेशी आकाशमें साहजीक अवगाहना स्वभावसे अनन्त जीवादि पदार्थ समा रहे हैं। वस्तुवोंके स्वभाव वचनगम्य नहीं है सर्वज्ञ देव ही जानते हैं इसकारण जो अनुभवी हैं वे संदेह उपंजाते नहीं वस्तुस्वरूपमें सदा निश्चल होकर आत्मीक अनन्त सुख वेदते हैं।

आगें कोई प्रश्न करै कि धर्म अधर्मद्रव्य गतिस्थितिके कारण क्यों कहते हो आकाशको ही गतिस्थितिका कारण क्यों न कह देते? उसको दूषण दिखाते हैं।

आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ ॥ ९२ ॥

संस्कृतछाया.

आकाशमवकाशं गमनस्थितिकारणाभ्यां ददाति यदि।
ऊर्द्ध्वगतिप्रधानाः सिद्धाः तिष्ठन्ति कथं तत्र ॥ ९२ ॥

पदार्थ—[**यदि**] जो [**आकाशं**] आकाश नामक द्रव्य [**गमनस्थितिकारणाभ्यां**] चलन और स्थिरताके कारण धर्म अधर्म द्रव्योंके गुणोंसे [**अवकाशं**] जगह [**ददाति**] देता है [**तदा**] तो [**ऊर्द्ध्वगतिप्रधानाः**] ऊर्द्ध्व गतिवाले प्रसिद्ध जो [**सिद्धाः**] मुक्त जीव हैं ते [**तत्र**] सिद्ध क्षेत्रपर [**कथं**] कैसें [**तिष्ठन्ति**] रहते हैं?

भावार्थ—जो गमनस्थितिका कारण आकाशको ही मानलिया जाय तो धर्म अधर्मके अभाव होनेसे सिद्ध परमेष्ठीका अलोकमें भी गमन होता, इसकारण धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य है। उनसे ही लोककी मर्यादा है। लोकसे आगे गमनस्थिति नहीं है।

आगें लोकाग्रमें सिद्धोंकी थिरता दिखाते हैं।

जह्मा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
तह्मा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थित्ति ॥ ९३ ॥

संस्कृतछाया.

यस्मादुपरिस्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं।
तस्माद्गमनस्थानमाकाशे जानीहि नास्तीति ॥ ९३ ॥

पदार्थ—[**जिनवरैः**] वीतराग सर्वज्ञ देवोंनें [**यस्मात्**] जिस कारणसे [**सिद्धानां**] सिद्धोंका [**स्थानं**] निवासस्थान [**उपरि**] लोकके उपरि [**प्रज्ञप्तं**] कहा है [**तस्मात्**] तिस कारणसे [**आकाशे**] आकाश द्रव्यमें [**गमनस्थानं**] गतिस्थिति निमित्त गुण [**नास्ति**] नहीं है [**इति**] यह [**जानीहि**] हे शिष्य तू जान।

भावार्थ—जो सिद्धपरमेष्ठीका गमन अलोकाकाशमें होता तो आकाशका गुण गतिस्थिति निमित्त होता, सो है नहीं. गतिस्थितिनिमित्त गुण धर्म अधर्म द्रव्यमें ही है क्योंकि धर्म अधर्म द्रव्य लोकाकाशमें है आगें नहीं हैं यही संक्षेप अर्थ जानना।

आगें आकाश गतिस्थितिको निमित्त क्यों नहीं है सो दिखाते हैं।

जदि हवदि गमण हेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं।
पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवुड्ढी ॥ ९४ ॥

संस्कृतछाया.

यदि भवति गमनहेतुराकाशं स्थानकारणं तेषां।
प्रसजत्यलोकहानिर्लोकस्य चान्तपरिवृद्धिः ॥ ९४ ॥

पदार्थ—[**यदि**] जो [**आकाशं**] आकाश द्रव्य [**तेषां**] उन जीवपुद्गलोंको [**गमनहेतुः**] गमन करनेकेलिये सहकारी कारण तथा [**स्थानकारणं**] स्थितिको सहकारी कारण [**भवति**] होय [**'तदा'**] तो [**अलोकहानिः**] अलोकाकाशका नाश [**प्रसजति**] उत्पन्न होय [**च**] और [**लोकस्य**] लोकके [**अन्तपरिवृद्धिः**] अन्तकी (पूर्णताकी) वृद्धि हो जायगी।

भावार्थ—आकाश गतिस्थितिका कारण नहीं है क्योंकि—जो आकाश कारण हो जाय तो लोक अलोककी मर्यादा (हद) नहिं होती अर्थात् सर्वत्र ही जीव पुद्गलकी गतिस्थिति हो जाती। इसकारण लोक अलोककी मर्यादाका कारण धर्म अधर्म द्रव्य ही है. आकाश द्रव्यमें गतिस्थिति गुणका अभाव है. जो ऐसा न होय तो अलोकाकाशका अभाव होता और लोकाकाश असंख्यात प्रदेशप्रमाणवाले धर्म अधर्म द्रव्योंसे अधिक हो जाता अर्थात् समस्त अलोकाकाशमें जीवपुद्गल फैल जाते, अतएव गतिस्थिति गुण आकाशका नहीं है किन्तु धर्म अधर्म द्रव्यका है। जहांतक ये दोनों द्रव्य अपने असंख्यात प्रदेशोंसे स्थित हैं तहां ताईं लोकाकाश है और वहीं तक गमनस्थिति हैं।

आगें आकाशके गतिस्थितिका कारण गुण नहीं सो संक्षेपसे वताते हैं ।

तह्मा धम्माधम्मा गमणट्ठिदि कारणाणि णागासं ।
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥ ९५ ॥

संस्कृतछाया.

तस्माद्धर्म्माधर्म्मौ गमनस्थितिकारणे नाकाशं ।
इति जिनवरैः भणितं लोकस्वभावं शृण्वन्ताम् ॥ ९५ ॥

पदार्थ—[**तस्मात्**] तिसकारणसें [**धर्म्माधर्म्मौ**] धर्म अधर्म द्रव्य [**गमनस्थितिकारणे**] गमन और स्थितिको निमित्त कारण हैं [**आकाशं**] आकाश गमनस्थितिको कारण [**न**] नहीं है [**इति**] इसप्रकार [**जिनवरैः**] जिनेश्वर वीतराग सर्वज्ञने [**लोकस्वभावं**] लोकके स्वभावको [**शृण्वतां**] सुननेवाले जो जीव हैं तिनको [**भणितं**] कहा है॥

आगें धर्म अधर्म आकाश ये तीनों ही द्रव्य एक क्षेत्रावगाहकर एक है परन्तु निजस्वरूपसे तीनों पृथक् पृथक् हैं ऐसा कहते हैं ।

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा ।
पुधगुवलद्धिविसेसा करंति एगत्तमत्तत्तं ॥ ९६ ॥

संस्कृतछाया.

धर्म्माधर्म्माकाशान्यपृथग्भूतानि समानपरिमाणानि ।
पृथगुपलब्धिविशेषाणि कुर्वन्त्येकत्वमन्यत्वं ॥ ९६ ॥

पदार्थ—[**धर्म्माधर्म्माकाशानि**] धर्म अधर्म और लोकाकाश ये तीन द्रव्य व्यवहार नयकी अपेक्षा [**अपृथग्भूतानि**] एक क्षेत्रावगाही हैं अर्थात् जहां आकाश है तहां ही धर्म अधर्म ये दोनों द्रव्य हैं । कैसे हैं ये तीनो द्रव्य? [**समानपरिमाणानि**] वरावर हैं असंख्यात प्रदेश जिनके ऐसे हैं । फिर कैसे हैं? [**पृथगुपलब्धविशेषाणि**] निश्चयनयकी अपेक्षा भिन्नभिन्न पाये जाते हैं भेद जिनके ऐसे हैं अर्थात् निज स्वभावसे टंकोत्कीर्ण अपनी जुदी जुदी सत्ता लियेहुये हैं अत एव ये तीनों ही द्रव्य [**एकत्वं**] व्यवहारनयकी अपेक्षा एकक्षेत्रावगाही हैं इस कारण एकभावको और [**अन्यत्वं**] निश्चयनयकी अपेक्षा ये तीनो अपनी जुदी २ सत्ताके द्वारा भेदभावको [**कुर्वन्ति**] करते हैं । इसप्रकार इन तीनों द्रव्योंके व्यवहार निश्चय नयसे अनेक विलाश जानने ।

यह आकाशद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुवा.

आगें द्रव्योंके मूर्त्तत्व अमूर्त्तत्व चेतनत्व अचेतनत्व इसप्रकार चार भाव दिखाते हैं.

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥ ९७ ॥

संस्कृतछाया.

आकाशकालजीवा धर्म्माधर्म्मौ च मूर्त्तिपरिहीनाः ।
मूर्त्तं पुद्गलद्रव्यं जीवः खलु चेतनस्तेषु ॥ ९७ ॥

पदार्थ—[**आकाशकालजीवाः**] आकाशद्रव्य कालद्रव्य और जीवद्रव्य [**च**] और [**धर्म्माधर्म्मौ**] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य [**मूर्त्तिपरिहीनाः**] स्पर्श रस गन्ध वर्ण इन चारगुणरहित अमूर्त्तीक हैं । [**पुद्गलद्रव्यं**] पुद्गलद्रव्य एक [**मूर्त्तं**] मूर्त्तीक है अर्थात् स्पर्शरसगंधवर्णवान् है । [**तेषु**] तिनमेंसे [**जीवः**] जीवद्रव्य [**खलु**] निश्चय करके [**चेतनः**] ज्ञानदर्शनरूप चेतन है । और अन्य पांच द्रव्य धर्म अधर्म आकाश काल और पुद्गल ये अचेतन हैं.

आगें इन ही षट्द्रव्योंकी सक्रिय निष्क्रिय अवस्था दिखाते हैं ।

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा ।
पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ॥ ९८ ॥

संस्कृतछाया.

जीवाः पुद्गलकायाः सह सक्रिया भवन्ति न च शेषाः ।
पुद्गलकरणा जीवाः स्कन्धाः खलु कालकरणास्तु ॥ ९८ ॥

पदार्थ—[**जीवाः**] जीवद्रव्य [**पुद्गलकायाः**] पुद्गलद्रव्य [**सह सक्रियाः**] निमित्तभूत परद्रव्यकी सहायतासे क्रियावंत [**भवन्ति**] होते हैं । [**च**] और [**शेषाः**] शेषके जो चार द्रव्य हैं वे क्रियावन्त [**न**] नहीं हैं । सो आगें क्रियाका कारण विशेषताकर दिखाते हैं कि—[**जीवाः**] जीवद्रव्य हैं ते [**पुद्गलकरणाः**] पुद्गलका निमित्त पाकर क्रियावन्त होते हैं । [**तु**] और [**स्कन्धाः**] पुद्गलस्कन्ध हैं ते [**खलु**] निश्चय करके [**कालकरणाः**] कालद्रव्यके निमित्तसे क्रियावंत होकर नाना प्रकारकी अवस्थाको धरते हैं ।

भावार्थ—एक प्रदेशसे प्रदेशांतरमें जो गमन करना उसका नाम क्रिया है सो षट्द्रव्योंमेंसे जीव और पुद्गल ये दोनों द्रव्य प्रदेशसे प्रदेशान्तरमें गमन करते हैं और कम्परूप अवस्थाको धरते हैं इसकारण क्रियावंत कहे जाते हैं और शेषके चार द्रव्य निष्क्रिय निष्कम्प हैं. जीव द्रव्यकी क्रियाको निमित्त वहिरंगमें कर्म नोकर्मरूप पुद्गल हैं इनकी ही संगतिसे जीव अनेक विकाररूप होकर परिणमता है । और जब काल पायकर पुद्गलमयी कर्म नोकर्मका अभाव होता है तब साहजिक निष्क्रिय निष्कंप स्वाभाविक अवस्थारूप सिद्ध पर्यायको धरता है. इसकारण पुद्गलका निमित्त पाकर जीव क्रियावान् जानना । और कालका वहिरंग कारण पाकर पुद्गल अनेक स्कन्धरूप विकारको धारण करता है । इसकारण काल पुद्गलकी क्रियाको सहकारी कारण जानना । परन्तु इतना विशेष है कि जीवद्रव्यकी तरहँ पुद्गल निष्क्रिय कभी भी नहीं होता । जीव शुद्धहुये उपरान्त क्रियावान् किसी कालमें भी नहीं होयगा. पुद्गलका यह नियम नहीं है । सदा क्रियावान् परसहायसे रहता है ।

आगें मूर्त्तअमूर्तका लक्षण कहते हैं।

जे खलु इन्दियगेज्झा विषया जीवेहिं हुंति ते मुत्ता।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥ ९९ ॥

संस्कृतछाया.

ये खलु इन्द्रियग्राह्या विषया जीवैर्भवन्ति ते मूर्त्ताः।
शेषं भवत्यमूर्त्तं चित्तमुभयं समाददति ॥ ९९ ॥

पदार्थ—[ये] जो [**जीवैः**] जीवोंकरके [**खलु**] निश्चयसे [**इन्द्रियग्राह्याः**] इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण करने योग्य [**विषयाः**] पुद्गलजनित पदार्थ हैं [**ते**] वे [**मूर्त्ताः**] मूर्त्तीक [**भवन्ति**] होते हैं [**शेषं**] पुद्गलजनित पदार्थोंसे जो भिन्न है सो [**अमूर्त्तं**] अमूर्त्तीक [**भवति**] होता है **अर्थात्**—इस लोकमें जो स्पर्श रस गंध वर्णवन्त पदार्थ स्पर्शन जीभ नाशिका नेत्र इन चारों इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जांय और जो कर्णेंद्रियद्वारा शब्दाकार परिणत पदार्थ ग्रहे जांय और जो किसी कालमें स्थूल स्कंधभावपरिणये हैं पुद्गल और किसही काल सूक्ष्म भावपरिणये हैं पुद्गलस्कंध और किस ही काल परमाणुरूप परणये जे पुद्गल, वे सब ही मूर्त्तीक कहाते हैं। कोईएक सूक्ष्मभाव परिणतिरूप पुद्गलस्कन्ध अथवा परमाणु यद्यपि इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेमें नहिं आते तथापि इन पुद्गलोंमें ऐसी शक्ति है कि यदि ये स्थूलताको धरै तो इन्द्रियग्रहण करने योग्य होते हैं अतएव कैसी भी सूक्ष्मताको धारण करो सबको इन्द्रियग्राह्य ही कहे जाते हैं। और जीव धर्म अधर्म आकाश काल ये पांच पदार्थ हैं ते स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणसे रहित हैं क्योंकि इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण करनेमें नहिं आते इसीकारण इनको अमूर्त्तीक कहते हैं। [**चित्तं**] मनइन्द्रिय [**उभयं**] मूर्त्तीक अमूर्त्तीक दोनों प्रकारके पदार्थोंको [**समाददति**] ग्रहण करता है। अर्थात् मन अपने विचारसे निश्चित पदार्थको जानता है। मन जब पदार्थोंको ग्रहण करता है तब पदार्थोंमें नहीं जाता किन्तु आप ही संकल्परूप होय वस्तुको जानता है। मतिश्रुतज्ञानका मन ही साधन है इसकारण मन अपने विचारोंसे मूर्त्त अमूर्त्त दोनों प्रकारके पदार्थोंका ज्ञाता है। यह चूलिकारूप संक्षिप्त व्याख्यान पूर्ण हुवा.

आगें कालद्रव्यका व्याख्यान किया जाता है सो पहिले ही व्यवहार और निश्चयकालका स्वरूप दिखाया जाता है।

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो।
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ॥ १०० ॥

संस्कृतछाया.

कालः परिणामभवः परिणामो द्रव्यकालसंभूतः।
द्वयोरेप स्वभावः कालः क्षणभङ्गुरो नियतः ॥ १०० ॥

पदार्थ—[**कालः**] व्यवहारकाल जो है सो [**परिणामभवः**] जीव पुद्गलोंके परिणामसे उत्पन्न है [**परिणामः**] जीव पुद्गलका परिणाम जो है सो [**द्रव्यकालसंभूतः**] निश्चयकालाणुरूप द्रव्यकालसे उत्पन्न है। [**द्वयोः**] निश्चय और व्यवहार कालका [**एषः**] यह [**स्वभावः**] स्वभाव है। [**कालः**] व्यवहारकाल [**क्षणभङ्गुरः**] समय समय विनाशीक है और [**नियतः**] निश्चयकाल जो है सो अविनाशी है।

भावार्थ—जो क्रमसे अतिसूक्ष्म हुवा प्रवर्त्तै है वह तो व्यवहारकाल है और उस व्यवहारकालका जो आधार है सो निश्चयकाल कहाता है। यद्यपि व्यवहारकाल है सो निश्चयकालका पर्याय है तथापि जीवपुद्गलके परिणामोंसे वह जाना जाता है। इसकारण जीव पुद्गलोंके नवजीर्णतारूप परिणामोंसे उत्पन्न हुवा कहा जाता है। और जीव पुद्गलोंका जो परिणमन है सो वाह्यमें द्रव्यकालके होतेसंते समयपर्यायमें उत्पन्न है इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि समयादिरूप जो व्यवहारकाल है सो तो जीवपुद्गलोंके परिणामोंसे प्रगट किया जाता है और निश्चयकाल जो है सो समयादि व्यवहारकालके अविनाभावसे अस्तित्वको धरै है क्योंकि पर्यायसे पर्यायीका अस्तित्व ज्ञात होता है। इनमेंसे व्यवहारकाल क्षणविनश्वर है क्योंकि पर्यायस्वरूपसे सूक्ष्मपर्याय उतने मात्र ही है जितने कि समयावलिकादि हैं। और निश्चयकाल जो है सो नित्य है क्योंकि अपने गुणपर्यायस्वरूप द्रव्यसे सदा अविनाशी है।

आगें कालद्रव्यका स्वरूप नित्यानित्यका भेद करकें दिखाया जाता है।

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाइं ॥ १०१ ॥

संस्कृतछाया.

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः।
उत्पन्नप्रध्वंस्यपरो दीर्घान्तरस्थायी ॥ १०१ ॥

पदार्थ—[**च**] और [**काल इति**] काल ऐसा जो [**व्यपदेशः**] नाम है सो निश्चयकाल [**नित्यः**] अविनाशी है भावार्थ–जैसें सिंहशब्द दो अक्षरका है सो सिंह नामा पदार्थका दिखानेवाला है जव कोई सिंहशब्दको कहै तब ही सिंहका ज्ञान होता है उसी प्रकार काल ये दो अक्षरके कहनेसे नित्य कालपदार्थ जाना जाता है। जिस प्रकार अन्य जीवादि द्रव्य हैं उस प्रकार एक कालद्रव्य भी निश्चयनयसे है. [**अपरः**] दूसरा जो समयरूप व्यवहारकाल है सो [**उत्पन्नप्रध्वंसी**] उपजता और विनशता है। तथा [**दीर्घान्तरस्थायी**] समयोंकी परंपरासे वहुत स्थिरतारूप भी कहा जाता है।

भावार्थ—व्यवहारकाल सबसे सूक्ष्म समय नामवाला है सो उपजै भी है विनशै भी है और निश्चयकालका पर्याय है. पर्याय उत्पादव्ययरूप सिद्धान्तमें कहा गया है. उस सम-

यकी अतीतअनागतवर्त्तमानरूप जो परंपरा लियी जाय तो आवली पल्योपम सागरोपम इत्यादि अनेक भेद होते हैं. इससे यह वात सिद्ध हुई कि–निश्चयकाल अविनाशी है व्यवहारकाल विनाशीक है।

आगें कालकी द्रव्यसंज्ञा है कायसंज्ञा नही है ऐसा कहते हैं।

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पुग्गला जीवाः।
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं॥ १०२॥

संस्कृतछाया.

एते कालाकाशे धर्म्माधर्म्मौ च पुद्गला जीवाः।
लभन्ते द्रव्यसंज्ञां कालस्य तु नास्ति कायत्वं॥ १०२॥

पदार्थ—[**एते**] ये [**कालाकाशे**] काल और आकाशद्रव्य [**च**] और [**धर्म्माधर्म्मौ**] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य [**पुद्गलाः**] पुद्गलद्रव्य [**जीवाः**] जीवद्रव्य [**द्रव्यसंज्ञां**] द्रव्यनामको [**लभन्ते**] पाते हैं। भावार्थ—जिस प्रकार धर्म अधर्म आकाश पुद्गल जीव इन पांचों द्रव्योंमें गुणपर्याय हैं और जैसा इनका सद्द्रव्य लक्षण है तथा इनका उत्पादव्यय ध्रौव्य लक्षण है वैसें ही गुणपर्यायादि द्रव्यके लक्षण कालमें भी हैं इसकारण कालका नाम भी द्रव्य है। कालको और अन्य पांचों द्रव्योंको द्रव्यसंज्ञा तो समान है परन्तु धर्मादि पांच द्रव्योंकी कायसंज्ञा है. क्योंकि काय उसको कहते हैं जिसके वहुत प्रदेश होते हैं। धर्म अधर्म आकाश जीव इन चारों द्रव्योंके असंख्यात प्रदेश हैं पुद्गलके परमाणु यद्यपि एकप्रदेशी हैं तथापि पुद्गलोंमें मिलनशक्ति है इस कारण पुद्गल संख्यात असंख्यात तथा अनन्त प्रदेशी हैं। [**कालस्य तु**] कालद्रव्यके तो [**कायत्वं**] वहु प्रदेशरूप कायभाव [**नास्ति**] नहीं है।

भावार्थ—कालाणु एकप्रदेशी है. लोकाकाशके भी असंख्यात प्रदेश हैं असंख्यातीही कालाणु हैं. सो लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक कालाणु रहता है। इसी कारण इस पंचास्तिकाय ग्रन्थमें कालद्रव्य कायरहित होनेके कारण इसका मुख्यरूप कथन नहीं किया। यह कालद्रव्य इन पंचास्तिकायोंमें गर्भित आता है क्योंकि जीव पुद्गलके परिणमनसे समयादि व्यवहारकाल जाना जाता है. जीव पुद्गलोंके नवजीर्णपरिणामोंके विना व्यवहारकाल नहीं जाना जाता है। जो व्यवहारकाल प्रगट जाना जाय तो निश्चयकालका अनुमान होता है. इस कारण पंचास्तिकायमें जीवपुद्गलोंके परिणमनद्वारा कालद्रव्य जाना ही जाता है कालको इसलियेही इन पंचास्तिकायोंमें गर्भित जानना. यह कालद्रव्यका व्याख्यान पूरा हुवा।

अव पंचास्तिकायके व्याख्यानसे ज्ञान फल होता है सो दिखाते हैं।

एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं॥ १०३॥

संस्कृतछाया.

एवं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसङ्ग्रहं विज्ञाय ।
यो मुञ्चति रागद्वेषौ स गाहते दुःखपरिमोक्षं ॥ १०३ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो निकटभव्य जीव [**एवं**] पूर्वोक्तप्रकारसे [**पञ्चास्तिकायसङ्ग्रहं**] पंचास्तिकायके संक्षेपको अर्थात् द्वादशांगवाणीके रहस्यको [**विज्ञाय**] भले प्रकार जानकर [**रागद्वेषौ**] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति और द्वेषभावको [**मुञ्चति**] छोडता है [**सः**] वह पुरुष [**दुःखपरिमोक्षं**] संसारके दुःखोंसे मुक्ति [**गाहते**] प्राप्त होता है ।

भावार्थ—द्वादशांगवाणीके अनुसार जितने सिद्धान्त हैं तिनमें कालसहित पंचास्तिकायका निरूपण है और किसी जगह कुछ भी छूट नहिं किया है, इसलिये इस पंचास्तिकायमें भी यह निर्णय है इसकारण यह पंचास्तिकाय प्रवचन जो है सो भगवान्के प्रमाण वचनोंमें सार है । समस्त पदार्थोंका दिखानेवाला जो यह ग्रन्थ समयसार पंचास्तिकाय है इसको जो कोई पुरुष शब्द अर्थकर भलीभांति जानैगा वह पुरुष षड्द्रव्योंमें उपादेयस्वरूप जो आत्मब्रह्म आत्मीय चैतन्यस्वभावसे निर्मल है चित्त जिसका ऐसा निश्चयसे अनादि अविद्यासे उत्पन्न रागद्वेषपरिणाम आत्मस्वरूपमें विकार उपजानेहारे हैं उनके स्वरूपको जानता है कि ये मेरे स्वरूप नहीं. इसप्रकार जब इसको भेदविज्ञान होता है तब इसके परमविवेक ज्योति प्रगट होती है और कर्मबंधको उपजानेवाली रागद्वेषपरिणति नष्ट हो जाती है, तब इसके आगामी बन्धपद्धति भी नष्ट होती है । जैसें परमाणुबन्धकी योग्यतासे रहित अपने जघन्य स्नेहभावको परिणमता आगामी बन्धसे रहित होता है उसी प्रकार यह जीव रागभावके नष्ट होनेसे आगामी बन्धका कर्त्ता नहिं होता, पूर्वबन्ध अपना रसविपाक देकर खिर जाता है । तब यह चतुर्गति दुःखसे निवर्ति होकर मोक्षपदको पाता है । जैसें परद्रव्यरूप अग्निके सम्बन्धसे जल तप्त होता है वही जल काल पाकर तप्त विकारको छोड़कर स्वकीय सीतलभावको प्राप्त होता है, उसी प्रकार भगवद्वचनको अंगीकार करकें ज्ञानी जीव कर्मविकारके आतापको नष्टकर आत्मीक शान्तरसगर्भित सुखको पाते हैं ।

आगें दुःखोंके नष्ट करनेका क्रम दिखाते हैं अर्थात् किस क्रमसे जीव संसारसे रहित होकर मुक्त होता है सो दिखाते हैं ।

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्झदो णिहदमोहो ।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरावरो जीवो ॥ १०४ ॥

संस्कृतछाया.

ज्ञात्वैतदर्थं तदनुगमनोद्यतो निहतमोहः ।
प्रशमितरागद्वेषो भवति हतपरापरो जीवः ॥ १०४ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो पुरुष [**एतदर्थं**] इस ग्रन्थके रहस्य शुद्धात्म पदार्थको [**ज्ञात्वा**] जानकर [**तदनुगमनोद्यतः**] उस ही आतमपदार्थमें प्रवीन होनेको उद्यमी [**भवति**] होता है [**स जीवः**] वह भेद विज्ञानी जीव [**निहतमोहः**] नष्ट किया है दर्शनमोह जिसने [**प्रशमितरागद्वेषः**] शान्त होकर विला गये हैं रागद्वेष जिसमेंसे [**हतपरापरः**] नष्ट किया है पूर्वपर बंध जिसने ऐसा होकर मोक्षपदका अनुभवी होता है।

भावार्थ—यह संसारी जीव अनादि अविद्याके प्रभावसे परभावोंमें आत्मस्वरूपत्व जानता है अज्ञानी होकर रागद्वेषभावरूप परिणमता है। जब काललब्धि पाय सर्वज्ञ वीतरागके वचनोंको अवधारन करता है तब इसके मिथ्यात्वका नाश होता है। भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट होती है। तत्पश्चात् चारित्र मोह भी नष्ट होता है। तब सर्वथा संकल्पविकल्पोंके अभावसे स्वरूपविषै एकाग्रतासे लीन होता है। आगामी बंधका भी निरोध हो जाता है पिछला कर्मबन्ध अपना रस देकर खिर जाता है तब वहही जीव निर्वन्ध अवस्थाको धारणपूर्वक मुक्त होकर अनन्तकालपर्यन्त स्वरूपगुप्त अनन्तसुखका भोक्ता होता है।

इति श्रीपंचास्तिकायसमयसार ग्रन्थमें षड्द्रव्यपंचास्तिकायका व्याख्याननामक प्रथमश्रुतस्कन्ध पूर्ण हुवा।

पूर्वकथनमें केवल मात्र शुद्ध तत्त्वका कथन किया है। अब नव पदार्थके भेद कथन करके मोक्षमार्ग कहते हैं जिसमें प्रथम ही भगवान्‌की स्तुति करते हैं क्योंकि जिसका वचन प्रमाण है सो पुरुष प्रमाण है और पुरुषप्रमाणसे वचनकी प्रमाणता है।

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं।
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि॥ १०५॥

संस्कृतछाया.

अभिवन्द्य शिरसा अपुनर्भवकारणं महावीरं।
तेषां पदार्थभङ्गं मार्गं मोक्षस्य वक्ष्यामि॥ १०५॥

पदार्थ—मैं कुंदकुंदाचार्य जो हूं सो [**अपुनर्भवकारणं**] मोक्षके कारणभूत [**महावीरं**] वर्द्धमान तीर्थंकर भगवान्‌को [**शिरसा**] मस्तकद्वारा [**अभिवन्द्य**] नमस्कार करकें [**मोक्षस्य मार्गं**] मोक्षके मार्ग अर्थात् कारणस्वरूप [**तेषां**] उन षड्द्रव्योंके [**पदार्थभङ्गं**] नवपदार्थरूप भेदको [**वक्ष्यामि**] कहूंगा।

भावार्थ—यह जो वर्तमान पंचमकाल है उसमें धर्मतीर्थके कर्त्ता भगवान् परम भट्टारक देवाधिदेव श्रीवर्द्धमानस्वामीकी मोक्षमार्गकी साधनहारी स्तुति करकें मोक्षमार्गके दिखानेवाले षड्द्रव्योंके विकल्प नवपदार्थरूप भेद दिखानेयोग्य है, ऐसी श्रीकुंदकुंदस्वामीने प्रतिज्ञा कीनी।

आगें मोक्षमार्गका संक्षेप कथन करते हैं।

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं॥ १०६॥

संस्कृतछाया.

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं चारित्रं रागद्वेषपरिहीनं।
मोक्षस्य भवति मार्गो भव्यानां लब्धबुद्धीनां॥ १०६॥

पदार्थ—[**सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं**] सम्यक्त्व कहिये श्रद्धान यथार्थ वस्तुका परिच्छेदनकर सहित जो [**चारित्रं**] आचरण है सो [**मोक्षस्य मार्गः**] मोक्षका मार्ग [**भवति**] है अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनोंहीका जब एकबार परिणमन होता है तब ही मोक्षमार्ग होता है। कैसा है ज्ञानदर्शनयुक्त चारित्र [**रागद्वेषपरिहीनं**] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष रहित समतारस गर्भित है। ऐसा मोक्षमार्ग किनके होता है? [**लब्धबुद्धीनां**] प्राप्त भई है स्वपरविवेकभेदविज्ञानबुद्धि जिनको ऐसे [**भव्यानां**] मोक्षमार्गके सन्मुख जे जीव हैं तिनके होताहै।

भावार्थ—चारित्र वही है जो दर्शन ज्ञानसहित है दर्शनज्ञानके विना जो चारित्र है सो मिथ्या चारित्र है। जो चारित्र है वही चारित्र है न कि मिथ्याचारित्र चारित्र होता है। और चारित्र वही है जो रागद्वेषरहित समतारससंयुक्त है। जो कषायरसगर्भित है सो चारित्र नहीं है संक्लेशरूप है। जो ऐसा चारित्र है सो सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्षस्वरूप है न कि कर्मबन्धरूप है। जो ज्ञानदर्शनयुक्त चारित्र है वह ही उत्तम मार्ग है न कि संसारका मार्ग भला है। जो मोक्षमार्ग है सो निकट संसारी जीवोंको होता है अभव्य वा दूर भव्योंको नहिं होता। जिनको भेद विज्ञान है उन ही भव्य जीवोंको होता है स्वपरज्ञानशून्य अज्ञानीको नहिं होता। जिनके कषाय मूलसत्तासे क्षीण हो गया है उनकेही मोक्षमार्ग है कषायी जीवोंके नहिं होता। ये आठ प्रकारके मोक्षसाधनका नियम जानना।

आगें सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका स्वरूप कहते हैं।

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं॥ १०७॥

संस्कृतछाया.

सम्यक्त्वं श्रद्धानं भावानां तेषामधिगमो ज्ञानं।
चारित्रं समभावो विषयेष्वविरूढमार्गाणाम्॥ १०७॥

पदार्थ—[**भावानां**] षड्द्रव्य पंचास्तिकाय नवपदार्थोंका जो [**श्रद्धानं**] प्रतीतिपूर्वक दृढता सो [**सम्यक्त्वं**] सम्यग्दर्शन है [**तेषां**] उन ही पदार्थोंका जो [**अधिगमः**]

यथार्थ अनुभवन सो [**ज्ञानं**] सम्यग्ज्ञान है [**विषयेषु**] पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें [**अविरूढमार्गाणां**] नहिं की है अति दृढतासे प्रवृत्ति जिन्होंने ऐसे भेद विज्ञानी जीवोंका जो [**समभावः**] रागद्वेषरहित शान्तस्वभाव सो [**चारित्रं**] सम्यक्चारित्र है।

भावार्थ—जीवोंके अनादि अविद्याके उदयसे विपरीत पदार्थोंकी श्रद्धा है। काललब्धिके प्रभावसे मिथ्यात्व नष्ट होय तब पदार्थोंकी जो यथार्थ प्रतीति होय उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वही सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मपदार्थके निश्चय करनेका वीजभूत है। मिथ्यात्वके उदयसे संशय विमोह विभ्रमस्वरूप पदार्थोंका ज्ञान होता है जैसें नावपर चढते हैं तो वाहरके स्थिर पदार्थ चलतेहुये दिखाई देते हैं इसीको विपरीतज्ञान कहते हैं. सो जव मिथ्यात्वका नाश हो जाता है तब यथार्थ पदार्थोंका ग्रहण होता है। उसी यथार्थ ज्ञानका ही नाम सम्यग्ज्ञान है। वही सम्यग्ज्ञान आत्मतत्त्व अनुभवनकी प्राप्तिका मूल कारण है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी प्रवृत्तिके प्रभावसे समस्त कुमार्गोंसे निवृत्त होकर आत्मस्वरूपमें लीन होय इन्द्रियमनके विषय जे इष्ट अनिष्ट पदार्थ हैं उनमें रागद्वेषरहित जो समभावरूप निर्विकार परिणाम सो ही सम्यक्चारित्र है। सम्यक्चारित्र फिर जन्मसन्तानका (संसारका) उपजानेहारा नहीं है। मोक्षसुखका कारण है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र इन तीनों भावोंकी जब एकता होय तब ही मोक्षमार्ग कहाता है इनमेंसे किसी एककी कमी होय तो मोक्षमार्ग नहीं है। जैसें व्याधियुक्त रोगीको ओषधीका श्रद्धान ज्ञान उपचार तीनों प्रकार होय तवही रोगी रोगसे मुक्त होता है. एककी कमी होनेसे रोग नहिं जाता. इसीप्रकार त्रिलक्षण मोक्षमार्ग है।

आगें निश्चय व्यवहारनयोंकी अपेक्षा विशेष मोक्षमार्ग दिखाते हैं। यहां सम्यग्दर्शन ज्ञानकेद्वारा नव पदार्थ जाने जाते हैं, इसकारण मोक्षका संक्षेपस्वरूप ही कहा है. आगें नव पदार्थोंका संक्षेपस्वरूप और नाम कहे जाते हैं.

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं।
संवरणिज्जरवंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा॥ १०८॥

संस्कृतछाया.

जीवाजीवौ भावौ पुण्यं पापं चास्रवस्तयोः।
संवरनिर्जरवन्धा मोक्षश्च भवन्ति ते अर्थाः॥ १०८॥

पदार्थ—[**जीवाजीवौ भावौ**] एक जीव पदार्थ और एक अजीव पदार्थ [**पुण्यं**] एक पुण्य पदार्थ [**च**] और [**पापं**] एक पाप पदार्थ [**तयोः**] उन दोनों पुण्य पापोंका [**आस्रवः**] आत्मामें आगमन सो एक आस्रव पदार्थ [**संवरनिर्जरवन्धाः**] संवर निर्जरा और वन्ध ये तीन पदार्थ हैं। [**च**] और [**मोक्षः**] एक मोक्ष पदार्थ है इसप्रकार जो हैं [**ते**] वे [**अर्थाः**] नव पदार्थ [**भवन्ति**] होते हैं।

भावार्थ—जीव १ अजीव २ पुण्य ३ पाप ४ आस्रव ५ संवर ६ निर्जरा ७ बन्ध ८ और मोक्ष ९. ये नव पदार्थ जानने। चेतना लक्षण है जिसका सो **जीव** है। चेतनारहित जड़ पदार्थ **अजीव** हैं सो पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और कालद्रव्य ये पांच प्रकार अजीव हैं। ये जीव अजीव दोनों ही पदार्थ अपने भिन्न-स्वरूपके अस्तित्वसे मूलपदार्थ हैं. इनके अतिरिक्त जो सात पदार्थ हैं वे जीव और पुद्गलोंके संयोगसे उत्पन्न हुये हैं। सो दिखाये जाते हैं। जो जीवके शुभपरिणाम होय तो उस शुभपरिणामके निमित्तसे पुद्गलके शुभकर्मरूप शक्ति होय उसको **पुण्य** कहते हैं। जीवके अशुभपरणामोंके निमित्तसे पुद्गल वर्गणावोंमें अशुभकर्मरूप परिणतिशक्ति होय उसको **पाप** कहते हैं। मोहरागद्वेषरूप जीवके परिणामोंके निमित्तसे मनवचनकायरूप योगों-द्वारा पुद्गलकर्म वर्गणावोंका जो आगमन सो **आस्रव** है। और जीवके मोहरागद्वेष परिणामोंको रोकनेवाला जो भाव होय उसका निमित्त पाकर योगोंके द्वारा पुद्गल वर्गणा-वोंके आगमनका निरोध होना सो **संवर** है। कर्मोंकी शक्तिके घटानेको समर्थ वहिरंग अंतरंग तपोंसे वर्द्धमान ऐसे जो जीवके शुद्धोपयोगरूप परिणाम, तिनके प्रभावसे पूर्वोपार्जित कर्मोंका नीरस भाव होकर एकदेश क्षय हो जाना उसका नाम **निर्जरा** है। और जीवके मोहरागद्वेषरूप स्निग्ध परिणाम होंय तो उनके निमित्तसे कर्मवर्गणारूप पुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंसे परस्पर एक क्षेत्रावगाह करकें सम्वन्ध होना सो **वन्ध** है। जीवके अत्यन्त शुद्धात्मभावकी प्राप्ति होय उसका निमित्त पाकर जीवके सर्वथा प्रकार कर्मोंका छूटजाना सो **मोक्ष** है।

आगें जीवपदार्थका व्याख्यान किया जाता है जिसमें जीवका स्वरूप नाम मात्रकर दिखाया जाता है।

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविधा।
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा॥ १०९॥

संस्कृतछाया.

जीवाः संसारस्था निर्वृत्ताश्च चेतनात्मका द्विविधाः।
उपयोगलक्षणा अपि च देहादेहप्रवीचाराः॥ १०९॥

पदार्थ—[**जीवाः**] आत्मपदार्थ हैं ते [**द्विविधाः**] दो प्रकारके हैं। एक तो [**संसारस्थाः**] संसरमें रहनेवाले अशुद्ध हैं दूसरे [**निर्वृत्ताः**] मोक्षावस्थाको प्राप्त होकर शुद्धहुये सिद्ध हैं। वे जीव कैसे हैं? [**चेतनात्मकाः**] चैतन्यस्वरूप हैं [**उपयोगलक्षणाः**] ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोग (परिणाम) वाले हैं। [**अपि**] निश्चयसे [**च**] फिर कैसे हैं वे दो प्रकारके जीव? [**देहादेहप्रवीचाराः**] एक तौ देहकरकें संयुक्त सो तो संसारी हैं। एक देहरहित हैं ते मुक्त हैं।

आगें पृथिवीकायादि पांच थावरके भेद दिखाते हैं.

पुढवी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया(?) ।
देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥ ११० ॥

संस्कृतछाया.

पृथिवी चोदकमग्निर्वायुवनस्पती जीवसंश्रिताः कायाः ।
ददति खलु मोहवहुलं स्पर्शं वहुका अपि ते तेषां ॥ ११० ॥

पदार्थ—[**पृथिवी**] पृथिवीकाय [**च**] और [**उदकम्**] जलकाय [**अग्निः**] अग्निकाय [**वायुवनस्पती**] वायु और वनस्पतिकाय [**कायाः**] ये पांच स्थावरकायके भेद जानने [**ते**] वे [**जीवसंश्रिताः**] एकेन्द्रियजीव करकें सहित हैं. [**वहुकाः अपि**] यद्यपि अनेक २ अवान्तर भेदोंसे वहुत जात हैं ऐसे जो काया सो शरीरभेदसे [**खलु**] निश्चयसे [**तेषां**] उन जीवोंको [**मोहवहुलं**] मोहगर्भित वहुत परद्रव्योंमें रागभाव उपजाते हैं [**स्पर्शं**] स्पर्शनेन्द्रियके विषयको [**ददति**] देते हैं ।

भावार्थ—ये पांच प्रकार थावरकाय कर्मके सम्वन्धसे जीवोंके आश्रित हैं । इनमें गर्भित अनेक जातिभेद हैं. ये सव एक स्पर्शनेन्द्रियकरके मोहकर्मके उदयसे कर्मफल चेतनारूप सुखदुखरूप फलको भोगते हैं । एक कायके आधीन होकर जीव अनेक अवस्थाको प्राप्त होता है ।

आगें पृथिवीकायादि पांच थावरोंको एकेंद्रियजातिका नियम करते हैं.

ति त्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा ।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया ॥ १११ ॥

संस्कृतछाया.

त्रयः स्थावरतनुयोगादनिलानलकायिकाश्च तेषु त्रसाः ।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः ॥ १११ ॥

पदार्थ—[**स्थावरतनुयोगात्**] स्थावरनाम कर्मके उदयसे [**त्रयः जीवाः**] पृथिवी जल वनस्पति ये तीन प्रकारके जीव [**एकेन्द्रियाः**] एकेन्द्रिय [**ज्ञेयाः**] जानने [**च**] और [**तेषु**] उन पांच स्थावरोंमें [**अनिलानिलकायिकाः**] वायुकाय और अग्निकाय ये दो प्रकारके जीव यद्यपि [**त्रसाः**] चलते हैं तथापि स्थावर नामकर्मके उदयसे स्थावर एकेन्द्रिय ही कहे जाते हैं. कैसे हैं ये एकेन्द्रिय? [**मनःपरिणामविरहिताः**] मनोयोगरहित हैं ।

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया ।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया ॥ ११२ ॥

संस्कृतछाया.

एते जीवनिकायाः पञ्चविधाः पृथिवीकायिकाद्याः ।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया भणिताः ॥ ११२ ॥

पदार्थ—[एते] ये [पृथिवीकायिकाद्याः] पृथिवीआदिक [पञ्चविधाः] पांच प्रकारके [जीवनिकायाः] जीवोंके जो भेद हैं सो [मनःपरिणामविरहिताः] मनोयोगके विकल्पोंसें रहित [एकेन्द्रिया जीवाः] सिद्धान्तमें एकेन्द्रिय जीव [भणिताः] कहे गये हैं।

भावार्थ—पृथिवीकायादिक जो पांच प्रकारके स्थावर जीव हैं ते स्पर्शेन्द्रियावरणके क्षयोपशममात्रसे अन्य चार इन्द्रियोंके आवरणके उदयसे और मनआवरणके उदयसे एकेन्द्रिय जीव और अमनस्क मनरहित हैं।

आगें कोई ऐसा जाने कि एकेन्द्रिय जीवोंके चैतन्यताका अस्तित्व नहीं रहता होगा उसको दृष्टान्तपूर्वक चेतना दिखाते हैं।

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेयाः॥ ११३॥

संस्कृतछाया.

अण्डेषु प्रवर्द्धमाना गर्भस्था मानुषाश्च मूर्च्छां गताः।
यादृशास्तादृशा जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः॥ ११३॥

पदार्थ—[यादृशाः] जिसप्रकार [अण्डेषु] पक्षियोंके अंडोंमें [प्रवर्द्धमानाः] बढते-हुये जो जीव हैं [तादृशाः] उसीप्रकार [एकेन्द्रियाः] एकेन्द्रियजातिके [जीवाः] जीव [ज्ञेयाः] जानने। भावार्थ–जैसें अंडेमें जीव बढता है परन्तु उपरिसे उसके उस्वासादिक वा जीव मालूम नहिं होता उसीप्रकार एकेन्द्रिय जीव प्रगट नहिं जाना जाता परन्तु अन्तर गुप्त जानलेना—जैसें वनस्पति अपनी हरितादि अवस्थावोंसे जीवत्व भावका अनुमान जनाती है। तैसें सब स्थावर अपने जीवनगुणगर्भित हैं [च] तथा [यादृशाः] जैसें [गर्भस्थाः] गर्भमें रहतेहुये जीव उपरिसे मालूम नहिं होते. जैसें जैसें गर्भ बढता है तैसें तैसें उसमें जीवका अनुमान किया जाता है. तथा [मूर्च्छांगताः] मूर्च्छाको प्राप्त हुये [मानुषाः] मनुष्य जैसें मृतकसदृश दीखते हैं परन्तु अन्तरविषै जीव गर्भित हैं। उसीप्रकार पांच प्रकारके स्थावरोंमें भी उपरिसे जीवकी चेष्टा मालूम नहीं होती. परन्तु आगमसे तथा उन जीवोंकी प्रफुल्लादि अवस्थावोंसे चैतन्य मालूम होता है।

आगें द्विइन्द्रिय जीवोंके भेद दिखाते हैं।

संवुक्कमादुवाहा संखा सप्पी अपादगा य किमी।
जाणंति रसं फासं जे ते वे इंदिया जीवाः॥ ११४॥

संस्कृतछाया.

संवूकमातृवाहाः शङ्खाः सुक्तयोऽपादकाः कृमयः।
जानन्ति रसं स्पर्शं ये ते द्वीन्द्रियाः जीवाः॥ ११४॥

पदार्थ—[ये] जो [संवूकमातृवाहाः] संवूक कहिये क्षुद्रशंख अर मातृवाह तथा

[**शङ्खाः शुक्तयः**] संख सीपियें [**अपादकाः कृमयः**] पांवरहित गिंडोड़ा कृमि लट आदिक अनेक जातिके जीव हैं ते [**रसं स्पर्शं**] रस और स्पर्शमात्रको अर्थात् जीभसे स्वाद और स्पर्शेन्द्रियसे शीतोष्णादिकको [**जानन्ति**] जानते हैं, इसकारण [**ते**] वे [**जीवाः**] जीव [**द्वीन्द्रियाः**] दो इन्द्रिय संयुक्त जानने ।

भावार्थ—स्पर्श रसना इन्द्रियोंके आवरणका जब क्षयोपशम होय और बाकी इन्द्रियों और मनआवरणके उदयसे स्पर्श रसनाइन्द्रियसंयुक्त दो इन्द्रियोंके ज्ञानसे सुखदुःखके अनुभवी मनरहित बेइन्द्रिय जानने ।

अब तेइन्द्रिय जीवके भेद दिखाते हैं.

जूगागुंभीमक्कुणपिपीलया विच्छियादिया कीडा ।
जाणंति रसं फासं गंधं ते इंदिया जीवा ॥ ११५ ॥

संस्कृतछाया.

यूकाकुम्भीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः कीटाः ।
जानन्ति रसं स्पर्शं गन्धं त्रींद्रियाः जीवाः ॥ ११५ ॥

पदार्थ—[**यूकाकुम्भीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः**] जूं कुंभी खटमल चींटा वृश्चिक आदिक जो [**कीटाः**] जीव हैं ते [**रसं स्पर्शं**] रस और स्पर्श तथा [**गन्धं**] गन्ध इन तीन विषयोंको [**जानन्ति**] जानते हैं, इसकारण ये सब जीव [**त्रींद्रियाः**] सिद्धान्तमें तेन्द्रिय कहे गये हैं ।

भावार्थ—जब इन संसारी जीवोंके स्पर्शन रसना नासिका इन तीन इन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम होय और अन्य इन्द्रियोंके आवरणका उदय होय तब तेइन्द्रिय जीव कहे जाते हैं ।

आगें चौइन्द्रियके भेद कहते हैं.

उद्दंसमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया ।
रूपं रसं च गन्धं फासं पुण ते वि जाणंति ॥ ११६ ॥

संस्कृतछाया.

उद्दंशमशकमक्षिका मधुकरी भ्रमराः पतङ्गाद्याः ।
रूपं रसं च गन्धं स्पर्शं पुनस्तेऽपि जानन्ति ॥ ११६ ॥

पदार्थ—[**उद्दंसमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमरापतङ्गाद्याः**] डांस मच्छर मक्खी मधुमक्खी भँवरा पतंगआदिक जीव [**रूपं**] रूप [**रसं**] स्वाद [**गन्धं**] गन्ध [**पुनः**] और [**स्पर्शं**] स्पर्शको [**जानन्ति**] जानते हैं इस कारण [**ते अपि**] वे निश्चय करकें चौइन्द्रिय जीव जानने ।

भावार्थ—जब इन संसारी जीवोंके स्पर्शन जीभ नासिका नेत्र इन चारों इन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम और कर्णइंद्रिय और मनके आवरणका उदय होय तब स्पर्श रस

गन्ध वर्ण इन चार विषयोंके ज्ञाता चार इन्द्रियसहित कर्ण और मनसे रहित चौइन्द्रिय जीव होते हैं।

अब पंचेन्द्रिय जीवोंके भेद कहते हैं.

सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू।
जलचरथलचरखचरा वलिया पंचेंदिया जीवा॥ ११७॥

संस्कृतछाया.

सुरनरनारकतिर्यञ्चो वर्णरसस्पर्शगन्धशब्दज्ञाः।
जलचरस्थलचरखचरा वलिनः पञ्चेन्द्रिया जीवाः॥ ११७॥

पदार्थ—[**सुरनरनारकतिर्यञ्चः**] देव मनुष्य नारकी और तिर्यञ्च गतिके जीव हैं ते [**पञ्चेन्द्रियाः**] पञ्चेन्द्रिय [**जीवाः**] जीव हैं जो कि [**जलचरस्थलचरखचराः**] जलचर भूमिचर व आकाशगामी हैं और [**वर्णरसस्पर्शगन्धशब्दज्ञाः**] वर्ण रस गन्ध स्पर्श शब्द इन पांचों विषयोंके ज्ञाता हैं. तथा [**वलिनः**] अपनी क्षयोपशम शक्तिसे वलवान् हैं।

भावार्थ—जव संसारी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके आवर्णका क्षयोपशम होय तव पांचों विषयके जाननहारे होते हैं। पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं एक संज्ञी, एक असंज्ञी, जिन पंचेन्द्रिय जीवोंके मनआवरणका उदय होय वे तो मनरहित असंज्ञी हैं। और जिनके मनआवरणका क्षयोपशम होय वे मनसहित संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव होते हैं. अर्थात् तिर्यञ्च गतिमें मनसहित और मनरहित भी होते हैं। इसप्रकार इन्द्रियोंकी अपेक्षा जीवोंकी ज़ातिका भेद कहा।

अव इनही पांच जातिके जीवोंको चार गतिसंवंधसे संक्षेप कथन किया जाता है।

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया।
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा॥ ११८॥

संस्कृतछाया.

देवाश्चतुर्निकायाः मनुजाः पुनः कर्मभोगभूमिजाः।
तिर्यञ्चः वहुप्रकाराः नारकाः पृथिवीभेदगताः॥ ११८॥

पदार्थ—[**देवाः**] देव देवगतिनामा कर्मके उदयसे जो देवशरीर पाते हैं सवसे उत्कृष्ट भोग भोगते हैं ते देव हैं सो [**चतुर्निकायाः**] चार प्रकारके हैं। एक भवनवासी दूसरे व्यन्तर तीसरे ज्योतिषी चौथे वैमानिक होते हैं। [**पुनः**] फिर [**मनुजाः**] मनुष्य हैं ते [**कर्मभोगभूमिजाः**] एक कर्मभूमिमें उपजते हैं दूसरे भोगभूमिमें उपजनेवाले इसप्रकार दो तरहके मनुष्य होते हैं और [**तिर्यञ्चः वहुप्रकाराः**] तिर्यञ्चगतिके जीव एकेन्द्रियसे लगाकर सैनी पंचेन्द्रियपर्यन्त वहुत प्रकारके होते हैं तथा [**नारकाः पृथिवीभेदगताः**] नारकी जीव हैं ते जितने नरक पृथिवीके भेद हैं उतने ही हैं. नरककी

पृथिवी सात हैं सो सात प्रकारके ही नारकी जीव हैं । देव नारकी मनुष्य ये तीन प्रकारके जीव तो पंचेन्द्रिय ही हैं और तिर्यञ्चगतिमें एकेन्द्रियादिक भेद हैं ।

आगें गतिआयुनामकर्मके उदयसे ये देवादिक पर्याय होते हैं इसकारण इन पर्यायोंका अनात्मस्वभाव दिखाते हैं ।

खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु ।
पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेसवसा ॥ ११९ ॥

संस्कृतछाया.

क्षीणे पूर्वनिबद्धे गतिनाम्नि आयुषि च तेऽपि खलु ।
प्राप्नुवन्ति चान्यां गतिमायुष्कं स्वलेश्यावशात् ॥ ११९ ॥

पदार्थ—[**पूर्वनिबद्धे**] पूर्वकालमें बांधा हुवा [**गतिनाम्नि**] गतिनामका कर्म [**च**] और [**आयुषि**] आयुनामा कर्मके [**क्षीणे**] अपना रसदेकर खिर जानेपर [**खलु ते अपि**] निश्चय करकें वे ही जीव [**स्वलेश्यावशात्**] अपनी कषायगर्भित योगोंकी प्रवृत्तिरूप लेश्याके प्रभावसे [**अन्यां गतिं**] अन्यगतिको [**च**] और [**आयुष्कं**] आयुको [**प्राप्नुवन्ति**] पाते हैं ।

भावार्थ—जीवोंके गति और आयु जो बंधती है सो कषाय और योगोंकी परिणतिसें बंधती है. यह शृंखलावत् नियम सदैव चला जाता है अर्थात् एक गति और आयु कर्म खिरता है और दूसरा गति और आयुकर्म बंधता है इसीकारण संसारमार्ग कम नहिं होता—अज्ञानी जीव इसीप्रकार अनादि कालसे भ्रमते रहते हैं ।

आगें फिर भी इनका विशेष दिखाते हैं ।

एदे जीवनिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा ।
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥ १२० ॥

संस्कृतछाया.

एते जीवनिकाया देहप्रविचारमाश्रिताः भणिताः ।
देहविहीनाः सिद्धाः भव्याः संसारिणोऽभव्याश्च ॥ १२० ॥

पदार्थ—[**एते**] पूर्वोक्त [**जीवनिकायाः**] चतुर्गतिसंबन्धी जीव [**देहप्रविचारं**] देहके पलटनभावको [**आश्रिताः**] प्राप्तहुये हैं ऐसा वीतराग भगवान्‌ने [**भणिताः**] कहा है । और जो [**देहविहीनाः**] देहरहित हैं वे [**सिद्धाः**] सिद्ध जीव कहाते हैं । तथा [**संसारिणः**] संसारी जीव हैं ते [**भव्याः**] मोक्षअवस्था होने योग्य [**च**] और [**अभव्याः**] मुक्तभावकी प्राप्तिके अयोग्य हैं ।

भावार्थ—लोकमें जीव दो प्रकारके हैं । एक देहधारी और एक देहरहित । देहधारी तो संसारी हैं देहरहित सिद्धपर्यायके अनुभवी हैं । संसारी जीवोंमें फिर दो भेद हैं ।

एक भव्य और दूसरे अभव्य. जो जीव शुद्धस्वरूपको प्राप्त होंयगे उनको भव्य कहते हैं। और जिनके शुद्धस्वभावके प्राप्त होनेकी शक्ति ही नहीं उनको अभव्य कहते हैं. जैसें एक मूंगका दाना तो ऐसा होता है कि वह सिजानेसे सीज जाता है अर्थात् पक जाता है और कोई २ मूंग ऐसा होता है कि उसके नीचें कितनी ही लकड़ियें जलावो वह सीजता ही नहीं, उसको कोरडू कहते हैं।

आगें सर्वथा प्रकार व्यवहारनयाश्रित ही जीवोंको नहिं कहे जाते कथंचित् अन्य प्रकार भी हैं सो दिखाते हैं।

ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता।
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति ॥ १२१ ॥

संस्कृतछाया.

नहीन्द्रियाणि जीवाः कायाः पुनः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ताः।
यद्भवति तेषु ज्ञानं जीव इति च तत्प्ररूपयन्ति ॥ १२१ ॥

पदार्थ—[**इन्द्रियाणि**] स्पर्शादि इन्द्रियें [**जीवाः**] जीवद्रव्य [**न हि**] निश्चय करकें नहीं है। [**पुनः**] फिर [**षट्प्रकाराः**] छहप्रकार [**कायाः**] पृथिवीआदिक काय [**प्रज्ञप्ताः**] कहे हैं वे भी निश्चय करकें जीव नहीं है। तब जीव कौन है? [**यत्**] जो [**तेषु**] तिन इन्द्रिय और शरीरोंमें [**ज्ञानं**] चैतन्यभाव [**भवति**] है [**तत्**] उसको ही [**जीव इति**] जीव इस नामका द्रव्य [**प्ररूपयंति**] महापुरुष कहते हैं।

भावार्थ—जो एकेन्द्रियादिक और पृथिवीकायादिक व्यवहारनयकी अपेक्षा जीवके मुख्य कथनसे जीव कहे जाते हैं. वे अनादि पुद्गल जीवके सम्बन्धसे पर्याय होते हैं। निश्चयनयसे विचारा जाय तो स्पर्शनादि इन्द्रिय, पृथिवीकायादिक काया चैतन्यलक्षणी जीवके स्वभावसे भिन्न हैं जीव नहीं हैं. उन ही पांच इन्द्रिय षट्कायोंमें जो स्वपरका जाननहारा है अपने ज्ञान गुणसे यद्यपि गुणगुणीभेदसंयुक्त है तथापि कथंचित् अभेदसंयुक्त है। वह अविनाशी अचल निर्मल चैतन्यस्वरूप जीव पदार्थ जानना। अनादि अविद्यासे देहधारी होकर पंच इंद्रिय विषयोंका भोक्ता है। मोही होकर मत्त पुरुषकी समान परद्रव्यमें ममत्वभाव करता है मोक्षके सुखसे पराङ्मुख है. ऐसा जो संसारी जीव है उसका जो स्वाभाविक भावसे विचार किया जाय तो निर्मल चैतन्यविलासी आत्माराम है।

आगें अन्य अचेतनद्रव्योंमें न पायी जाय ऐसी कौन २ करतूत है ऐसा कथन करते हैं।

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥ १२२ ॥

संस्कृतछाया.

जानाति पश्यति सर्वमिच्छति सौख्यं विभेति दुःखात्।
करोति हितमहितं वा भुङ्क्ते जीवः फलं तयोः ॥ १२२ ॥

पदार्थ—[**जीवः**] आत्मा [**सर्वं**] समस्त ही [**जानाति**] जानता है [**पश्यति**] सबको देखता है [**सौख्यं**] सुखको [**इच्छति**] चाहता है और [**दुःखात्**] दुःखसे [**बिभेति**] डरता है [**हितं**] शुभाचारको [**वा**] अथवा [**अहितं**] अशुभाचारको [**करोति**] करता है और [**तयोः**] उन शुभ अशुभ क्रियावोंके [**फलं**] फलको [**भुङ्क्ते**] भोगता है।

भावार्थ—ज्ञानदर्शनक्रियाका कर्त्ता जीव ही है । जीवका चैतन्य स्वभाव है इस कारण यह ज्ञानदर्शनक्रियासे तन्मय है. उसहीका संबन्धी जो यह पुद्गल है सो चैतन्य क्रियाका कर्त्ता नहीं है. जैसें आकाशादि चारि अचेतनद्रव्य भी कर्त्ता नहीं है। सुखकी अभिलाषा दुःखसे डरना शुभाशुभ प्रवर्तन इत्यादि क्रियावोंमें संकल्प विकल्पका कर्त्ता जीव ही है। इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी भोगक्रियाका, अपने सुखदुःखरूप परिणामक्रियाका कर्त्ता एक जीव पदार्थको ही जानना. इनका कर्त्ता और कोई नहीं है। ये जो क्रियायें कहीं हैं, वे सब शुद्ध अशुद्ध चैतन्यभावमयी हैं इसकारण ये क्रियायें पुद्गलकी नहीं हैं आत्माकी ही हैं।

आगें जीवअजीवका व्याख्यान संक्षेपतासे दिखाते हैं ।

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं ।
अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ॥ १२३ ॥

संस्कृतछाया.

एवमभिगम्य जीवमन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः ।
अभिगच्छत्वजीवं ज्ञानान्तरितैर्लिङ्गैः ॥ १२३ ॥

पदार्थ—[**एवं**] इसप्रकार [**अन्यैः अपि**] अन्य भी [**बहुकैः पर्यायैः**] अनेक पर्यायोंसे [**जीवं**] आत्माको [**अभिगम्य**] जानकरके [**ज्ञानान्तरितैर्लिङ्गैः**] ज्ञानसे भिन्न स्पर्शरसगन्धवर्णादि चिन्होंसे [**अजीवं**] पुद्गलादिक पांच अजीव द्रव्योंको [**अभिगच्छतु**] जानो।

भावार्थ—जैसें पूर्वमें जीवकी करतूतें दिखाई तैसें ही व्यवहारनयसे कर्मपद्धतिके विचारमें जीवसमास गुणस्थान मार्गणास्थान इत्यादि अनेकप्रकार पर्यायविलासकी विचित्रतामें जीवपदार्थ जान लेना। और अशुद्ध निश्चयनयसे कदाचित् मोहरागद्वेषपरिणतिसे उत्पन्न अनेकप्रकार अशुद्ध पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है। और कदाचित् मोहजनित अशुद्ध परणतिके विनाश होनेसे शुद्ध चेतनामयी अनेक पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है—इत्यादि अनेक भगवत्प्रणीत आगमके अनुसार नयविलासोंसे जीव पदार्थको जानैं और अजीवपदार्थोंका स्वरूप जानैं सो अजीवद्रव्य जड़स्वभावोंकेद्वारा जाने जाते हैं. अर्थात् ज्ञानसे भिन्न अन्य स्पर्शरसगन्धवर्णादिक चिन्होंसे जीवसे बंधेहुये कर्म नोकर्मादिरूप तथा नहिं बन्धेहुये परमाणु आदिक सब ही अजीव हैं। जीव अजीव पदार्थोंके लक्षणका जो भेद किया जाता है सो एकमात्र भेदविज्ञानकी सिद्धिके निमित्त है। इसप्रकार यह जीवपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुवा।

आगें अजीव पदार्थका व्याख्यान किया जाता है।

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा॥ १२४॥

संस्कृतछाया.

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु न सन्ति जीवगुणाः।
तेषामचेतनत्वं भणितं जीवस्य चेतनता॥ १२४॥

पदार्थ—[**आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु**] आकाशद्रव्य कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इन पांचों द्रव्योंमें [**जीवगुणाः**] सुखसत्ता बोध चैतन्यादि जीवके गुण [**न**] नहीं [**सन्ति**] हैं, [**तेषां**] उन आकाशादि पंचद्रव्योंके [**अचेतनत्वं**] चेतनारहित जड़भाव [**भणितं**] वीतराग भगवानने कहा है [**चेतनता**] चैतन्यभाव [**जीवस्य**] जीवद्रव्यके ही कहा गया है।

भावार्थ—आकाशादि पांच द्रव्य अचेतन जानने क्योंकि उनमें एक जड़ ही धर्म है। जीवद्रव्यमात्र एक चेतन है।

आगें आकाशादिकमें निश्चय करकें चैतन्य है ही नहीं ऐसा अनुमान दिखाते हैं,—

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं॥ १२५॥

संस्कृतछाया.

सुखदुःखज्ञानं वा हितपरिकर्म चाहितभीरुत्वं।
यस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा विंदंत्यजीवं॥ १२५॥

पदार्थ—[**यस्य**] जिस द्रव्यके [**सुखदुःखज्ञानं**] सुखदुःखको जानना [**वा**] अथवा [**हितपरिकर्म**] उत्तम कार्योंमें प्रवृत्ति [**च**] और [**अहितभीरुत्वं**] दुःखदायक कार्यसे भय [**न विद्यते**] नहीं है [**श्रमणाः**] गणधरादिक [**तं नित्यं**] सदैव उस द्रव्यको [**अजीवं**] अजीव ऐसा नाम [**विंदंति**] जानते हैं।

भावार्थ—जिन द्रव्योंमें सुखदुःखका जानना नहीं है और जिन द्रव्योंमें इष्ट अनिष्ट कार्य करनेकी शक्ति नहीं है, उन द्रव्योंके विषयमें ऐसा अनुमान होता है कि वे चेतना गुणसे रहित हैं, सो वे आकाशादिक ही पांच द्रव्य हैं।

आगें यद्यपि जीवपुद्गलका संयोग है तथापि आपसमें लक्षणभेद है ऐसा भेद दिखाते हैं।

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू॥ १२६॥
अरसमरूवमगंधमव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥ १२७॥

संस्कृतछाया.

संस्थानानि संघाताः वर्णरसस्पर्शगन्धशब्दाश्च ।
पुद्गलद्रव्यप्रभवा भवन्ति गुणाः पर्यायाश्च वहवः ॥ १२६ ॥
अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दं ।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥ १२७ ॥

पदार्थ—[**संस्थानानि**] जीवपुद्गलके संयोगमें जो समचतुरस्रादि षट् संस्थान हैं और [**संघाताः**] वज्रवृषभ नाराच आदि संहनन हैं [**च**] और [**वर्णरसस्पर्शगन्धशब्दाः**] वर्ण ५ रस ५ स्पर्श ८ गन्ध २ और शब्दादि [**पुद्गलद्रव्यप्रभवाः**] पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न [**वहवः**] वहुत जातिके [**गुणाः**] सहभू वर्णादि गुण [**च**] और [**पर्य्यायाः**] संस्थानादि पर्याय [**भवन्ति**] होते हैं. और [**जीवं**] जीवद्रव्यको [**अरसं**] रसगुणरहित, [**अरूपं**] वर्णरहित [**अगन्धं**] गन्धरहित [**अव्यक्तं**] अप्रगट [**चेतनागुणं**] ज्ञानदर्शन गुणवाला [**अशब्दं**] शब्दपर्यायरहित [**अलिङ्गग्रहणं**] इन्द्रियादि चिह्नोंसे ग्रहण करनेमें नहिं आवै ऐसा [**अनिर्दिष्टसंस्थानं**] निराकार [**जानीहि**] जान ।

भावार्थ—अनादि मिथ्यावासनासे यह आत्मद्रव्य पुद्गलके संबंधसे विभावके कारण औरका और प्रतिभासा है उस चित् और जड़ग्रन्थिके भेद दिखानेकेलिये वीतराग सर्वज्ञने पुद्गल जीवका लक्षणभेद कहा है उस भेदको जो जीव जान करके भेदविज्ञानी अनुभवी होते हैं वे मोक्षमार्गको साध निराकुल सुखके भोक्ता होते हैं. इस कारण जीवपुद्गलका लक्षणभेद दिखाया जाता है कि जो आत्मशरीर इन दोनोंके संबन्ध स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणात्मक है शब्द संस्थान संहननादि मूर्त्तपर्यायरूपसे परिणत है और इन्द्रियग्रहणयोग्य है सो सब पुद्गलद्रव्य है । और जिसमें स्पर्शरसगन्धवर्ण गुण नहीं, शब्दतैं अतीत आकाररहित हैं, अन्तर्गुप्त अतीन्द्रिय जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं, चेतनागुणमयी, मूर्त्तीक अमूर्त्तीक अजीव पदार्थोंसे भिन्न अमूर्त्त वस्तु मात्र है वह ही जीव पदार्थ जानना । इसप्रकार जीव अजीव पदार्थोंमें लक्षणभेद है ।

आगें इन ही जीवअजीव पदार्थोंके संयोगसे उत्पन्न जो सप्त पदार्थ हैं तिनके कथननिमित्त परिभ्रमणरूप कर्मचक्रका स्वरूप कहा जाता है ।

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥ १२८ ॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते ।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो च दोसो वा ॥ १२९ ॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि ।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा॥१३०॥

संस्कृतछाया.

य: खलु संसारस्थो जीवस्ततस्तु भवति परिणाम: ।
परिणामात्कर्म कर्मणो भवति गतिपु गति: ॥ १२८ ॥
गतिमधिगतस्य देहो देहादिन्द्रियाणि जायन्ते ।
तैस्तु विपयग्रहणं ततो रागो वा द्वेपो वा ॥ १२९ ॥
जायते जीवस्यैवं भाव: संसारचक्रवाले ।
इति जिणवरैर्भणितोऽनादिनिधन: सनिधनो वा ॥ १३० ॥

पदार्थ—[**य:**] जो [**खलु**] निश्चय करके [**संसारस्थ:**] संसारमें रहनेवाला [**जीव:**] अशुद्ध आत्मा [**तत: तु**] उससे तो [**परिणाम:**] अशुद्धभाव और [**परिणामात्**] उस रागद्वेषमोहजनित अशुद्धपरिणामोंसे [**कर्म**] आठप्रकारका कर्म [**भवति**] होता हैं । [**कर्मण:**] उस पुद्गलमयी कर्मसे [**गतिपु**] चार गतियोंमें [**गति:**] नारकादि गतियोंमें जाना [**भवति**] होता है [**गतिं**] गतिको [**अधिगतस्य**] प्राप्त होनेवाले जीवके [**देह:**] शरीर और [**देहात्**] शरीरसे [**इन्द्रियाणि**] इन्द्रियें [**जायन्ते**] होतीं हैं [**तु**] और [**तै:**] उन इन्द्रियोंसे [**विषयग्रहणं**] स्पर्शनादि पांचप्रकारके विषयोंका राग बुद्धिसे ग्रहण [**वा**] अथवा [**तत:**] उस इष्ट अनिष्ट पदार्थसे [**रागो**] राग [**वा**] अथवा [**द्वेपो**] द्वेषभाव उपजता है । फिर उनसे पूर्वक्रमानुसार कर्मादिक उपजते हैं यही परिपाटी जबतक काललब्धि नहिं होती तबतक इसीप्रकार चली जाती है [**संसारचक्रवाले**] संसाररूपी चक्रके परिभ्रमणमें [**जीवस्य**] राग द्वेषभावोंसे मलीन आत्माके [**एवं भाव:**] इसी प्रकारका अशुद्धभाव [**जायते**] उपजता है [**स भाव:**] वह अशुद्धभाव [**अनादिनिधन:**] अभव्य जीवकी अपेक्षा अनादि अनन्त है [**वा**] अथवा [**सनिधन:**] भव्य जीवकी अपेक्षा अन्तकरके सहित है । [**इति**] इसप्रकार [**जिनवरै:**] जिनेन्द्र भगवान् करकैं [**भणित:**] कहा गया है.

भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादि बंधपर्यायके वशसे सरागपरिणाम होते हैं उनके निमित्तसे द्रव्यकर्मकी उत्पत्ति है, उससे चतुर्गतिमें गमन होता है, चतुर्गतिगमनसे देह, देहसे इन्द्रियें, इन्द्रियोंसे इष्टानिष्ट पदार्थोंका ज्ञान होता है, उससे रागद्वेषवुद्धि और उससे स्निग्धपरिणाम होते हैं उनसे फिर कर्मादिक होते हैं । इसीप्रकार परस्पर कार्यकारणरूप जीव पुद्गल परिणाममयी कर्मसमूहरूप संसारचक्रमें जीवके अनादिअनंत अनादिसान्त कुम्हारके चाककी समान परिभ्रमण होता है. इससे यह बात सिद्ध हुई कि—पुद्गलपरिणामका निमित्त पाकर जीवके अशुद्ध परिणाम होते हैं, और उन अशुद्ध परिणामोंके निमित्तसे पुद्गलपरिणाम होते हैं ।

आगें पुण्यपापपदार्थका व्याख्यान करते हैं सो प्रथम ही पुण्यपापपदार्थोंके योग्य परिणामोंका स्वरूप दिखाते हैं.

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि ।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥ १३१ ॥

संस्कृतछाया.

मोहो रागो द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य भावे ।
विद्यते तस्य शुभो वा अशुभो वा भवति परिणामः ॥ १३१ ॥

पदार्थ—[**यस्य**] जिसके [**भावे**] भावोंमें [**मोहः**] गहलरूप अज्ञानपरिणाम [**रागः**] परद्रव्योंमें प्रीतिरूप परिणाम [**द्वेषः**] अप्रीतिरूप परिणाम [**च**] और [**चित्तप्रसादः**] चित्तकी प्रसन्नता [**विद्यते**] प्रवर्तै है [**तस्य**] उस जीवके [**शुभः**] शुभ [**वा**] अथवा [**अशुभः**] अशुभ ऐसा [**परिणामः**] परिणमन [**भवति**] होता है ।

भावार्थ—इस लोकमें जीवके निश्चयसे जब दर्शनमोहनीय कर्मका उदय होता है तब उसके रसविपाकसे जो अशुद्ध तत्त्वके अश्रद्धानरूप परिणाम होय उसका नाम मोह है। और चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जो इसके रसविपाकका कारण पाय इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें जो प्रीति अप्रीतिरूप परिणाम होय उसका नाम राग द्वेष है । उसही चारित्र-मोह कर्मका जब मंद उदय हो और उसके रसविपाकसे जो कुछ विशुद्ध परिणाम होय तिसका नाम चित्तप्रसाद है । इसप्रकार जिस जीवके ये भाव होंहि तिसके अवश्यमेव शुभअशुभ परिणाम होते हैं । जहां देवधर्मादिकमें प्रसस्त राग और चित्तप्रसादका होना ये दोनों ही शुभपरिणाम कहाते हैं । और जहां मोहद्वेष होंहि और जहां इन्द्रियोंके विष-योंमें तथा धनधान्यादिकोंमें अप्रसस्त राग होय सो अशुभराग कहाता है ।

आगें पुण्यपापका स्वरूप कहते हैं ।

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावंति हवदि जीवस्स ।
दोण्हं पोग्गलमत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो ॥ १३२ ॥

संस्कृतछाया.

शुभपरिणामः पुण्यमशुभः पापमिति भवति जीवस्य ।
द्वयोः पुद्गलमात्रो भावः कर्मत्वं प्राप्तः ॥ १३२ ॥

पदार्थ—[**जीवस्य**] जीवके [**शुभपरिणामः**] सत्क्रियारूप परिणाम [**पुण्यं**] पुण्यनामा पदार्थ है [**अशुभः**] विषयकषायादिकमें प्रवृत्ति है सो [**पापं इति**] पाप ऐसा पदार्थ [**भवति**] होता है [**द्वयोः**] इन दोनों शुभाशुभ परिणामोंका [**पुद्गलमात्रः भावः**] द्रव्यपिण्डरूप ज्ञानावरणादि परिणाम जो है सो [**कर्मत्वं**] शुभाशुभ कर्मावस्थाको [**प्राप्तः**] प्राप्त हुवा है ।

भावार्थ—संसारी जीवके शुभअशुभके भेदसे दो प्रकारके परिणाम होते हैं । उन परिणामोंका अशुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा जीव कर्त्ता है शुभपरिणाम कर्म है वही शुभ परिणाम द्रव्यपुण्यका निमित्तत्वसे कारण है। पुण्यप्रकृतिके योग्य वर्गणा तब होती है जब कि शुभपरिणामका निमित्त मिलता है । इसकारण प्रथम ही भावपुण्य होता है तत्पश्चात्

द्रव्य पुण्य होता है। इसीप्रकार अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा जीव कर्त्ता है अशुभ परिणाम कर्म है उसका निमित्त पाकर द्रव्यपाप होता है इसलिये प्रथम ही भावपाप होता है तत्पश्चात् द्रव्यपाप होता है। और निश्चयनयकी अपेक्षा पुद्गल कर्त्ता है शुभप्रकृति परिणमनरूप द्रव्यपुण्यकर्म है। सो जीवके शुभपरिणामका निमित्त पाकर उपजता है। और निश्चयनयसे पुद्गलद्रव्य कर्त्ता है। अशुभप्रकृति परिणमनरूप द्रव्यपापकर्म है सो आत्माके ही अशुभ परिणामोंका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है। भावित पुण्यपापका उपादान कारण आत्मा है, द्रव्य पापपुण्यवर्गणा निमित्तमात्र है। द्रव्यत पुण्य-पापका उपादान कारण पुद्गल है. जीवके शुभाशुभ परिणाम निमित्तमात्र हैं। इसप्रकार आत्माके निश्चय नयसे भावितपुण्यपाप अमूर्त्तीक कर्म हैं और व्यवहारनयसे द्रव्यपुण्य-पाप मूर्त्तीक कर्म हैं।

आगें मूर्त्तीक कर्मका स्वरूप दिखाते हैं—

जह्मा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे नियदं।
जीवेण सुहं दुक्खं तह्मा कम्माणि मुत्ताणि॥ १३३॥

संस्कृतछाया.

यस्मात्कर्मणः फलं विषयः स्पर्शैर्भुज्यते नियतं।
जीवेन सुखं दुःखं तस्मात्कर्माणि मूर्त्तानि॥ १३३॥

पदार्थ—[**यस्मात्**] जिस कारणसे [**कर्मणः**] ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंका [**सुखं दुःखं**] सुखदुखरूप [**फलं**] रस सो ही हुवा [**विषयः**] सुखदुःखका उपजानेहारा इष्टअ-निष्टरूप मूर्त्तपदार्थ सो [**स्पर्शैः**] मूर्त्तीक इन्द्रियोंसे [**नियतं**] निश्चयकरकें [**जीवेन**] आत्माद्वारा [**भुज्यते**] भोगा जाता है [**तस्मात्**] तिसकारणसे [**कर्माणि**] ज्ञानावरणादिकर्म [**मूर्त्तानि**] मूर्त्तीक हैं।

भावार्थ—कर्मोंका फल इष्ट अनिष्ट पदार्थ हैं सो मूर्त्तीक है इसीसे मूर्त्तीक स्पर्शादि इन्द्रियोंसे जीव भोगता है। इसकारण यह वात सिद्ध भई कि कर्म मूर्त्तीक हैं अर्थात् ऐसा अनुमान होता है क्योंकि जिसका फल मूर्त्तीक होता है उसका कारण भी मूर्त्तीक होता है सो कर्म मूर्त्तीक हैं. मूर्त्तीक कर्मके सम्बन्धसे ही मूर्त्तफल अनुभवन किया जाता है। जैसें चूहेका विष मूर्त्तीक है सो मूर्त्तीक शरीरसे ही अनुभवन किया जाता है।

आगें मूर्त्तीक कर्मका और अमूर्त्तीक जीवका वंध किसप्रकार होता है सो सूचनामात्र कथन करते हैं।

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण वंधमणुहवदि।
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि॥ १३४॥

संस्कृतछाया.

मूर्त्तः स्पृशति मूर्त्तं मूर्त्तो मूर्त्तेन बन्धमनुभवति।
जीवो मूर्त्तिविरहितो गाहति तानि तैरवगाह्यते॥ १३४॥

पदार्थ—[**मूर्त्तः**] बंधपर्यायकी अपेक्षा मूर्त्तीक संसारी जीवके कर्मपुंज [**मूर्त्तं**] मूर्त्तीक कर्मको [**स्पृशति**] स्पर्शन करता है इसकारण [**मूर्तः**] मूर्त्तीक कर्मपिण्ड जो है सो [**मूर्त्तेन**] मूर्त्तीक कर्मपिण्डसे [**बन्धं**] परस्पर बन्धावस्थाको [**अनुभवति**] प्राप्त होता है। [**मूर्त्तिविरहितः**] मूर्तिभावसे रहित [**जीवः**] जीव [**तानि**] उन कर्मोंके साथ बन्धावस्थावोंको [**गाहति**] प्राप्त होता है। [**तैः**] उन ही कर्मोंसे [**जीवः**] आत्मा जो है सो [**अवगाह्यते**] एक क्षेत्रावगाह कर बंधता है।

भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादि कालसे लेकर मूर्त्तीक कर्मोंसे सम्बन्ध है. वे कर्म स्पर्शरसगन्धवर्णमयी हैं। इससे आगामी मूर्त्तकर्मोंसे अपने स्निग्धरूखे गुणोंके द्वारा वन्धता है, इसकारण मूर्त्तीक कर्मसे मूर्त्तीकका बन्ध होता है। फिर निश्चयनयकी अपेक्षा जीव अमूर्त्तीक है. अनादिकर्मसंयोगसे रागद्वेषादिक भावोंसे स्निग्धरूक्षभावपरिणया हुवा नवीन कर्मपुंजका आस्रव करता है. उस कर्मसे पूर्ववद्धकर्मकी अपेक्षा बन्ध अवस्थाको प्राप्त होता है। यह आपसमें जीवकर्मका बन्ध दिखाया—इसहीप्रकार अमूर्त्तीक आत्माको मूर्त्तीकपुण्यपापसे कथंचित्प्रकार वन्धका विरोध नहीं है। इसप्रकार पुण्यपापका कथन पूर्ण हुवा।

अव आस्रव पदार्थका व्याख्यान करते हैं.

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो।
चित्ते णत्थि कलुस्सं पुण्णं जीवस्स आसवदि॥ १३५॥

संस्कृतछाया.

रागो यस्य प्रशस्तोऽनुकम्पासंश्रितश्च परिणामः।
चित्ते नास्ति कालुष्यं पुण्यं जीवस्यास्रवति॥ १३५॥

पदार्थ—[**यस्य**] जिस जीवके [**रागः**] प्रीतिभाव [**प्रशस्तः**] भला है [**च**] और [**अनुकम्पासंश्रितः**] अनुकम्पाके आश्रित अर्थात् दयारूप [**परिणामः**] भाव है तथा [**चित्ते**] चित्तमें [**कालुष्यं**] मलीनभाव [**नास्ति**] नहीं है [**तस्य जीवस्य**] उस जीवके [**पुण्यं**] पुण्य [**आस्रवति**] आता है।

भावार्थ—शुभ परिणाम तीन प्रकारके हैं अर्थात्—प्रशस्तराग १ अनुकम्पा २ और चित्तप्रसाद ३ ये तीनों प्रकारके शुभपरिणाम द्रव्यपुण्यप्रकृतियोंको निमित्त मात्र है इसकारण जो शुभभाव हैं वे तो भावास्रव हैं. तत्पश्चात् उन भावोंके निमित्तसे शुभयोगद्वारकर जो शुभ वर्गणायें आतीं हैं वे द्रव्यपुण्यास्रव हैं।

आगें प्रशस्त रागका स्वरूप दिखाते हैं.

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥ १३६ ॥

संस्कृतछाया.

अरहत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे या च खलु चेष्टा।
अनुगमनमपि गुरूणां प्रशस्तराग इति ब्रुवन्ति (?) ॥ १३६ ॥

पदार्थ—[अरहत्सिद्धसाधुषु] अरहंत सिद्ध और साधु इन तीन पदोंमें जो [भक्तिः] स्तुति वंदनादिक [च] और [या] जो [धर्मे] अरहंत प्रणीत धर्ममें [खलु] निश्चय करकें [चेष्टा] प्रवृत्ति, [गुरूणां] धर्माचरणके उपदेष्टा आचार्यादिकोंका [अनुगमनं अपि] भक्ति भावसहित उनके पीछें होकर चलना अर्थात् उनकी आज्ञानुसार चलना भी [इति] इसप्रकार महापुरुष [प्रशस्तरागः] भला रागको [ब्रुवंति] कहते हैं।

भावार्थ—अरहंतसिद्धसाधुवोंमें भक्तिव्यवहार चारित्रका आचरण और आचार्यादिक महन्त पुरुषोंके चरणोंमें रसिक होना इसका नाम प्रशस्त राग है। क्योंकि शुभ रागसे ही पूर्वोक्त प्रवृत्ति होती हैं। यह प्रशस्तराग स्थूलताकर अकेला भक्तिहीके करनेवाले अज्ञानी जीवोंके जानना और किसी काल ज्ञानीके भी होता है। कैसे ज्ञानीके होता है? कि जो ज्ञानी उपरिके गुणस्थानोंमें स्थिर होनेको असमर्थ हैं उनके यह प्रशस्त राग होता है सो भी कुदेवादिकोंमें राग निषेधार्थ अथवा तीव्र विषयानुरागरूप ज्वरके दूर करनेकेलिये होता है।

आगें अणुकम्पा अर्थात् दयाका स्वरूप कहते हैं।

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥ १३७ ॥

संस्कृतछाया.

तृषितं बुभुक्षितं वा दुःखितं दृष्ट्वा यस्तु दुःखितमनाः।
प्रतिपद्यते तं कृपया तस्यैषा भवत्यनुकम्पा ॥ १३७ ॥

पदार्थ—[तृषितं] जो कोई जीव तृषावंत हो [वा] अथवा [बुभुक्षितं] क्षुधातुर होय वा [दुःखितं] रोगादिकरि दुःखित होय [तं] उसको [दृष्ट्वा] देखकर [यःतु] जो पुरुष [दुःखितमनाः] उसकी पीड़ासे आप दुःखी होता हुवा [कृपया] दयाभाव करकें [प्रतिपद्यते] उस दुःखके दूर करनेकी क्रियाको प्राप्त होता है [तस्य] उस पुरुषके [एषा] यह [अनुकम्पा] दया [भवति] होती है।

भावार्थ—दयाभाव अज्ञानीके भी होता है और ज्ञानीके भी होता हैं परन्तु इतना विशेष है कि अज्ञानीके जो दयाभाव है सो किस ही पुरुषको दुःखित देखकर तो उसके दुःख दूर करनेके उपायमें अहंबुद्धिसे आकुलचित्त होकर प्रवर्ते है और जो ज्ञानी

नीचेंके गुणस्थानोंमें प्रवृत्तै है, उसके दयाभाव जो होता है सो जब दुःखसमुद्रमें मग्न संसारीजीवोंको जानता है तब ऐसा जानकर किसी कालमें मनको खेद उपजाता है।

आगें चित्तकी कलुषताका स्वरूप दिखाते हैं।

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति॥१३८॥

संस्कृतछाया.

क्रोधो वा यदा मानो माया लोभो वा चित्तमासाद्य।
जीवस्य करोति क्षोभं कालुष्यमिति च तं बुधा वदन्ति॥ १३८॥

पदार्थ—[**यदा**] जिस समय [**क्रोधः**] क्रोध [**वा**] अथवा [**मानः**] अभिमान [**वा**] अथवा [**माया**] कुटिलभाव अथवा [**लोभः**] इष्टमें प्रीतिभाव [**चित्तं**] मनको [**आसाद्य**] प्राप्त होकर [**जीवस्य**] आत्माके [**क्षोभं**] अतिआकुलतारूप भाव [**करोति**] करता है [**तं**] उसको [**बुधाः**] जो बडे महन्त ज्ञानी हैं ते [**कालुष्यं-इति**] कलुषभाव ऐसा नाम [**वदन्ति**] कहते हैं।

भावार्थ—जब क्रोध मान माया लोभका तीव्र उदय होता है तब चित्तको जो कुछ क्षोभ होय उसको कलुषभाव कहते हैं। उनही कषायोंका जब मंद उदय होता है तब चित्तकी प्रसन्नता होती है उसको विशुद्धभाव कहते हैं सो वह विशुद्ध चित्तप्रसाद किसी कालमें विशेष कषायोंकी मंदता होनेपर अज्ञानी जीवके होता है। और जिस जीवके कषायका उदय सर्वथा निवृत्त नहीं होय, उपयोगभूमिका सर्वथा निर्मल नहिं हुई होय, अन्तरभूमिकाके गुणस्थानोंमें प्रवर्त्तै है उस ज्ञानी जीवके भी किसीकालमें चित्तप्रसादरूप निर्मलभाव पाये जाते हैं। इसप्रकार ज्ञानी अज्ञानीके चित्तप्रसाद जानना।

आगें पापास्रवका स्वरूप कहते हैं.

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
परपरितावापवादो पावस्स य आसवं कुणदि॥ १३९॥

संस्कृतछाया.

चर्य्या प्रमादबहुला कालुष्यं लोलता च विषयेषु।
परपरितापापवादः पापस्य चास्रवं करोति॥ १३९॥

पदार्थ—[**प्रमादबहुला चर्या**] बहुत प्रमादसहित क्रिया [**कालुष्यं**] चित्तकी मलीनता [**च**] और [**विषयेषु**] इन्द्रियोंके विषयोंमें [**लोलता**] प्रीतिपूर्वक चपलता [**च**] और [**परपरितापापवादः**] अन्यजीवोंको दुख देना अन्यकी निंदा करनी बुरा बोलना इत्यादि आचरणोंसे अशुभी जीव [**पापस्य**] पापका [**आस्रवं**] आस्रव [**करोति**] करता है।

भावार्थ—विषय कषायादिक अशुभक्रियावोंसे जीवके अशुभपरिणति होती है,

उसको भावपापास्रव कहते हैं. उसी भावपापास्रवका निमित्त पाकर पुद्गलवर्गणारूप जो द्रव्यकर्म हैं सो योगोंके द्वारसे आते हैं उसका नाम द्रव्यपापास्रव है।

आगें पापास्रवके कारणभूत भाव विस्तारसे दिखाते हैं।

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥ १४० ॥

संस्कृतछाया.

संज्ञाश्च त्रिलेश्या इन्द्रियवशता चार्त्तरौद्रे।
ज्ञानं च दुःप्रयुक्तं मोहः पापप्रदा भवन्ति ॥ १४० ॥

पदार्थ—[**संज्ञाः**] चार संज्ञा [**च**] और [**त्रिलेश्याः**] तीन लेश्या [**च**] और [**इन्द्रियवशता**] इन्द्रियोंके आधीन होना [**च**] तथा [**आर्त्तरौद्रे**] आर्त्त और रौद्रध्यान और [**दुःप्रयुक्तं ज्ञानं**] सत्क्रियाके अतिरिक्त असत्क्रियावोंमें ज्ञानका लगाना तथा [**मोहः**] दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय कर्मके समस्तभाव हैं ते [**पापप्रदाः**] पापरूप आवस्रवके कारण [**भवन्ति**] होते हैं।

भावार्थ—तीव्रमोहके उदयसे आहार भय मैथुन परिग्रह ये चार संज्ञायें होतीं हैं और तीव्र कषायके उदयसे रंजित योगोंकी प्रवृत्तिरूप कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्यायें होतीं हैं। रागद्वेषके उत्कृष्ट उदयसे इन्द्रियाधीनता होती है। रागद्वेषके अति विपाकसे इष्टवियोग अनिष्टसंयोग पीड़ाचिन्तवन और निदानवंध ये चार प्रकारके आर्त्त ध्यान होते हैं। तीव्र कषायोंके उदयसे जब अतिशय क्रूरचित्त होता है तब हिंसानंदी मृषानंदी स्तेयानंदी विषयसंरक्षणानंदीरूप चार प्रकारके रौद्रध्यान होते हैं। दुष्ट भावोंसे धर्मक्रियासे अतिरिक्त अन्यत्र उपयोगी होना सो खोटा ज्ञान है। मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रके उदयसे अविवेकका होना सो मोह (अज्ञानभाव) है इत्यादि परिणामोंका होना सो भाव पापास्रव कहाता है। इसी पापपरिणतिका निमित्त पाकर द्रव्यपापास्रवका विस्तार होता है। यह आस्रवपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुवा।

आगें संवर पदार्थका व्याख्यान किया जाता है।

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि।
जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवं छिद्दं ॥ १४१ ॥

संस्कृतछाया.

इन्द्रियकपायसंज्ञा निगृहीता यैः सुष्ठुमार्गे।
यावत्तावत्तेषां पिहितं पापास्रवं छिद्रं ॥ १४१ ॥

पदार्थ—[**यैः**] जिन पुरुषोंने [**इन्द्रियकपायसंज्ञाः**] मनसहित पांच इन्द्रिय, चार

१. 'अट्टरुद्दाणि' इत्यपि पाठः।

कषाय और चार संज्ञारूप पापपरिणति [**यावत्**] जिस समय [**सुष्ठुमार्गे**] संवर मार्गमें [**निग्रहीताः**] रोकीं हैं [**तावत्**] तव [**तेषां**] उनके [**पापास्रवं छिद्रं**] पापास्रवरूपी छिद्र [**पिहितं**] आच्छादित हुवा ।

भावार्थ—मोक्षका मार्ग एक संवर है सो संवर जितना इन्द्रिय कषाय संज्ञावोंका निरोध होय उतना ही होता है । अर्थात् जितने अंश आस्रवका निरोध होता है उतने ही अंश संवर होता है । इन्द्रिय कषाय संज्ञा ये भावपापास्रव हैं । इनका निरोध करना भाव पापसंवर है ये ही भावपापसंवर द्रव्यपापसंवरका कारण है । अर्थात् जव इस जीवके अशुद्ध भाव नहिं होते तव पौद्गलीक वर्गणावोंका आस्रव भी नहिं होता ।

आगें सामान्य संवरका स्वरूप कहते हैं ।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥१४२॥

संस्कृतछाया.

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा सर्वद्रव्येषु ।
नास्रवति शुभमशुभं समसुखदुःखस्य भिक्षोः ॥ १४२ ॥

पदार्थ—[**यस्य**] जिस पुरुषके [**सर्वद्रव्येषु**] समस्त परद्रव्योंमें [**रागः**] प्रीतिभाव [**द्वेषः**] द्वेषभाव [**वा**] अथवा [**मोहः**] तत्त्वोंकी अश्रद्धारूप मोह [**न विद्यते**] नहीं है [**तस्य**] उस [**समसुखदुःखस्य**] समान है सुखदुःख जिसके ऐसे [**भिक्षोः**] महामुनिके [**शुभं**] शुभरूप [**अशुभं**] पापरूप पुद्गलद्रव्य [**न आस्रवति**] आस्रवभावको प्राप्त नहिं होता ।

भावार्थ—जिस जीवके रागद्वेष मोहरूप भाव परद्रव्योंमें नहीं है उस ही समरसीके शुभाशुभ कर्मास्रव नहिं होता. उसके संवर ही होता है इसकारण रागद्वेषमोहपरिणामोंका निरोध सो भावसंवर कहाता है. उस भावसंवरके निमित्तसे योगद्वारोंसे शुभाशुभरूप कर्म वर्गणावोंका निरोध होना सो द्रव्यसंवर है ।

आगें संवरका विशेष स्वरूप कहते हैं ।

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स ।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥ १४३ ॥

संस्कृतछाया.

यस्य यदा खलु पुण्यं योगे पापं च नास्ति विरतस्य ।
संवरणं तस्य तदा शुभाशुभकृतस्य कर्मणः ॥ १४३ ॥

पदार्थ—[**यदा**] [**खलु**] निश्चय करकें जिस समय [**यस्य**] जिस [**विरतस्य**] परद्रव्यत्यागीके [**योगे**] मनवचनकायरूप योगोंमें [**पापं**] अशुभपरिणाम [**च**] और [**पुण्यं**] शुभपरिणाम [**नास्ति**] नहीं है [**तदा**] उस समय [**तस्य**] उस मुनिके

[**शुभाशुभकृतस्य कर्मणः**] शुभाशुभ भावोंसे उत्पन्न कियेहुये द्रव्यकर्मास्रवोंका [**संवरणं**] निरोधक संवरभाव होते हैं ।

भावार्थ—जव इस महामुनिके सर्वथाप्रकार शुभाशुभ योगोंकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति होती है तव उसके आगामी कर्मोंका निरोध होता है । मूलकारण भावकर्म हैं जव भावकर्म ही चले जांय तव द्रव्यकर्म कहांसे होय? इसकारण यह वात सिद्ध हुई कि शुभाशुभ भावोंका निरोध होना भावपुण्यपापसंवर होता है । यह ही भावसंवर द्रव्यपुण्यपापका निरोधक प्रधान हेतु है । इसप्रकार संवरपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुवा ।

अव निर्जरापदार्थका व्याख्यान किया जाता है ।

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे वहुविहेहिं ।
कम्माणं णिज्जरणं वहुगाणं कुणदि सो णियदं ॥ १४४ ॥

संस्कृतछाया.

संवरयोगाभ्यां युक्तस्तपोभिर्यश्चेष्टते वहुविधैः ।
कर्मणां निर्जरणं वहुकानां करोति स नियतं ॥ १४४ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो भेद विज्ञानी [**संवरयोगाभ्यां**] शुभाशुभास्रवनिरोधरूप संवर और शुद्धोपयोगरूप योगोंकर [**युक्तः**] संयुक्त [**वहुविधैः**] नाना प्रकारके [**तपोभिः**] अन्तरंग वहिरंग तपोंके द्वारा [**चेष्टते**] उपाय करता है [**सः**] वह पुरुष [**नियतं**] निश्चयकरके [**वहुकानां**] वहुतसे [**कर्मणां**] कर्मोंकी [**निर्जरणं**] निर्जरा [**करोति**] करता है ।

भावार्थ—जो पुरुष संवर और शुद्धोपयोगसे संयुक्त, तथा अनसन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश इन छहप्रकारके वहिरंग तप तथा प्रायश्चित्त, विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युतसर्ग और ध्यान इन छःप्रकारके अंतरंग तपकर सहित हैं वह वहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करता है । इससे यह भी सिद्ध हुवा कि अनेक कर्मोंकी शक्तियोंके गालनेको समर्थ द्वादश प्रकारके तपोंसे वढा हुवा है जो शुद्धोपयोग वही भावनिर्जरा है और भावनिर्जराके अनुसार नीरस होकर पूर्वमें वंधे हुये कर्मोंका एकदेश खिर जाना सो द्रव्यनिर्जरा है ।

आगें निर्जराका कारण विशेपताके साथ दिखाते हैं ।

जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं ।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥१४५॥

संस्कृतछाया.

यः संवरेण युक्तः आत्मार्थप्रसाधको ह्यात्मानं ।
ज्ञात्वा ध्यायति नियतं ज्ञानं स संधुनोति कर्मरजः ॥ १४५ ॥

---

१ कर्म अपना रसदेकर खिर जावें उसको निर्जरा कहते हैं ।

पदार्थ—[**यः**] जो पुरुष [**संवरेण युक्तः**] संवरभावोंकर संयुक्त है तथा [**आत्मार्थप्रसाधकः**] आत्मीक स्वभावका साधनहारा है [**सः**] वह पुरुष [**हि**] निश्चय करकें [**आत्मानं**] शुद्ध चिन्मात्र आत्मस्वरूपको [**ज्ञात्वा**] जान करकें [**नियतं**] सदैव [**ज्ञानं**] आत्माके सर्वस्वको [**ध्यायति**] ध्यावै है वही पुरुष [**कर्मरजः**] कर्मरूपी धूलिको [**संधुनोति**] उडा देता है ।

भावार्थ—जो पुरुष कर्मोंके निरोधकर संयुक्त है, आत्मस्वरूपका जाननहारा है, सो परकार्योंसे निवृत्त होकर आत्मकार्यका उद्यमी होता है, तथा अपने स्वरूपको पाकर गुणगुणीके अभेद कथनकर अपने ज्ञानगुणको आपसे अभेद निश्चल अनुभवै है, वह पुरुष सर्वथाप्रकार वीतराग भावोंकेद्वारा पूर्वकालमें वन्धेहुये कर्मरूपी धूलिको उडा देता है अर्थात् कर्मोंको खपा देता है । जैसें चिकनाईरहित शुद्धफटिकका थंभ निर्मल होता है उसीप्रकार निर्जराका मुख्य हेतु ध्यान है अर्थात् निर्मलताका कारण है ।

अव ध्यानका स्वरूप कहते हैं ।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुहडहणो ज्झाणमओ जायए अगणी ॥ १४६ ॥

संस्कृतछाया.

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा योगपरिकर्म ।
तस्य शुभाशुभदहनो ध्यानमयो जायते अग्निः ॥ १४६ ॥

पदार्थ—[**यस्य**] जिस जीवके [**रागः द्वेषः मोहः**] राग द्वेष मोह [**वा**] अथवा [**योगपरिकर्म**] तीन योगोंका परिणमन [**न विद्यते**] नहीं है [**तस्य**] तिस जीवके [**शुभाशुभदहनः**] शुभअशुभ भावोंको जलानेवाली [**ध्यानमयः**] ध्यानस्वरूपी [**अग्निः**] आग [**जायते**] उत्पन्न होती है ।

भावार्थ—परमात्मस्वरूपमें अडोल चैतन्यभाव जिस जीवके होय, वह ही ध्यान करनेवारा है इस ध्याता पुरुषके स्वरूपकी प्राप्ति किस प्रकार होती है सो कहते हैं,—

जव निश्चयं करके योगीश्वर अनादि मिथ्यावासनाके प्रभावसे दर्शन चारित्र मोहनीयं कर्मके विपाकसे अनेकप्रकारके कर्मोंमें प्रवर्त्तनेवाले उपयोगको काललब्धि पाकर वहांसे संकोचकर अपने स्वरूपमें लावै तव निर्मोह वीतराग द्वेषरहित अत्यन्त शुद्ध स्वरूपको शुद्धात्म स्वरूपमें निष्कंप ठहरा सकै और तव ही इस भेदविज्ञानी ध्यानीके स्वरूप साधक पुरुषार्थसिद्धिका परमउपाय ध्यान उत्पन्न होता है । वह ध्यान करनहारा पुरुष निःक्रिय चैतन्यस्वरूपमें स्थिरताके साथ मग्न हो रहा है, मनवचनकायकी भावना नहिं भाता है, कर्मकांडमें भी नहिं प्रवर्त्तता, समस्त शुभाशुभ कर्मइन्धनको जलानेके अर्थ अग्निवत् ज्ञानकांड

गर्भित ध्यानका अनुभवी है, इसकारण परमात्मपदको पाता है[1]। इसप्रकार निर्जरा पदार्थका व्याख्यान पूरा हुवा.

अब वन्ध पदार्थका व्याख्यान किया जाता है।

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेण हवदि वंधो पोग्गलकम्मेण विविहेण॥ १४७॥

संस्कृतछाया.

यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा।
स तेन भवति वद्धः पुद्गलकर्मणा विविधेन॥ १४७॥

पदार्थ—[**यदि**] जो [**रक्तः**] अज्ञानभावमें रागी होकर [**आत्मा**] यह जीवद्रव्य [**यं**] जिस [**शुभं अशुभं**] शुभाशुभरूप [**उदीर्णं**] प्रकट हुये [**भावं**] भावको [**करोति**] करता है [**सः**] वह जीव [**तेन**] तिस भावसे [**विविधेन पुद्गलकर्मणा**] अनेक प्रकारके पौद्गलीक कर्मोंसे [**वद्धः भवति**] बंध जाता है।

भावार्थ—जो यह आत्मा परके सम्बन्धसे अनादि अविद्यासे मोहित होकर कर्मके उदयसे जिस शुभाशुभ भावको करता है तव यह आत्मा उसही काल उस अशुद्ध उपयोगरूप भावका निमित्त पाकरके पौद्गलिक कर्मोंसे बंधता है। इससे यह वात भी सिद्ध हुई कि इस आत्माके जो रागद्वेषमोहरूप स्निग्ध शुभअशुभ परिणाम हैं उनका नाम तो भावबन्ध है उस भाववन्धका निमित्त पाकर शुभअशुभरूप द्रव्यवर्गणामयी पुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंसे परस्पर बंध होना तिसका नाम द्रव्यबन्ध है।

आगें वंधके वहिरंग अन्तरंग कारणोंका स्वरूप दिखाते हैं।

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो वंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो॥ १४८॥

संस्कृतछाया.

योगनिमित्तं ग्रहणं योगो मनोवचनकायसंभूतः।
भावनिमित्तो वन्धो भावो रतिरागद्वेषमोहयुतः॥ १४८॥

पदार्थ—[**योगनिमित्तं ग्रहणं**] योगोंका निमित्त पाकर कर्मपुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक क्षेत्रावगाहकर ग्रहण होता है [**योगः मनोवचनकायसंभूतः**] योग जो है

---

१ जो कोई कहै कि इस वर्तमान कालमें ध्यान नहिं होता उनको नीचे लिखी दो गाथावोंसे अपना समाधान करना चाहिये

"अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाये वि लहइ इंदत्तं।
लोयंति य देवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति॥ १॥
अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तण्णवरि सिक्खियव्वं जंजरमरणं खइं कुणई॥ २॥"

सो मनवचनकायकी क्रियासे उत्पन्न होता है। [**बन्धः भावनिमित्तः**] ग्रहण तो योगोंसे होता है और बन्ध एक अशुद्धोपयोगरूप भावोंके निमित्तसे होता है. और [**भावः**] वह भाव जो है सो कैसा है कि [**रतिरागमोहयुतः**] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रति रागद्वेष-मोह करकें संयुक्त होता है।

भावार्थ—जीवोंके प्रदेशोंमें कर्मोंका आगमन तो योगपरिणतिसे होता है. पूर्वकी बन्धीहुई कर्मवर्गणावोंका अवलंबन पाकर आत्मप्रदेशोंका प्रकंपन होना उसका नाम योगपरिणति है। और विशेषतया निज शक्तिके परिणामसे जीवके प्रदेशोंमें पुद्गलकर्मपिंडोंका रहना उसका नाम बन्ध है। वह बन्ध मोहनीयकर्मसंजनित अशुद्धोपयोगरूप भावके विना जीवके कदाचित् नहिं होता। यद्यपि योगोंके द्वारा भी बन्ध होता है तथापि स्थिति अनुभागके विना उसका नाममात्र ही ग्रहण होता है. क्योंकि बन्ध उसहीका नाम है जो स्थिति अनुभागकी विशेषतालिये हो, इसकारण यह वात सिद्ध हुई कि वन्धको बहिरंग कारण तो योग है और अन्तरंग कारण जीवके रागादिक भाव हैं।

आगें द्रव्यमिथ्यात्वादिक बन्धके बहिरंग कारण हैं ऐसा कथन करते हैं।

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति॥ १४९॥

संस्कृतछाया.

हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भणितम्।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावे न बध्यन्ते॥ १४९॥

पदार्थ—[**चतुर्विकल्पः**] चार प्रकारका द्रव्यप्रत्यय रूप जो [**हेतुः**] कारण है सो [**अष्टविकल्पस्य**] आठप्रकारके कर्मोंका [**कारणं**] निमित्त [**भणितं**] कहा गया है [**च**] और [**तेषां अपि**] उन चार प्रकारके द्रव्यप्रत्ययोंका भी कारण [**रागादयः**] रागादिक विभाव भाव हैं [**तेषां**] उन रागादिक विभावरूपभावोंके [**अभावे**] विनाश होनेपर [**न वध्यन्ते**] कर्म नहिं वंधते हैं।

भावार्थ—आठप्रकार कर्मवन्धके कारण मिथ्यात्व असंयम कषाय और योग ये चार प्रकारके द्रव्यप्रत्यय हैं। उन द्रव्यप्रत्ययोंके कारण रागादिक भाव हैं अतएव वन्धके कारणके कारण रागादिक भाव हैं क्योंकि रागादिक भावोंके अभाव होनेसे द्रव्यमिथ्यात्व असंयम कषाय और योग इन चार प्रत्ययोंके होते संते भी जीवके वन्ध नहिं होता. इस कारण रागादिक भाव ही वन्धके अन्तरंग मुख्यकारण हैं गौणकारण चारित्रप्रत्यय है। इसप्रकार वन्धपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुवा।

अब मोक्षपदार्थका व्याख्यान किया जाता है सो प्रथम ही द्रव्यमोक्षका कारण परम-संवररूप मोक्षका स्वरूप कहते हैं।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो॥ १५०॥
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।
पावदि इंदियरहिदं अव्वावाहं सुहमणंतं॥ १५१॥

संस्कृतछाया.

हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणस्तु निरोधः॥ १५०॥
कर्मणामभावेन च सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोतीन्द्रियरहितमव्याबाधं सुखमनन्तं॥ १५१॥

पदार्थ—[**हेत्वभावे**] रागादिकारणोंके अभावसे [**नियमात्**] निश्चयसे [**ज्ञानिनः**] भेदविज्ञानीके [**आस्रवनिरोधः**] आस्रवभावका अभाव [**जायते**] होता है [**तु**] और [**आस्रवभावेन विना**] कर्मका आगमन न होनेसे [**कर्मणः**] ज्ञानावरणादि कर्मबन्धका [**निरोधः**] अभाव [**जायते**] होता है। [**च**] और [**कर्मणां**] ज्ञानावरणादि कर्मोंके [**अभावेन**] विनाश करकें [**सर्वज्ञः**] सर्वका जाननहारा [**च**] और [**सर्वलोकदर्शी**] सबका देखनहारा होता है तब वह [**इन्द्रियरहितं**] इन्द्रियाधीन नही और [**अव्याबाधं**] बाधारहित [**अनन्तं**] अपार ऐसे [**सुखं**] आत्मीक सुखको [**प्राप्नोति**] प्राप्त होता है।

भावार्थ—जीवके आस्रवका कारण मोहरागद्वेषरूप परिणाम हैं जब इन तीन अशुद्ध भावोंका विनाश होय तब ज्ञानी जीवके अवश्य ही आस्रवभावोंका अभाव होता है। जब ज्ञानीके आस्रवभावका अभाव होता है तब कर्मका नाश होता है कर्मोंके नाश होनेपर निरावरण सर्वज्ञपद तथा सर्वदर्शीपद प्रगट होता है। और अखंडित अतीन्द्रिय अनन्त सुखका अनुभवन होता है इस पदका नाम जीवन्मुक्त भावमोक्ष कहा जाता है देहधारी जीते रहते ही भावकर्मरहित सर्वथा शुद्धभावसंयुक्त मुक्त हैं इसकारण जीवन्मुक्त कहाते हैं। जो कोई पूछै कि किसप्रकार जीवन्मुक्त होते हैं सो कहते हैं कि कर्मकर आच्छादित आत्माके क्रमसे प्रवर्त्तै है जो ज्ञान क्रियारूप भाव, सो संसारी जीवके अनादि मोहनीयकर्मके वशसे अशुद्ध है. द्रव्यकर्मके आस्रवका कारण है सो भावज्ञानी जीवके मोहरागद्वेषकी प्रवृत्तिसे कमी होता है अतएव इस भेदविज्ञानीके आस्रवभावका निरोध होता है। जब इसके मोहकर्मका क्षय होता है तब इसके अत्यन्त निर्विकार वीतराग चारित्र प्रगट होता है. अनादिकालसे आस्रव आवरणद्वारा अनन्त चैतन्यशक्ति इस आत्माकी मुद्रित (ढकीहुई) है वही इस ज्ञानीके शुद्धक्षायोपशमिक निर्मोहज्ञानक्रियाके होतेसंते अन्तरमुहूर्त्तपर्यन्त रहती है तत्पश्चात् एक ही समयमें ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय कर्मके क्षय होनेसे कथंचित्प्रकार कूटस्थ अचल केवलज्ञान अवस्थाको प्राप्त होता है. उससमय ज्ञानक्रियाकी प्रवृत्ति क्रमसे नहीं होती क्योंकि भावकर्मका अभाव है सो ऐसी अवस्थाके होनेसे वह भगवान्

सर्वज्ञ सर्वदर्शी इन्द्रियव्यापाररहित अव्यावाध अनन्त सुखसंयुक्त सदाकाल स्थिरस्वभावसे स्वरूपगुप्त रहते हैं । यह भावकर्मसे मुक्तका स्वरूप दिखाया और ये ही द्रव्यकर्मसे मुक्त होनेका कारण परम संवरका स्वरूप है। जब यह जीव केवलज्ञानदशाको प्राप्त होता है तब इसके चार अघातिया कर्म जलीहुई जेवड़ीकी तरह द्रव्यकर्म रहते हैं । उन द्रव्य-कर्मोंके नाशको अनन्त चतुष्टय परम संवर कहते हैं।

आगें द्रव्यकर्ममोक्षका कारण और परम निर्जराका कारण ध्यानका स्वरूप दिखाते हैं।

दंसणणाणसमग्गं ज्झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं ।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स ॥ १५२ ॥

संस्कृतछाया.

दर्शनज्ञानसमग्रं ध्यानं नो अन्यद्रव्यसंयुक्तं ।
जायते निर्जराहेतुः स्वभावसहितस्य साधोः ॥ १५२ ॥

पदार्थ—[**दर्शनज्ञानसमग्रं**] यथार्थ वस्तुको सामान्य देखने और विशेपता कर जाननेसे परिपूर्ण [**ध्यानं**] परद्रव्यचिन्ताका निरोधरूप ध्यान सो [**निर्जराहेतुः**] कर्मवन्धस्थितिकी अनुक्रम परिपाटीसे खिरना उसका कारण [**जायते**] होता है। यह ध्यान किसके होता है? [**स्वभावसहितस्य साधोः**] आत्मीक स्वभावसंयुक्त साधु महामुनिके होता है। कैसा है यह ध्यान? [**नो अन्यद्रव्यसंयुक्तं**] परद्रव्य संवन्धसे रहित है।

भावार्थ—जब यह भगवान् भावकर्ममुक्त केवल अवस्थाको प्राप्त होता है तब निज स्वरूपमें आत्मीक सुखसे तृप्त होता है. इसलिये कर्मजनित सुखदुःख विपाकक्रियाके वेदनसे रहित होता है। ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके जानेपर अनन्तज्ञान अनन्त दर्शनसे शुद्धचेतना-मयी होता है. इसकारण अतीन्द्रिय रसका आस्वादी होकर वाह्य पदार्थोंके रसको नहिं भोगता। और वही परमेश्वर अपने शुद्ध स्वरूपमें अखंडित चैतन्यस्वरूपमें प्रवर्त्ते है। इसकारण कथंचित्प्रकार अपने स्वरूपका ध्यानी भी है अर्थात् परद्रव्यसंयोगसे रहित आत्मस्वरूपध्यान नामको पाता है. इसकारण केवलीके भी उपचारमात्र स्वरूपअनुभवनकी अपेक्षा ध्यान कहा जाता है। पूर्ववंधे कर्म अपनी शक्तिकी कमीसे समय समय खिरते रहते हैं, इसकारण वही ध्यान निर्जराका कारण है। यह भावमोक्षका स्वरूप जानना।

आगें द्रव्यमोक्षका स्वरूप कहते हैं।

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि ।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥ १५३ ॥

संस्कृतछाया.

यः संवरेण युक्तो निर्जरन्नथसर्वकर्माणि ।
व्यपगतवेद्यायुष्को मुञ्चति भवं तेन स मोक्षः ॥ १५३ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो पुरुष [**संवरेण युक्तः**] आत्मानुभवरूप परमसंवरसे संयुक्त है [**अथ**] अथवा [**सर्वकर्माणि**] अपने समस्त पूर्वबन्धे कर्मोंको [**निर्जरन्**] अनुक्रमसे खपाता हुवा प्रवर्त्ते है। और जो पुरुष [**व्यपगतवेद्यायुष्कः**] दूर गया है वेदनीय नाम गोत्र आयु जिससे ऐसा है [**सः**] वह भगवान् परमेश्वर [**भवं**] अघातिकर्म सम्बन्धी संसारको [**मुञ्चति**] छोड देता है नष्ट कर देता है [**तेन मोक्षः**] तिसकारणसे द्रव्य मोक्ष कहा जाता है।

भावार्थ—इस केवली भगवानके भावमोक्ष होनेपर परमसंवर भाव होते हैं उनसे आगामी कालसंबन्धिनी कर्मकी परंपराका निरोध होता है। और पूर्वबंधे कर्मोंकी निर्जराका कारण ध्यान होता है उससे पूर्वकर्म संततिका किसी कालमें तो स्वभावहीसे अपना रस देकर खिरना होता है और किस ही काल समुद्घातविधानसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। और किस ही काल यदि वेदनी नाम गोत्र इन तीन कर्मोंकी स्थिति आयुकर्मकी स्थितिकी बराबर होय तब तो सब चार अघातिया कर्मोंकी स्थिति बराबर ही खिरके मोक्ष अवस्था होती है और जो आयुःकर्मकी स्थिति अल्प होय और वेदिनी नाम गोत्रकी बहुत होय तो समुद्घात करके स्थिति खिरके मोक्ष अवस्था होती है. इस प्रकार जीवसे अत्यंत सर्वथाप्रकार कर्मपुद्गलोंका वियोग होना, उसीका नाम द्रव्यमोक्ष है। इसप्रकार द्रव्यमोक्षका व्याख्यान पूर्ण हुवा और मोक्षमार्गके अंग सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके निमित्तभूत नवपदार्थोंका व्याख्यान भी पूरा हुवा।

आगें मोक्षमार्गका प्रपंच सूचनामात्र कहा जाता है सो प्रथम ही मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाया जाता है।

जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं॥ १५४॥

संस्कृतछाया.

जीवस्वभावं ज्ञानमप्रतिहतदर्शनमनन्यमयं।
चारित्रं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिन्दितं भणितं॥ १५४॥

पदार्थ—[**ज्ञानं**] यथार्थ वस्तुपरिच्छेदन [**अप्रतिहतदर्शनं**] यथार्थ वस्तुका अखंडित सामान्यावलोकन ये दोनों गुण [**अनन्यमयं**] चैतन्यस्वभावसे एक ही है [**जीवस्वभावं**] जीवका असाधारणलक्षण है. [**च तयोः**] और उन ज्ञान तथा दर्शनका [**नियतं**] निश्चित स्थिररूप [**अस्तित्वं**] अस्तिभाव जो है सो [**अनिन्दितं**] निर्मल [**चारित्रं**] आचरणरूप चारित्रगुण [**भणितं**] सर्वज्ञ वीतरागदेवने कहा है।

भावार्थ—जीवके स्वभाव भावोंकी जो थिरता है, उसका नाम चारित्र कहा जाता है वही चारित्र मोक्षमार्ग है। वे जीवके स्वाभाविक भाव ज्ञान दर्शन है और वे आत्मासें अभेद

और भेदस्वरूप है । एक चैतन्यभावकी अपेक्षा अभेद है. और वह ही एक चैतन्यभाव सामान्यविशेषकी अपेक्षा दो प्रकारका है. दर्शन सामान्य है ज्ञानका स्वरूप विशेष है. चेतनाकी अपेक्षा ये दोनों एक हैं. ये ज्ञानदर्शन जीवके स्वरूप हैं, इनका जो निश्चल थिर होना अपनी उत्पादव्ययध्रौव्य अवस्थासे और रागादिक परिणतिके अभावसे निर्मल होना उसका नाम चारित्र है वही मोक्षका मार्ग है । इस संसारमें चारित्र दो प्रकारका है । एक स्वचारित्र और दूसरा परचारित्र है । स्वचारित्रको स्वसमय और परचारित्रको परसमय कहते हैं । जो परमात्मामें स्थिरभाव सो तो स्वचारित्र है और जो आतमाका परद्रव्यमें लगनरूप थिरभाव सो परचारित्र है । इनमेंसे जो आत्मा भावोंमें थिरताकर लीन है, परभावसे परान्मुख हैं, स्वसमयरूप है सो साक्षात् मोक्षमार्ग जानना ।

आगें स्वसमयका ग्रहण परसमयका त्याग होय तब कर्मक्षयका द्वार होता है उससे जीवस्वभावकी निश्चल थिरताका मोक्षमार्गस्वरूप दिखाते हैं.

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥ १५५ ॥

संस्कृतछाया.

जीवः स्वभावनियतः अनियतगुणपर्यायोऽथ परसमयः ।
यदि कुरुते स्वकं समयं प्रभ्रस्यति कर्मबन्धात् ॥ १५५ ॥

पदार्थ—[**जीवः**] यद्यपि यह आत्मा [**स्वभावनियतः**] निश्चयकरकें अपने शुद्ध आत्मीक भावोंमें निश्चल है तथापि व्यवहारनयसे अनादि अविद्याकी वासनासे [**अनियतगुणपर्यायः**] परद्रव्यमें उपयोग होनेसे परद्रव्यकी गुणपर्यायोंमें रत है अपने गुणपर्यायोंमें निश्चल नहीं है ऐसा यह जीव [**परसमयः**] परचारित्रका आचरणवाला कहा जाता है । [**अथ**] फिर वही संसारी जीव काललब्धिपाकर [**यदि**] जो [**स्वकं समयं**] आत्मीक स्वरूपके आचरणको [**कुरुते**] करता है [**तदा**] तब [**कर्मबन्धात्**] द्रव्यकर्मके बन्ध होनेसे [**प्रभ्रस्यति**] रहित होता है ।

भावार्थ—यद्यपि यह संसारी जीव अपने निश्चित स्वभावसे ज्ञानदर्शनमें तिष्ठै है तथापि अनादि मोहनीय कर्मके वशीभूत होनेसे अशुद्धोपयोगी होकर अनेक परभावोंकों धारण करता है । इसकारण निजगुणपर्यायरूप नहिं परिणमता परसमयरूप प्रवर्त्तै है । इसीलिये परचारित्रके आचरनेवाला कहा जाता है । और वह ही जीव यदि कालपाकर अनादिमोहिनीयकर्मकी प्रवृत्तिको दूरकरकें अत्यन्त शुद्धोपयोगी होता है और अपने एक निजरूपको ही धारै है, अपने ही गुणपर्यायोंमें परिणमता है, स्वसमयरूप प्रवर्त्तै है तब आत्मीक चारित्रका धारक कहा जाता है । जो यह आत्मा किसीप्रकार निसर्ग अथवा अधिगमसे प्रगट हो सम्यग्ज्ञान ज्योतिर्मयी होता है, परसमयको त्याग कर स्वसमयको

अंगीकार करता है तब यह आत्मा अवश्य ही कर्मबन्धसे रहित होता है क्योंकि निश्चल भावोंके आचरणसे ही मोक्ष सधता है।

आगें परचारित्ररूप परसमयका स्वरूप कहा जाता है।

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥ १५६ ॥

संस्कृतछाया.

य: परद्रव्ये शुभमशुभं रागेण करोति यदि भावं।
स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरितचरो भवति जीवः ॥ १५६ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो अविद्या पिशाचीग्रहीत जीव [**परद्रव्ये**] आत्मीक वस्तुसे विपरीत परद्रव्यमें [**रागेण**] मदिरापानवत् मोहरूपभावसे [**यदि**] जो [**शुभं**] व्रत भक्ति संयमादि भाव अथवा [**अशुभं भावं**] विषयकषायादि असत भावको [**करोति**] करता है [**सः जीवः**] वह जीव [**स्वकचरित्रभ्रष्टः**] आत्मीक शुद्धाचरणसे रहित [**परचरितचरः**] परसमयका आचरणवाला [**भवति**] होता है।

भावार्थ—जो कोई पुरुष मोहकर्मके विपाकके वशीभूत होनेसे रागरूप परिणामोंसे अशुद्धोपयोगी होता है विकल्पी होकर परमें शुभाशुभ भावोंको करता है सो स्वरूपाचरणसे भ्रष्ट होकर परवस्तुका आचरण करता हुवा परसमयी है ऐसा महन्त पुरुषोंने कहा है। आगममें प्रसिद्ध है कि आत्मीकभावोंमें शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होना सो स्वसमय है और परद्रव्यमें अशुद्धोपयोग प्रवृत्ति होना सो परसमय है। यह अध्यात्मरसके आस्वादी पुरुषोंका विलास है।

आगें जो पुरुष परसमयमें प्रवर्त्ते है उसके वन्धका कारण है और मोक्षमार्गका निषेध है ऐसा कथन करते हैं।

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवंति ॥ १५७ ॥

संस्कृतछाया.

आस्रवति येन पुण्यं पापं वात्मनोऽथ भावेन।
स तेन परचरित्रः भवतीति जिनाः प्ररूपयन्ति ॥ १५७ ॥

पदार्थ—[**येन**] जिस [**भावेन**] अशुद्धोपयोगरूप परिणामसे [**आत्मनः**] कहिये संसारी जीवके [**पुण्यं**] शुभ [**अथ वा**] तथा [**पापं**] अशुभरूप कर्मवर्गणा [**आस्रवति**] आकर्षण होती है [**सः**] वह आत्मा [**तेन**] तिस अशुद्धभावसे [**परचरित्रः**] परसमयका आचरण करनेवाला [**भवति**] होता है [**इति**] इसप्रकार [**जिनाः**] सर्वज्ञदेव जे हैं ते [**प्ररूपयंति**] कहते हैं।

भावार्थ—निश्चयकरके इस लोकमें शुभोपयोगरूप भावपुण्यके आस्रवका कारण है और अशुभोपयोगरूप भावपापास्रवका कारण है सो जिन भावोंसे पुण्यरूप वा पापरूप कर्म आकर्षण होते हैं उनका नाम भाव आस्रव है । जिस जीवके जिससमय ये अशुद्धोपयोग भाव होते हैं उसकाल वह जीव उन अशुद्धोपयोग भावोंसे परद्रव्यका आचरणवाला होता है. इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि परद्रव्यके आचरणकी प्रवृत्तिरूप परसमय वंधका मार्ग है मोक्षमार्ग नहीं है । यह अर्हद्देवकथित व्याख्यान जानना ।

आगें स्वसमयमें विचरनेवाले पुरुषका स्वरूप विशेषतासे दिखाया जाता है ।

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण ।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥ १५८ ॥

संस्कृतछाया.

यः सर्वसङ्गमुक्तः अनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन ।
जानाति पश्यति नियतं सः स्वकचरितं चरति जीवः ॥ १५८ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो सम्यग्दृष्टी जीव [**स्वभावेन**] अपने शुद्धभावसे [**आत्मानं**] शुद्ध जीवको [**नियतं**] निश्चयकरके [**जानाति**] जानता है और [**पश्यति**] देखता है [**सः**] वह [**जीवः**] जीव [**सर्वसङ्गमुक्तः**] अन्तरंग वहिरंग परिग्रहसे रहित [**अनन्यमनाः सन्**] एकाग्रतासे चित्तके निरोधपूर्वक स्वरूपमें मगन होता हुवा [**स्वकचरितं**] स्वसमयके आचरणको [**चरति**] आचरण करता है ।

भावार्थ—आत्मस्वरूपमें निजगुणपर्यायके निश्चलस्वरूपमें अनुभवन करनेका नाम स्वसमय है और उसका ही नाम स्वचारित्र है ।

आगें शुद्ध स्वचारित्रमें प्रवृत्ति है उसका मार्ग दिखाते हैं ।

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा ।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥ १५९ ॥

संस्कृतछाया.

चरितं चरति स्वकं स यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा ।
दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पं चरत्यात्मनः ॥ १५९ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो पुरुष [**स्वकं चरितं**] अपने आचरणको [**चरति**] आचरता है [**सः**] वह पुरुष [**आत्मनः**] आत्माके [**दर्शनज्ञानविकल्पं**] दर्शन और ज्ञानके निराकार साकार अवस्थारूप भेदको [**अविकल्पं**] भेदरहित [**चरति**] आचरै है । कैसा है वह भेद विज्ञानी? [**परद्रव्यात्मभावरहितात्मा**] परद्रव्यमें अहंभावरहित है स्वरूप जिसका ऐसा है।

भावार्थ—जो वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी समस्त मोहचक्रसे रहित है और परभावोंका त्यागी होकर आत्मभावोंमें सन्मुख हुवा अधिकतासे प्रवर्त्तै है । आत्मद्रव्यमें स्वाभाविक जो

दर्शन ज्ञानका गुणभेद तिनको आत्मासे अभेदरूप जानकर आचरण करै है । ऐसा जो कोई जीव है उसीको स्वसमयका अनुभवी कहा जाता है । वीतरागसर्वज्ञने निश्चयव्यवहारके दो भेदसे मोक्षमार्ग दिखाया है. उन दोनोंमें निश्चय नयके अवलंबनसे शुद्धगुणगुणीका आश्रय लेकर अभेदभावरूप साध्यसाधनकी जो प्रवृत्ति है वही निश्चय मोक्षमार्ग प्ररूपणा कही जाती है । और व्यवहारनयाश्रित जो मोक्षमार्गप्ररूपणा है सो पहिले ही दो गाथावोंमें दिखाई गई हैं वे दो गाथायें ये हैं—

"संमत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं ।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धसुद्धीणं ॥ १ ॥
सम्मत्तं सद्दहणं भावाणां तेसिमधिगमो णाणं ।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं ॥ २ ॥"

इन गाथावोंमें जो व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप कहा गया है सो स्वद्रव्य परद्रव्यका कारण पाकर जो अशुद्धपर्याय उपजा है उसकी अधीनतासे भिन्न साध्यसाधनरूप है सो यह व्यवहार मोक्षमार्ग सर्वथा निषेधरूप नहीं है कथंचित् महापुरुषोंने ग्रहण किया है निश्चय और व्यवहारमें परस्पर साध्यसाधनभाव है । निश्चय साध्य है व्यवहार साधन है. जैसें सोना साध्य है और जिस पाषाणमेंसे सोना निकलता है वह पाषाण साधन है । इस सुवर्णपाषाणवत् व्यवहार है । जीव पुद्गलाश्रित है केवलसुवर्णवत् निश्चय है एक जीव द्रव्यहीका आश्रय है । अनेकांतवादी श्रद्धानी जीव इन दोनों निश्चयव्यवहाररूप मोक्षमार्गका ग्रहण करते हैं । क्योंकि इन दोनों नयोंके ही आधीन सर्वज्ञ वीतरागके धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति जानी गई है ।

आगें निश्चय मोक्षमार्गका साधनरूप व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाते हैं,—

धम्मादी[1] सद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं ।
चिट्ठा तवंहि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोत्ति ॥ १६० ॥

संस्कृतछाया.

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमङ्गपूर्वगतं ।
चेष्टा तपसि चर्या व्यवहारो मोक्षमार्ग इति ॥ १६० ॥

पदार्थ—[**धर्मादिश्रद्धानं**] धर्म अधर्म आकाश कालादिक समस्त द्रव्य वा पदार्थोंका श्रद्धान अर्थात् प्रतीति सो तो व्यवहार सम्यक्त्व है [**अङ्गपूर्वगतं**] ग्यारह अंग चवदह पूर्वमें प्रवर्त्तनेवाला जो ज्ञान है सो [**ज्ञानं**] व्यवहाररूप सम्यग्ज्ञान है । और [**तपसि**] बारह प्रकारके तप वा तेरह प्रकारके चारित्रमें [**चेष्टा**] आचरण करना सो [**चर्या**] व्यवहाररूप चारित्र है [**इति**] इसप्रकार [**व्यवहारः**] व्यवहारात्मक [**मोक्षमार्गः**] मोक्षका मार्ग कहा गया है ।

१ '**जीवादी सद्दहणं**' ऐसा पाठ भी है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता सो मोक्षमार्ग है। षट्द्रव्य पंचास्तिकाय सप्त तत्त्व नव पदार्थ इनका जो श्रद्धान करना सो सम्यक्त्व वा सम्यग्दर्शन है। द्वादशांगके अर्थका जानना सो सम्यग्ज्ञान है आचारादि ग्रन्थ-कथित यतिका आचरण सो सम्यक्चारित्र है। यह व्यवहारमोक्षमार्ग जीवपुद्गलके सम्बन्धका कारण पाकर जो पर्याय उत्पन्न हुवा है उसीके आधीन है। और साध्य भिन्न है साधन भिन्न है। साध्य निश्चय मोक्षमार्ग है साधन व्यवहार मोक्षमार्ग है। जैसें स्वर्णमय पाषाणमें दीप्यमान अग्नि जो है सो पाषाण और सोनेको भिन्न २ करती है तैसें ही जीवपुद्गलकी एकताके भेदका कारण व्यवहार मोक्षमार्ग है। जो जीव सम्यग्दर्शनादिकसे अन्तरंगमें सावधान है उस जीवके सब जगहँ उपरिके शुद्ध गुणस्थानोंमें शुद्धस्वरूपकी वृद्धिसे अतिशय मनोज्ञता है. उन गुणस्थानोंमें थिरताको धारण करै है ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग है। शुद्ध जीवको किसी एक भिन्न साध्यसाधनभावकी सिद्धि है क्योंकि अपने ही उपादान कारणसे स्वयमेव निश्चय मोक्षमार्गकी अपेक्षा शुद्ध भावोंसे परिणमता है वहां यह व्यवहार निमित्तकारणकी अपेक्षा साधन कहा गया है। जैसें सोना यद्यपि अपने शुद्ध पीतादि गुणोंसे प्रत्येक आंचमें शुद्ध चोखी अवस्थाको धरै है तथापि वहिरंग निमित्त कारण अग्नि आदिक वस्तुका प्रयत्न है तैसें ही व्यवहारमोक्षमार्ग है।

आगें व्यवहारमोक्षमार्गसे साधिये ऐसा जो निश्चय मोक्षमार्ग, तिसका स्वरूप दिखाया जाता है।

णिच्चयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो।
अप्पा ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गोत्ति॥१६१॥

संस्कृतछाया.

निश्चयनयेनभणितस्त्रिभिस्तैः समाहितः खलु यः।
आत्मा न करोति किंचिदप्यन्यन् न मुञ्चति स मोक्षमार्ग इति॥ १६१॥

पदार्थ—[**निश्चयनयेन**] निश्चयनयसे [**तैः त्रिभिः**] उन तीन निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकर [**समाहितः**] परमरसीभावसंयुक्त [**यः**] आत्मा जो यह आत्मा [**खलु**] निश्चयकर [**भणितः**] कहा गया है सो यह आत्मा [**अन्यत्**] अन्य परद्रव्यको [**किञ्चिदपि**] कुछ भी [**न करोति**] नहिं करता है [**न मुञ्चति**] और न आत्मीक स्वभावको छोडता है [**सः आत्मा**] वह आत्मा [**मोक्षमार्गः इति**] मोक्षका मार्गरूप ही है इसप्रकार सर्वज्ञ वीतरागने कहा है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रसे आत्मीकस्वरूपमें सावधान होकर जब आत्मीक स्वभावमें ही निश्चित विचरण करता है तब इसके निश्चय मोक्षमार्ग कहा जाता है जो आपहीसे निश्चय मोक्षमार्ग होय तो व्यवहारसाधन किसलिये कहा? ऐसी शंकापर

समाधान है कि यह आत्मा असद्भूतव्यवहारकी विवक्षासे अनादि अविद्यासे युक्त है. जब काललब्धिपानेसे उसका नाश होय उस समय व्यवहार मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति नहीं है मिथ्याज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचारित्र इस अज्ञानरत्नत्रयके नाशका उपाय यथार्थ तत्त्वोंका श्रद्धान द्वादशांगका ज्ञान यथार्थ चारित्रका आचरण इस सम्यक् रत्नत्रयके ग्रहण करनेका विचार होता है इस विचारके होनेपर जो अनादिका ग्रहण था उसका तो त्याग होता है और जिसका त्याग था उसका ग्रहण होता है. तत्पश्चात् कभी आचरणमें दोष होय तो दंडशोधनादिकर उसे दूर करते हैं और जिस कालमें विशेष शुद्धात्मतत्त्वका उदय होता है तब स्वाभाविक निश्चय दर्शन ज्ञान चारित्र इनसे गुण गुणीके भावकी परिणतिद्वारा अडोल (अचल) होता है । तब ग्रहणत्यजनकी बुद्धि मिट जाती है परमशान्तिसे विकल्परहित होता है उस समय अतिनिश्चल भावसे यह आत्मा स्वरूपगुप्त होता है । जिसकाल यह आत्मा स्वरूपका आचरण करता है तब यह जीव निश्चय मोक्षमार्गी कहाता है. इसीकारण ही निश्चयव्यवहाररूपमोक्षमार्गको साध्यसाधनभावकी सिद्धि होती है ।

अब आत्माके चारित्र ज्ञान दर्शनका उद्योत कर दिखाते हैं ।

जो चरदि णादि पिच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं ।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्चिदो होदि ॥ १६२ ॥

संस्कृतछाया.

यश्चरति जानाति पश्यति आत्मानमात्मनानन्यमयं ।
स चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति निश्चितो भवति ॥ १६२ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो पुरुष [**आत्मना**] अपने निजस्वरूपसे [**आत्मानं**] आपको [**अनन्यमयं**] ज्ञानादि गुणपर्यायोंसे अभेदरूप [**चरति**] आचरण करता है [**जानाति**] जानता है [**पश्यति**] श्रद्धान करता है [**सः**] सो पुरुष [**चारित्रं**] आचरण गुण [**ज्ञानं**] जानना [**दर्शनं**] देखना [**इति**] इसप्रकार द्रव्यसे नामसे अभेदरूप [**निश्चितः**] निश्चय करकें स्वयं दर्शनज्ञानचारित्ररूप [**भवति**] होता है ।

भावार्थ—निश्चयकरके जो पुरुष आपकेद्वारा आपको अभेदरूप आचरण करै है क्योंकि अभेदनयसे आत्मा गुणगुणीभावसे एक है. अपने शरीरकी निश्चलताई अस्तिरूप प्रवर्त्तै है और अन्यकारणके विना आप ही आपको जानता है स्वपरप्रकाश चैतन्यशक्तिके द्वारा अनुभवी होता है और आपहीकेद्वारा यथार्थ देखै है सो आत्मनिष्ठ भेदविज्ञानी पुरुष आप ही चारित्र है आप ही ज्ञान है आप ही दर्शन है. इसप्रकार गुणगुणीभेदसे आत्मा कर्त्ता है ज्ञानादि कर्म हैं. शक्ति करण है इनका आपसमें नियमकर अभेद है. इसकारण

यह बात सिद्ध हुई कि चारित्र ज्ञानदर्शनरूप आत्मा है. जो यह आत्मा जीवस्वभावमें निश्चल होकर आत्मीकभावको आचरण करै तो निश्चय मोक्षमार्ग सर्वथाप्रकार सिद्ध होता है ।

आगें समस्त ही संसारी जीवोंके मोक्षमार्गकी योग्यताका निषेध दिखाते हैं ।

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि ।
इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥ १६३ ॥

संस्कृतछाया.

येन विजानाति सर्वं पश्यति स तेन सौख्यमनुभवति ।
इति तज्जानाति भव्योऽभव्यसत्त्वो न श्रद्धत्ते ॥ १६३ ॥

पदार्थ—[**येन**] जिस कारणसे [**सर्वं**] समस्तज्ञेय मात्र वस्तुको [**विजानाति**] जानै है [**'सर्वं'**] समस्त वस्तुवोंको [**पश्यति**] देखै है अर्थात् ज्ञानदर्शनकर संयुक्त है [**सः**] वह पुरुष [**तेन**] तिस कारणसे [**सौख्यं**] अनाकुल अनन्त मोक्षसुखको [**अनुभवति**] अनुभवै है । [**इति**] इसप्रकार [**भव्यः**] निकट भव्यजीव [**तत्**] उस अनाकुल पारमार्थिक सुखको [**जानाति**] उपादेयरूप श्रद्धान करै है और अपने २ गुणस्थानानुसार जानै भी है। भावार्थ– जो स्वाभाविक भावोंके आवरणके विनाश होनेसे आत्मीक शान्तरस उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं । आत्माके स्वभाव ज्ञान दर्शन हैं. इनके आवरणसे आत्माको दुःख है. जैसें पुरुषके नखसिख वढनेसे दुःख होता है उसी प्रकार आवरणके होनेसे दुःख होता है. मोक्षअवस्थामें उस आवरणका अभाव होता है, इसकारण मुक्तजीव सबका देखनेहारा जाननेहारा है और यह वात भी सिद्ध हुई कि निराकुल परमार्थ आत्मीकसुखका अनुभवन मोक्षमें ही निश्चल है और जगहँ नहीं है. ऐसा परम भावका श्रद्धान भी भव्य सम्यग्दृष्टी जीवमें ही होता है । इसकारण भव्य ही मोक्षमार्गी होने योग्य है [**अभव्यसत्त्वः**] त्रैकालिक आत्मीकभावकी प्रतीति करनेके योग्य नहीं ऐसा जीव आत्मीक सुखको [**न श्रद्धत्ते**] नहिं सरदहै है जानै भी नहीं है ।

भावार्थ—उस आत्मीक सुखका श्रद्धान करनहारा अभव्य नहीं है क्योंकि मोक्षमार्गके साधनेकी अभव्य मिथ्यादृष्टी योग्यता नहिं रखता । इसकारण यह वात सिद्ध हुई कि केई संसारी भव्यजीव अर्थात् मोक्षमार्गके योग्य हैं केई नहीं भी हैं ।

आगें सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रको किसीप्रकार सरागअवस्थामें आचार्यने वन्धका भी प्रकार दिखाया है इसकारण जीवस्वभावमें निश्चित जो आचरण है उसको मोक्षका कारण दिखाते हैं.

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोऽत्ति सेविदव्वाणि ।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥ १६४ ॥

संस्कृतछाया.

दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि ।
साधूभिरिति भणितं तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥ १६४ ॥

पदार्थ—[**दर्शनज्ञानचारित्राणि**] दर्शन ज्ञान और चारित्र ये तीन रत्नत्रय [**मोक्षमार्गः**] मोक्षमार्ग है [**इति**] इसकारण [**सेवितव्यानि**] सेवने योग्य है। [**साधुभिः**] महापुरुषोंद्वारा [**इति**] इसप्रकार [**भणितं**] कहा गया है [**तैः तु**] उन ज्ञानदर्शन चारित्रकेद्वारा तो [**बन्धः वा**] बन्ध भी होता है [**मोक्षः वा**] मोक्ष भी होता है।

भावार्थ—दर्शन ज्ञानचारित्र दो प्रकारके हैं एक सराग है एक वीतराग है। जो दर्शनज्ञानचारित्र रागलिये होते हैं उनको तो सराग रत्नत्रय कहते हैं और जो आत्मनिष्ठ वीतरागतालिये होंय वे वीतराग रत्नत्रय कहाते हैं । क्योंकि रागभाव आत्मीक भावरहित परभाव है परसमयरूप है, इसलिये जो रत्नत्रय किंचिन्मात्र भी परसमयप्रवृत्तिसे मिले होंय तो वे बन्धके कारण होते हैं क्योंकि इनमें कथंचित्प्रकार विरुद्धकारणकी रूढि होती है रत्नत्रय तो मोक्षका ही कारण है परन्तु रागके संयोगसे बन्धका कारण भी होता है ऐसी रूढि है। जैसें अग्निके संयोगसे घृत दाहका कारण होकर विरुद्ध कार्य करता है स्वभावसे तो घृत शीतल ही है, इसीप्रकार रागके संयोगसे रत्नत्रय बंधका कारण है । जिस काल समस्त परसमयकी निवृत्ति होकर स्वसमयरूप स्वरूपमें प्रवृत्ति होय उस समय अग्निसंयोगरहित घृत, दाहादि विरुद्ध कार्योंका कारण नहिं होता. तैसें ही रत्नत्रय सरागताके अभावसे साक्षात् मोक्षका कारण होता है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि जब यह आत्मा स्वसमयमें प्रवर्त्तै निजस्वाभाविक भावको आचरै उस ही समय मोक्षमार्गकी सिद्धि होती है।

आगें सूक्ष्म परसमयका स्वरूप कहा जाता है।

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो ।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो ॥ १६५ ॥

संस्कृतछाया.

अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्धसंप्रयोगात् ।
भवतीति दुःखमोक्षः परसमयरतो भवति जीवः ॥ १६५ ॥

पदार्थ—[**ज्ञानी**] सरागसम्यग्दृष्टी जीव [**अज्ञानात्**] अज्ञानभावसे [**यदि**] जो [**इति**] ऐसा [**मन्यते**] मानै कि—[**शुद्धसंप्रयोगात्**] शुद्ध जो अरहंतादिक तिनमें लगन अति धर्मरागप्रीतिरूप शुभोपयोगसे [**दुःखमोक्षः**] सांसारिक दुःखसे मुक्ति [**भवति**] होती है [**तदा**] उस समय [**जीवः**] यह आत्मा [**परसमयरतः**] परसमयमें अनुरक्त [**भवति**] होता है।

भावार्थ—अरहन्तादिक जो मोक्षके कारण हैं उन भगवंत परमेष्ठीमें भक्तिरूप राग अंशकर जो रागलिये चित्तकी वृत्ति होय, उसका नाम शुद्धसम्प्रयोग कहा जाता है परन्तु

भगवन्त वीतरागदेवकी अनादि वाणीमें इसको भी शुभरागांशरूप अज्ञानभाव कहा है. इस अज्ञानभावके होते संते जितने कालतांई यद्यपि यह आत्मा ज्ञानवंत भी है तथापि शुद्ध सम्प्रयोगसे मोक्ष होती है ऐसे परभावोंसे मुक्त माननेके अभिप्रायसे खेद खिन्न हुवा प्रवर्त्तै है तब तितने काल वह ही राग अंशके अस्तित्वके परसमयमें रत है, ऐसा कहा जाता है और जिस जीवके विषयादिकके राग अंशकर कलंकित अन्तरंगवृत्ति होती है, वह तो परसमयरत है ही उसकी तो वात ही न्यारी है क्योंकि जिस मोक्षमार्गमें धर्मराग निषेध है वहां निरर्गल रागका निषेध सहजमें ही होता है।

आगें उक्त शुभोपयोगताको कथंचित् वन्धका कारण कहा इसकारण मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा कथन करते हैं।

अरहन्तसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो।
वंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥ १६६ ॥

संस्कृतछाया.

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः।
वध्नाति पुण्यं वहुशो न तु स कर्मक्षयं करोति ॥ १६६ ॥

पदार्थ—[**अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः**] अरहंत सिद्ध चैत्यालय प्रतिमा प्रवचन कहिये सिद्धान्त मुनिसमूह भेदविज्ञानादि ज्ञान इनकी जो भक्ति स्तुति सेवादिकसे परिपूर्ण प्रवीण है जो पुरुष सो [**बहुशः**] वहुतप्रकार वा बहुत वार [**पुण्यं**] अनेकप्रकारके शुभकर्मको [**वध्नाति**] वांधै है [**तु सः**] किंतु वह पुरुष [**कर्मक्षयं**] कर्मक्षयको [**न**] नहिं [**करोति**] करै है।

भावार्थ—जीस जीवके चित्तमें अरहन्तादिककी भक्ति होय उस पुरुषके कथंचित् मोक्षमार्ग भी है परन्तु भक्तिके रागांशकर शुभोपयोग भावोंको छोडता नहीं, वन्धपद्धतिका सर्वथा अभाव नहीं है. इसकारण उस भक्तिके रागांशकरके ही वहुतप्रकार पुण्य कर्मोंको वांधता है किन्तु सकलकर्मक्षयको नहिं करै है. इसकारण मोक्षमार्गियोंको चाहिये कि भक्तिरागकी कणिका भी छोडै क्योंकि यह परसमयका कारण है परंपराय मोक्षको कारण है साक्षात् मोक्षमार्गको घातै है इसकारण इसका निषेध है।

आगें इस जीवके स्वसमयकी जा प्राप्ति नहिं होती उसका राग ही एक कारण है ऐसा कथन करते हैं।

जस्स हिदयेणुमत्तं वा परदव्वं हि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि ॥ १६७ ॥

संस्कृतछाया.

यस्य हृदयेऽणुमात्रो वा परद्रव्ये विद्यते रागः।
स न विजानाति समयं स्वकस्य सर्वागमधरोऽपि ॥ १६७ ॥

पदार्थ—[**वा**] अथवा [**यस्य**] जिस पुरुषके [**हृदये**] चित्तमें [**अणुमात्रः**] परमाणु मात्र भी [**परद्रव्ये**] पुद्गलादि परद्रव्योंमें [**रागः**] प्रीतिभाव [**विद्यते**] प्रवर्त्ते है [**सः**] वह पुरुष [**सर्वागमधरः अपि**] यद्यपि समस्त श्रुतका पाठी है तथापि [**स्वकस्य**] आत्माके [**समयं**] यथार्थरूपको [**न**] नहीं [**विजानाति**] जाने है।

भावार्थ—जिस पुरुषके चित्तमें आत्मीकभावरहित परभावोंमें रागकी कणिका भी विद्यमान है वह पुरुष समस्त सिद्धान्तशास्त्रोंको जानता हुवा भी सर्वांग वीतराग शुद्धस्वरूप स्वसमयको नहिं वेदै है. इसकारण यथार्थ शुद्धस्वरूपकी सिद्धिनिमित्त अरहंतादिकमें भी क्रमसे राग छोडना योग्य है।

आगें राग अंशका कारण पाय अनेक दोषोंकी परंपराय होती है ऐसा कथन करते हैं।

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स॥ १६८॥

संस्कृतछाया.

धर्तुं यस्य न शक्यश्चित्तोद्भ्रामं विनात्वात्मानं।
रोधस्तस्य न विद्यते शुभाशुभकृतस्य कर्मस्य॥ १६८॥

पदार्थ—[**तु**] और[**यस्य**] जिस पुरुषका [**चित्तोद्भ्रामं**] मनका संकल्परूप भ्रामकत्व जो है सो [**आत्मानं विना**] आत्माके विना [**धर्तुं**] निरोध करनेको [**शक्यः न**] समर्थ नहीं होता। **तस्य**] उस पुरुषके [**शुभाशुभकृतस्य**] शुभाशुभभावोंसे कियेहुये [**कर्मणः**] कर्मका [**रोधः**] संवर [**न विद्यते**] नहीं है।

भावार्थ—अरहन्तादिककी भक्ति भी प्रशस्त रागके विना नहिं होती और जो रागादिक भावकी प्रवृत्ति होती है और जो बुद्धिका विस्तार नहिं होय तो यह आत्मा उस भक्तिको किसीप्रकार धारण करनेमें समर्थ नहीं है क्योंकि बुद्धिके विना भक्ति नहीं है तथा रागभावके विना भी भक्ति नहीं है इसकारण इस जीवके रागादिगर्भित बुद्धिका विस्तार होता है. तव इसके अशुद्धोपयोग होता है. उस अशुद्धोपयोगके कारणसे शुभाशुभका आस्रव होता है इसीकारण वन्धपद्धति है. और इसीसे यह वात सिद्ध हुई कि शुभअशुभ गतिरूप संसारके विलासका कारण एकमात्र रागादि संक्लेशरूप विभाव परिणाम ही हैं।

आगें संक्लेशका समस्त नाश करनेका कार्य (उपाय) वताते हैं।

तह्मा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि॥ १६९॥

संस्कृतछाया.

तस्मान्निवृत्तिकामो निसङ्गो निर्ममत्वश्च भूत्वा पुनः।
सिद्धेषु करोति भक्तिं निर्वाणं तेन प्राप्नोति॥ १६९॥

पदार्थ—[**तस्मात्**] जिस्से रागका निषेध है उस कारणसे [**निवृत्तिकामः**] जो

मोक्षका अभिलाषी जीव है सो [पुनः] फिर [सिद्धेषु] विभाव भावसे रहित परमात्मा भावोंमें [भक्तिं] परमार्थभूत अनुरागताको [करोति] करता है. क्या करकें स्वरूपमें गुप्त होता है [निःसङ्गः] परिग्रहसेरहित [च] और [निर्म्ममः] परद्रव्यमें ममता भावसे रहित [भूत्वा] हो करकें [तेन] उस कारणसे [निर्वाणं] मोक्षको [प्राप्नोति] पाता है।

भावार्थ—संसारमें इस जीवके जब रागादिक भावोंकी प्रवृत्ति होती है तब अवश्य ही संकल्प विकल्पोंसे चित्तकी भ्रामकता हो जाती है. जहां चित्तकी भ्रामकता होती है तहां अवश्यमेव ज्ञानावरणादिक कर्मोंका बन्ध होता है, इससे मोक्षाभिलाषी पुरुपको चाहिये कि कर्मबन्धका जो मूलकारण संकल्प विकलपरूप चित्तकी भ्रामकता है उसके मूलकारण रागादिक भावोंकी प्रवृत्तिको सर्वथा दूर करै। जब इस आत्माके सर्वथा रागादिककी प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है तब यह ही आत्मा सांसारिक परिग्रहसे रहित हो निर्ममत्वभावको धारण करता है। तत्पश्चात् आत्मीक शुद्धस्वरूप स्वाभाविक निजस्वरूपमें लीन ऐसी परमात्मसिद्धपदमें भक्ति करता है तब उस जीवके स्वसमयकी सिद्धि कही जाती है. इस ही कारण जो सर्वथाप्रकार कर्मबन्धसे रहित होता है वही मोक्षपदको प्राप्त होता है. जवतक रागभावका अंशमात्र भी होगा तबतक वीतरागभाव प्रगट नहिं होता, इसकारण सर्वथा प्रकारसे रागभाव त्याज्य है।

आगें अरहन्तादिक परमेष्ठिपदोंमें जो भक्तिरूप परसमयमें प्रवृत्ति है उससे साक्षात् मोक्षका अभाव है तथापि परंपरायकर मोक्षका कारण है ऐसा कथन करते हैं।

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपओत्तस्स॥ १७०॥

संस्कृतछाया.

सपदार्थं तीर्थकरमभिगतबुद्धेः सूत्ररोचिनः।
दूरतरं निर्वाणं संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य॥ १७०॥

पदार्थ—[सपदार्थं] नवपदार्थसहित [तीर्थकरं] अरहन्तादिक पूज्य परमेष्ठीमें [अभिगतबुद्धेः] रुचिलिये श्रद्धारूप बुद्धि है जिसकी ऐसा जो पुरुप है उसको [निर्वाणं] सकल कर्मरहित मोक्षपद [दूरतरं] अतिशय दूर होता है। कैसा है वह पुरुप जो नव पदार्थ पंचपरमेष्टीमें भक्ति करता है? [सूत्ररोचिनः] सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत सिद्धान्तका श्रद्धानी है फिर कैसा है? [संयमतपःसंप्रयुक्तस्य] इन्द्रियदंडन और घोर उपसर्गरूप तपसे संयुक्त है।

भावार्थ—जो पुरुप मोक्षके निमित्त उद्यमी हुवा प्रवर्त्ते है और मनसे अगोचर जिन्होंने संयम तपका भार लिया है अर्थात् अंगीकार किया है तथा परमवैराग्यरूपी भूमिकामें चढनेकी है उत्कृष्ट शक्ति जिनमें ऐसा है, विषयानुराग भावसे रहित है तथापि प्रशस्त रागरूप परसमयकर संयुक्त है। उस प्रशस्त रागके संयोगसे नवपदार्थ तथा पंचपरमेष्टीमें भक्तिपूर्वक

प्रतीति श्रद्धा उपजती है, ऐसे परसमयरूप प्रशस्त रागको छोड नहिं शक्ता । जैसें रुई धुनने हारा पुरुष (धुनिया) रुई धुनते धुनते पीजनीमें जो लगी हुई रूई है उसको दूरकरनेके भय संयुक्त है. तैसें राग दूर नहिं होता. इसकारण ही साक्षात् मोक्षपदको नहिं पाता । जब ऐसा है तो उसकी गति किसप्रकार होती है? प्रथम ही तो देवादि गतियोंमें संक्लेश प्राप्तिकी परंपराय होती है, तत्पश्चात् मोक्षपदको प्राप्त होता है क्योंकि परंपराय इस सूक्ष्मपर समयसे भी मोक्ष सधती है ।

आगें फिर भी अरहन्तादिक पंचपरमेष्ठीमें भक्तिस्वरूप जो प्रशस्त राग है उससे मोक्षका अन्तराय दिखाते हैं ।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण ।
जो कुणदि तवो कम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥ १७१ ॥

संस्कृतछाया.

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः परेण नियमेन ।
यः करोति तपःकर्म स सुरलोकं समादत्ते ॥ १७१ ॥

पदार्थ—[**यः**] जो पुरुष [**अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः**] अरहन्त सिद्ध जिन विंव और शास्त्रोंमें जो भक्तिभावसंयुक्त [**परेण नियमेन**] उत्कृष्ट संयमके साथ [**तपःकर्म**] तपस्यारूप करतूतिको [**करोति**] करता है [**सः**] वह पुरुष [**सुरलोकं**] स्वर्गलोकको ही [**समादत्ते**] अंगीकार करता है ।

भावार्थ—जो पुरुष निश्चयकरकें अरहन्तादिककी भक्तिमें सावधानवुद्धि करता है और उत्कृष्ट इन्द्रियदमनसे शोभायमान परमप्रधान अतिशय तीव्रतपस्या करता है सो पुरुष उतना ही अरहन्तादिक तपरूप प्रशस्तरागमात्र क्लेशकलंकित अन्तरंगभावोंसे भावितचित्त होकर साक्षात् मोक्षको नहिं पाता किन्तु मोक्षका अन्तराय करन हारे स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं. उस स्वर्गमें वही जीव सर्वथा अध्यात्म रसके अभावसे इन्द्रियविषयरूप विषवृक्षकी वासनासे मोहित चित्तवृत्तिको धरता हुवा वहुत कालपर्यन्त सरागभावरूप अंगारोंसे दह्यमान हुवा वहुत ही खेदखिन्न होता है ।

आगें साक्षात् मोक्षमार्गका सार दिखानेकेलिये इस शास्त्रका तात्पर्य्य संक्षेपतासे दिखाते हैं।

तह्मा णिव्वुदिकामो रागं सवत्थ कुणदि मा किंचि ।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि ॥ १७२ ॥

संस्कृतछाया.

तस्मान्निवृत्तिकामो रागं सर्वत्र करोतु मा किञ्चित् ।
स तेन वीतरागो भव्यो भवसागरं तरति ॥ १७२ ॥

पदार्थ—[**तस्मात्**] जिस्से कि राग भावों कर स्वर्गादि सांसारिक सुख उत्पन्न होते है तिसकारणसे [**निवृत्तिकामः**] मुक्त होनेका इच्छुक [**सर्वत्र**] सब जगहँ अर्थात्

शुभाशुभ अवस्थावोंमें [**किञ्चित्**] कुछ भी [**रागं**] रागभाव [**मा करोतु**] मत करो। [**तेन**] जिससे [**सः**] वह जीव [**वीतरागः**] सरागभावोंसे रहित होता संता [**भव्यः**] मोक्षावस्थाके निकटवर्ती होकर [**भवसागरं**] संसाररूपी समुद्रको [**तरति**] तर जाता है अर्थात् संसारसमुद्रसे पार हो जाता है।

भावार्थ—जो साक्षात् मोक्षमार्गका कारण होय सो वीतराग भाव है सो अरहन्तादिकमें जो भक्ति है वा राग है वह स्वर्ग लोकादिकके क्लेशकी प्राप्ति करके अन्तरंगमें अतिशय दाहको उत्पन्न करै है कैसे हैं ये धर्म राग जैसें चंदनवृक्षमें लगी अग्नि पुरुषको जलाती है. यद्यपि चंदन शीतल है अग्निके दाहका दूर करनेवाला है, तथापि चंदनमें प्रविष्टहुई अग्नि आताप को उपजाती है. इसीप्रकार धर्मराग भी कथंचित् दुःखका उत्पादक है. इसकारण धर्मराग भी हेय (त्यागने योग्य) जानना। जो कोई मोक्षका अभिलाषी महाजन है सो प्रथम ही विषयरागका त्यागी हो हु. अत्यन्त वीतराग होयकर संसारसमुद्रके पार जावहु। जो संसारसमुद्र नानाप्रकारके सुखदुखरूपी कल्लोलोंकेद्वारा आकुल व्याकुल है. कर्मरूप बाडवाग्निकर बहुत ही भयको उपजाता अति दुस्तर है. ऐसे संसारके पार जाकर परममुक्त अवस्थारूप अमृतसमुद्रमें मग्न होय कर तत्काल ही मोक्षपदको पाते हैं. बहुत विस्तार कहांतक किया जाय, जो साक्षात् मोक्षमार्गका प्रधान कारण है समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य है ऐसा जो वीतरागभाव सो ही जयवन्त होहु। सिद्धान्तोंमें दो प्रकारका तात्पर्य दिखाया है. एक सूत्रतात्पर्य एक शास्त्रतात्पर्य जो परंपराय सूत्ररूपसे चला आया होय सो तो सूत्रतात्पर्य है और समस्तशास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागभाव हैं. क्योंकि उस जिनेन्द्रप्रणीत शास्त्रकी उत्तमता यह है कि चार पुरुषार्थोंमेंसे मोक्ष पुरुषार्थप्रधान है. उस मोक्षकी सिद्धिका कारण एकमात्र वीतरागप्रणीत शास्त्र ही हैं क्योंकि षड्द्रव्य पंचास्तिकायके स्वरूपके कथनसे जब यथार्थ वस्तुका स्वभाव दिखाया जाता है तब सहजही मोक्षनामापदार्थ सधता है. यह सब कथन शास्त्रमें ही है. नव पदार्थोंके कथन कर प्रगट किये हैं। बंधमोक्षका सम्बन्ध पाकर बन्धमोक्षके ठिकाने और बन्धमोक्षके भेद, स्वरूप सब शास्त्रोंमें ही दिखाये गये हैं और शास्त्रोंमें ही निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गको भले प्रकार दिखाया गया है और जिनशास्त्रोंमें वर्णन कियेहुये मोक्षके कारण जो परम वीतराग भाव हैं, उनसे शान्तचित्त होता है. इसकारण उस परमागमका तात्पर्य वीतरागभाव ही जानना. सो यह वीतरागभाव व्यवहारनिश्चयनयके अविरोधकर जब भले प्रकार जाना जाता है तब ही प्रगट होता है और वांछित सिद्धिका कारण होता है. अन्यप्रकारसे नहीं।

आगें निश्चय और व्यवहारनयका अविरोध दिखाते हैं. जो जीव अनादि कालसे लेकर भेदभावकरवासितबुद्धि हैं. वे व्यवहार नयावलंबी होकर भिन्न साध्यसाधनभावको अंगीकार करते हैं तब सुखसें पारगामी होते हैं. प्रथम ही जे जीव ज्ञानअवस्थामें रहने-

वाले हैं वे तीर्थ कहाते हैं. तीर्थसाधनभाव जहां है तीर्थफल शुद्ध सिद्धअवस्था साध्यभाव है. तीर्थ क्या है सो दिखाते हैं,—जिन जीवोंके ऐसे विकल्प होंहि कि यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य है, यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य नहीं है, श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है, यह श्रद्धान है, इसका नाम अश्रद्धान है, यह वस्तु जानने योग्य है, यह नहिं जानने योग्य है, यह स्वरूप ज्ञाताका है, यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह आचरने योग्य है, यह वस्तु आचरने योग्य नहीं है, यह आचारमयी भाव हैं, यह आचरण करनेवाला है, यह चारित्र है, ऐसें अनेकप्रकारके करने न करनेके कर्त्ताकर्मके भेद उपजते हैं, उन विकल्पोंके होतेहुये उन पुरुष तीर्थोंको सुदृष्टिके बढावसे वारंवार उन पूर्वोक्त गुणोंके देखनेसे प्रगट उल्लासलिये उत्साह बढै है । जैसें द्वितीयाके चंद्रमाकी कला बढती जाती है, तैसें ही ज्ञानदर्शनचारित्ररूप अमृतचंद्रमाकी कलावोंका कर्तव्याकर्त्तव्य भेदोंसे उन जीवोंके बढवारी होती है । फिर उन ही जीवोंके शनैः शनैः (होलै होलै) मोहरूप महामल्लका मूल सत्तासे विनाश होता है । किस ही एक कालमें अज्ञानताके आवेशतैं प्रमादकी आधीनतासे उनही जीवोंके आत्मधर्मकी सिथिलता है. फिर आत्माको न्यायमार्गमें चलानेकेलिये आपको प्रचण्ड दंड देते हैं । शास्त्रन्यायसे फिर ये ही जिनमार्गी वारंवार जैसा कुछ रत्नत्रयमें दोष लगा होय उसीप्रकार प्रायश्चित्त करते हैं. फिर निरन्तर उद्यमी रहकर अपनी आत्माको जो आत्मस्वरूपसे भिन्नस्वरूप श्रद्धानज्ञानचारित्ररूप व्यवहाररत्नत्रयसे शुद्धता करते हैं. जैसें मलीन वस्त्रको धोवी भिन्न साध्यसाधनभावकर सिलाके उपरि सावन आदि सामग्रियोंसे उज्वल करता है तैसें ही व्यवहारनयका अवलम्ब पाय भिन्न साध्यसाधनभावकेद्वारा गुणस्थान चढनेकी परपाटीके क्रमसे विशुद्धताको प्राप्त होता है । फिर उन ही मोक्षमार्ग साधक जीवोंके निश्चयनयकी मुख्यतासे भेदस्वरूप परअवलंबी व्यवहारमयी भिन्न साध्यसाधनभावका अभाव है. इसकारण अपने दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपविषै सावधान होकर अन्तरंग गुप्त अवस्थाको धारण करता है । और जो समस्त वहिरंग योगोंसे उत्पन्न है क्रियाकांडका आडम्बर, तिनसे रहित निरंतर संकल्प विकल्पोंसे रहित परम चैतन्य भावोंके द्वारा सुंदर परिपूर्ण आनंदवंत भगवान् परब्रह्म आत्मामें स्थिरताको करै है ऐसे जे पुरुष हैं, वे ही निश्चयावलम्बी जीव हैं. व्यवहारनयसे अविरोधी क्रमसे परम समरसीभावके भोक्ता होते हैं. तत्पश्चात् परम वीतरागपदको प्राप्त होयकर साक्षात् मोक्षावस्थाके अनुभवी होते हैं । यह तो मोक्षमार्ग दिखाया. अब जे एकान्तवादी हैं मोक्षमार्गसे पराङ्मुख हैं उनका स्वरूप दिखाया जाता है.—जो जीव केवलमात्र व्यवहारनयका ही अवलंबन करते हैं उन जीवोंके परद्रव्यरूप भिन्न साध्यसाधनभावकी दृष्टि है स्वद्रव्यरूप निश्चयनयात्मक अभेदसाध्यसाधनभाव नहीं है. अकेले व्यवहारसे खेदखिन्न हैं. वारंवार परद्रव्यस्वरूप धर्मादिक पदार्थोंमें श्रद्धानादिक अनेक

प्रकारकी बुद्धि करता है बहुत द्रव्यश्रुतके पठनपाठनादि संस्कारसे नानाप्रकारके विकल्प जालोंसे कलंकित अन्तरंगवृत्तिको धारण करते हैं. अनेकप्रकार यतिका द्रव्यलिंग, जिन वहिरंगव्रत तपस्यादिक कर्मकांडोंके द्वारा होता है उनका ही अवलंबन कर स्वरूपसे भ्रष्ट हुवा है दर्शनमोहके उदयसे व्यवहार धर्मरागके अंशकर किस ही काल पुण्यक्रियामें रुचि करता है किस ही कालमें दयावन्त होता है किस ही कालमें अनेक विकल्पोंको उपजाता है किसी कालमें कुछ आचरण करता है किसही काल दर्शनके आचरण निमित्त समताभाव धरता है. किस ही कालमें प्रगटदशाको धरता है। किसही काल धर्ममें अस्तित्वभावको धारण करता है शुभोपयोग प्रवृत्तिसे शंका कांक्षा विचिकित्सा मूढदृष्टि आदिक भावोंके उत्थापन निमित्त सावधान होकर प्रवर्त्तै है। केवल व्यवहारनय रूप ही उपबृंहण स्थितिकरण वात्सल्य प्रभावनांगादि अंगोंकी भावना भावै है. वारंवार उत्साहको वढाता है ज्ञानभावनाके निमित्त पठन पाठनका काल विचारता रहै है. वहुत प्रकार विनयमें प्रवर्त्तै है. शास्त्रकी भक्तिके निमित्त वहुत आरंभ भी करता है. भलेप्रकार शास्त्रका मान करता है गुरुआदिकमें उपकार प्रवृत्तिको मुकुरते नहीं. अर्थ अक्षर और अर्थअक्षरकी एक कालमें एकताकी शुद्धतामें सावधान रहता है. चारित्रके धारण करनेकेलिये हिंसा 'असत्य चौरी स्त्रीसेवन परिग्रह इन पांच अधर्मोंका जो सर्वथा त्यागरूप पंचमहाव्रत हैं तिनमें थिरवृत्तिको करता है। मनवचनकायका निरोध है जिनमें ऐसी तीन गुप्तियोंकर निरन्तर योगावलंबन करता है. ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण उत्सर्ग जो पांच समिति हैं उनमें सर्वथा प्रयत्न करता है. तप आचरणके निमित्त अनसन अवमोदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश इन छह प्रकार वाह्य तपमें निरन्तर उत्साह करै है. प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्त व्युत्सर्ग स्वाध्याय ध्यान इन छह प्रकारके अन्तरंग तपकेलिये चित्तको वश करै है. वीर्याचारके निमित्त कर्मकांडमें अपनी सर्वशक्तिसे प्रवर्त्तै है। कर्मचेतनाकी प्रधानतासे सर्वथा निवारी है अशुभकर्मकी प्रवृत्ति जिन्होंने, वे ही शुभकर्मकी प्रवृत्तिको अंगीकार करते हैं. समस्त क्रियाकांडके आडंवरसे गर्भित ऐसे जे जीव हैं ते ज्ञानदर्शनचारित्ररूपगर्भित ज्ञान चेतनाको किसही कालमें भी नहिं पाते. वहुत पुण्याचरणके भारसे गर्भित चित्तवृत्तिको धरते हैं ऐसे जे केवल व्यवहारावलंवी मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्गलोकादिक क्लेशोंकी प्राप्तिकी परंपरायको अनुभव करते हुये परमकलाके अभावसे वहुतकालपर्यन्त संसारमें परिभ्रमण करैंगे। सो कहा भी है.

उक्तं च—गाथा—

"चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थ मुक्कवावारा।
चरणकरणस्स सारं णिच्चयसुद्धं ण याणंति" ॥ १ ॥

और जो जीव केवल निश्चयनयके ही अवलंवी हैं वे व्यवहाररूप स्वसमयरूपी क्रिया

कर्मकांडको आडंवर जान व्रतादिकमें विरागी होय रहे हैं. अर्द्ध उन्मीलित लोचनसे ऊर्ध्वमुखी होकर स्वच्छंदवृत्तिको धारण करते हैं. कोई २ अपनी बुद्धिसे ऐसा मानते हैं कि हम स्वरूपको अनुभवते हैं ऐसी समझसे सुखरूप प्रवर्त्ते है. भिन्न साध्यसाधन-भावरूप व्यवहारको तो मानते नहीं, निश्चयरूप अभिन्न साध्यसाधनको अपनेमें मानते हुये यों ही वहक रहे हैं. वस्तुको पाते नहीं, न निश्चयपदको पाते हैं, न व्यवहार पदको पाते हैं. 'इतोभ्रष्ट उतोभ्रष्ट' होकर वीचमें ही प्रमादरूपी मदिराके प्रभावसे चित्तमें मत-वाले हुये मूर्छितसे हो रहे हैं. जैसें कोई वहुत घी, मिश्री दुग्ध इत्यादि गरिष्ट वस्तुके पान भोजनसे सुथिर आलसी हो रहे हैं. अर्थात् अपनी उत्कृष्ट देहके वलसे जड़ हो रहे हैं. महा भयानक भावसे जानों कि मनकी भ्रष्टतासे मोहित विक्षिप्त हो गये हैं. चैतन्य भावकर रहित जानो कि बनस्पती ही हैं । मुनिपदवी करनेहारी कर्मचेतनाको पुण्यबंधके भयसे अवलम्बन नहिं करते और परम निःकर्मदशारूप ज्ञानचेतनाको अंगीकार करी ही नहीं, इसकारण अतिशय चंचलभावोंके धारी हैं. प्रगट अप्रगटरूप जो प्रमाद हैं उनके आधीन हो रहे हैं । महा अशुद्धोपयोगसे आगामी कालमें कर्मफल चेतनासे प्रधान होते हुये वनस्पतीकी समान जड़ हैं. केवल मात्र पापहीके वांधनेवाले हैं । सो कहा भी है ।

उक्तं च गाथा—

"णिच्चयमालंवंता णिच्चयदो णिच्चयं अयाणंता ।
णासंति चरणकरणं वाहरिचरणालसा केई" ॥ २ ॥

और जो कोई पुरुष मोक्षके निमित्त सदाकाल उद्यमी हो रहे हैं वे महा भाग्यवान हैं निश्चय व्यवहार इन दोनों नयोंमें किसी एकका पक्ष नहिं करते, सर्वथा मध्यस्थ भाव रहते हैं. शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्वमें स्थिरता करनेकेलिये सावधान रहते हैं । जब प्रमाद-भावकी प्रवृत्ति होती है तब उसको दूर करनेकेलिये शास्त्राज्ञानुसार क्रियाकांड परिणतिरूप प्रायश्चित्त करकें अत्यन्त उदासीन भाव धारण करते हैं फिर यथा शक्ति आपको आपके-द्वारा आपमें ही वेदै है । सदा निजस्वरूपके उपयोगी होते हैं जो ऐसे अनेकान्त वादी साधक अवस्थाके धरनहारे जीव हैं वे अपने तत्त्वकी थिरताके अनुसार क्रमक्रमसे कर्मोंका नाश करते हैं. अत्यन्त ही प्रमादसे रहित होते अडोल अवस्थाको धरते हैं । ऐसा जानो कि बनमें वनस्पती है दूर कीना है कर्मफल चेतनाका अनुभव जिन्होंने ऐसे, तथा कर्म चेतनाकी अनुभूतिमें उत्साह रहित हैं. केवल मात्र ज्ञान चेतनाकी अनुभूतिसे आत्मीक सुखसे भरपूर हैं. शीघ्र ही संसार समुद्रसे पार होकर समस्त सिद्धांतोंके मूल शास्वत पदके भोक्ता होते हैं ।

अब ग्रन्थकर्त्ताने प्रतिज्ञा की थी कि मैं पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ कहूंगा सो उसको संक्षेपमें ही करके समाप्त करते है ।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया ।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं ॥ १७३ ॥

संस्कृतछाया.

मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया ।
भणितं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसंग्रहं सूत्रं ॥ १७३ ॥

पदार्थ—[**मया**] मुझ कुन्दकुदाचार्यने [**पञ्चास्तिकायसङ्गहं**] कालके विना पंचास्तिकायरूप जो पांच द्रव्य उनके कथनका संग्रह है जिसमें ऐसा जो यह [**सूत्रं**] शब्द अर्थ गर्भित संक्षेप अक्षर पद वाक्य रचना सो [**भणितं**] पूर्वाचार्योंकी परंपराय शब्द ब्रह्मानुसार कहा है। कैसा है यह पञ्चास्तिकाय ग्रंथ? [**प्रवचनसारं**] द्वादशांगरूप जिनवाणीका रहस्य है. कैसा हूं मैं? [**प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन**] सिद्धान्त कहनेके अनुरागकर प्रेरित किया हुवा, किसलिये यह ग्रन्थ रचना कियी? [**मार्गप्रभावनार्थं**] जिनेन्द्र भगवन्त प्रणीत जिनशासनकी वृद्धिकेलिये ।

भावार्थ—संसारविषयभोगसे परम वैराग्यताकी करनेहारी भगवन्तकी आज्ञाका नाम मोक्षमार्ग है. उसकी प्रभावनाके अर्थ यह ग्रन्थ मैने किया है अथवा उस ही मोक्षमार्गका उद्योत किया है सिद्धान्तानुसार संक्षेपतासे भक्तिपूर्वक पञ्चास्तिकाय नामा मूलसूत्र ग्रन्थ कहा है। इसप्रकार ग्रन्थकर्त्ता श्रीकुंदकुंदाचार्य महाराजने यह ग्रन्थ प्रारंभ किया था सो उसके पारको प्राप्त हुये. अपनी कृत्यकृत्य अवस्था मानी, कर्मरहित शुद्धस्वरूपमें स्थिरभाव किया, ऐसी हमारेमें भी श्रद्धा उपजी है ।

इति श्रीसमयव्याख्यायां नवपदार्थपुरःसरमोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनो नाम द्वितीयश्रुतस्कन्धः समाप्तः ।

यह भाषाबालावबोध कुछयक अमृतचन्द्रसूरीकृत टीकाके अनुसार श्रीरूपचन्द्र गुरुके प्रसादथी पांडे हेमराजने अपनी बुद्धिमाफिक लिखित कीनी. उसीके अनुसार सुजानगढ जिले बीकानेर निवाथी पन्नालाल वाकलीवाल दिगम्बरी जैनने सरल हिंदीभाषामें लिखी । मिती चैत्रवदि ५ सं० १९६१ वार रविवार ता० ६ मार्च सन १९०४ के प्रातःकाल ही पूर्ण किया । श्रीरस्तु शुभमस्तु ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ

पञ्चास्तिकायसमयसारस्य

श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृता संस्कृतटीका ।

मङ्गलाचरणम् ।

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे[1] ।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने[2] परमात्मने ॥ १ ॥
दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः ।
स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनी सिद्धान्त-पद्धतिः ॥ २ ॥
सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया ।
अथातः समयव्याख्या संक्षेपेणा[3]ऽभिधीयते[4] ॥ ३ ॥
पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणं ।
पूर्वं[5] मूलपदार्थानामिह[6] सूत्रकृता[7] कृतम् ॥ ४ ॥
जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम् ।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता[8] ॥ ५ ॥
ततस्तत्वपरिज्ञानपूर्वेण[9] त्रितयात्मना ।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा[10] ॥ ६ ॥

[१] अथात्र 'नमो जिनेभ्यः[11]' इत्यनेन[12] जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं[13] शास्त्रस्याऽऽदौ मङ्गलमु[14]पात्तं । अनादिना संतानेन प्रवर्त्तमाना अनादिनैव संतानेन प्रवर्त्तमानैरिन्द्राणां शतैर्वन्दिता ये इत्य[15]नेन सर्वदैव देवाधिदेवत्वात्तेषामेवा[16]ऽसाधारणनमस्कारार्हत्वमुक्तम्[17] । त्रिभुवनमूर्ध्वाधोमध्यलोकवर्ती समस्त एव जीवलोकस्तस्मै[18] निर्व्याबाधविशुद्धात्मतत्वोपलम्भोपायाभिधायित्वाद्धितं । परमार्थरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरम्[19] । निरस्तसमस्तशंकादिदोषास्पदत्वाद्विशदवाक्यम् । दिव्यो ध्वनिर्येषामित्यनेन समस्तवस्तुयाथात्म्योपदेशित्वात्प्रेक्षावत्प्रतीक्ष्यत्वमाख्यातम् । अन्तमतीतः क्षेत्रानवच्छिन्नः कालानवच्छिन्नश्च परमचैतन्यशक्तिविलासलक्षणो गुणो येषामित्यनेन तु परमाद्भुतज्ञाना[20]तिशयप्रकाशनादवाप्त-

---

१ पूज्याय गरिष्ठाय वा. २ द्रव्यार्थिक–पर्यायार्थिक–भेदेन वा व्यवहारनिश्चयेन. ३ समुच्चयेन. ४ कथ्यते. ५ तावत् प्रथमतः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनरूपेण प्रथमोऽधिकारः. ६ इह ग्रन्थे प्रथमाधिकारे वा. ७ आचार्येण, (मूलकर्त्ता श्रीवर्धमानः, उत्तरकर्ता श्रीगौतमगणधरः, उत्तरोत्तरकर्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सूत्रकारः) ८ सप्ततत्वनवपदार्थव्याख्यानरूपेण द्वितीयोऽधिकारः ९ पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यनवपदार्थानां ज्ञानपूर्वेण. १० उत्तमा. ११ अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतून् कर्म्मारातीन् जयन्तीति जिनाः तेभ्यः. १२ नमस्कारेण. १३ असदृशम्. १४ मलं पापं गालयतीति मङ्गलम्, वा मङ्गं सुखं तल्लातीति गृह्णातीति मङ्गलं. १५ विशेषणेन वाक्येन वा. १६ जिनानाम्. १७ अनन्यसदृशम्. १८ जीवलोकाय त्रिभुवनाय. १९ वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंजातसहजापूर्वपरमानन्दरूपपारमार्थिकसुखरसास्वादसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वात् मधुरम्. २० प्रकृष्टाश्चर्यज्ञानप्रतापप्रकाशनात् ।

ज्ञानातिशयानामपि योगीन्द्राणां वन्द्यत्वमुदितम्। जितो भव आजवं जवो यैरित्यनेन[1] तु [2]कृतकृत्यत्वप्रकटनात्त एवान्येषाम्[3]अकृतकृत्यानां [4]शरणमित्युपदिष्टम्। इति सर्वपदानां तात्पर्यम्॥

[२] समयो ह्यागमः। तस्य प्रणामपूर्वकमात्मनाभिधान[5]मत्र [6]प्रतिज्ञातम्। पूज्यते हि स प्रणन्तुमभिधातुं चाप्तोपदिष्टत्वे सति सफलत्वात्। तत्राप्तोपदिष्टत्वमस्य श्रमणमुखोद्गतार्थत्वात्। श्रमणा हि महाश्रमणाः सर्वज्ञवीतरागाः। अर्थः पुनरनेकशब्दसंबन्धेनाभिधीयमानो वस्तुतयैकोऽभिधेयः। सफलत्वं तु चतसृणां नारकतिर्यग्मनुष्यदेवत्वलक्षणानां गतीनां निवारणत्वात्, साक्षात् पारतन्त्र्यनिवृत्तिलक्षणस्य निर्वाणस्य शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भरूपस्य परम्परया कारणत्वात्, स्वातन्त्र्यप्राप्तिलक्षणस्य च फलस्य सद्भावादिति॥

[३] [8]अत्र शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिविधाऽभिधेयता समयशब्दस्य लोकालोकविभागश्चाभिहितः। [9]तत्र च पञ्चानामस्तिकायानां समो मध्यस्थो रागद्वेषाभ्यामनुपहतो वर्णपदवाक्यसन्निवेशविशिष्टः पाठो वादः [10]शब्दसमयः शब्दागम इति यावत्। तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयोच्छेदे सति [11]सम्यगवायः परिच्छेदो ज्ञानसमयो ज्ञानागम इति यावत्। तेषामेवाभिधानप्रत्यय[12]परिच्छिन्नानां वस्तुरूपेण समवायः संघातोऽर्थसमयः सर्वपदार्थसार्थ इति यावत्। तद[13]त्र ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थं शब्दसमयसंबन्धेनार्थसमयोऽभिधातुम्[14]अभिप्रेतः। अथ तस्यैवार्थसमयस्य द्वैविध्यं लोकालोकविकल्पनात्। स एव पञ्चास्तिकायसमयो यावांस्तावाँल्लोक[15]स्ततः[16] परममितोऽनन्तो ह्यलोकः, स तु नाभावमात्रं। किं तु तत्समवायातिरिक्तपरिमाणमनन्तक्षेत्रं खमाकाशमिति॥

[४] अत्र पञ्चास्तिकायानां विशेषसंज्ञा सामान्यविशेषास्तित्वं कायत्वं[17] चोक्तं। तत्र जीवाः[18] पुद्गलाः[19] धर्मा[20]धर्मौ[21] आकाशम्[22]इति। तेषां[23] विशेषसंज्ञा [24]अन्वर्थाः प्रत्येयाः। सामान्यविशेषास्तित्वञ्च तेषामुत्पादव्ययध्रौव्यमय्यां सामान्यविशेषसत्तायां[25] नियतत्वा[26]द्व्यवस्थितत्वादव[27]सेयम्। अस्तित्वे निय[28]तानामपि न तेषाम्[29]अनन्य[30]मयत्वम्। यतस्ते सर्वदैवा[31]नन्यमया [32]आत्मनिर्वृत्ताः। अनन्यमयत्वेऽपि तेषामस्तित्वनियत[33]त्वं

---

१ घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन. २ कृतकार्यत्वप्रकाशनात्. ३ अकृतकार्याणाम्. ४ शरणं नान्य इति प्रतिपादितमस्ति. ५ द्रव्यागमरूपशब्दसमयोऽभिधानवाचकः ६ आगमस्य मध्ये. ७ प्रतिज्ञयावधारितम्. ८ अत्र समयव्याख्यायां समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिविधव्याख्यानं विव्रियते पञ्चानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत्। तेषां पञ्चानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशय, विमोह, विभ्रम, रहितत्वेन सम्यग् यो बोधनिर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थपरिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत् तेन द्रव्यागमरूपसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेद्यः पञ्चानामस्तिकायानां समूहः समय इति हि मन्यते। तत्र शब्दसमयाधारेण ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थं समयोऽत्र व्याख्यातुं प्रारब्धः ९ त्रिषु समयेषु. १० द्रव्यरूपशब्दसमयः. ११ भावागमसम्यग्ज्ञानम्. १२ ज्ञातानाम्. १३ अत्र ग्रन्थे त्रिषु मध्ये वा. १४ वाञ्छितः प्रारब्धः. १५ लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः. १६ लोकात्तस्मात् बहिर्भूतमनन्तशुद्धाकाशमलोकः. १७ कायाकायाइव काया बहुप्रदेशोपचयत्वात् शरीरवत्वं प्रतिपादितं. १८ यत्किमपि चिद्रूपं स जीवास्तिकायो भण्यते. १९ यद्दृश्यमानं किमपि पञ्चेन्द्रिययोग्यं स पुद्गलास्तिकायो भण्यते. २० तयोर्जीवपुद्गलयोर्गतिहेतुलक्षणो धर्मः. २१ स्थितिहेतुलक्षणश्चाधर्मः. २२ अवगाहनलक्षणं. २३ अस्तिकायानां पञ्चानां. २४ यथार्थाः. २५ अस्तित्वे सामान्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः तर्हि सत्तायाः सकाशात् कुण्डे बदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति. २६ निश्चितत्वात्. २७ विशेषरहितं ज्ञातव्यं. २८ अविनश्वराणाम्. २९ तेषां पञ्चास्तिकायानां. ३० पृथग्वत्वम्. ३१ अपृथग्भूताः। यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः। अनेन व्याख्यानेन आधाराधेयभावेऽप्यभिन्नास्तित्वम्. ३२ स्वतः निष्पन्नाः. ३३ नियतत्वं निश्चलत्वम्.

नयै[१]प्रयोगात् । द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः[२] पर्यायार्थिकश्च[३] । तत्र[४] न खल्वेकनयायत्ताऽऽदेशना[५] किन्तु तदुभयायत्ता । ततः पर्यायार्थादेशादस्तित्वे स्वतःकथंचिद्भिन्नेऽपि व्यवस्थिताः[६] द्रव्यार्थादेशात्स्वयमेव सन्तः[७] सतो[८]ऽनन्यमया[९] भवन्तीति । कायत्वमपि तेषामणुमहत्वात् । अणवोऽत्र प्रदेशा मूर्त्ताऽमूर्ताश्च निर्विभागांशास्तैः[१०] महान्तोऽणुमहान्तः प्रदेशप्रचयात्मका इति सिद्धं तेषां कायत्वं[११] । अणुभ्यां महान्त इति व्युत्पत्त्या द्व्यणुकपुद्गलस्कन्धानामपि तथाविधत्वम् । अणवश्च महान्तश्च व्यक्तिशक्तिरूपाभ्यामिति परमाणूनामेकप्रदेशात्मकत्वेऽपि तत्सिद्धिः[१२] । व्यक्त्यपेक्षया शक्त्यपेक्षया च प्रदेशप्रचयात्मकस्य महत्व-स्याभावात्कालाणूनाम[१३]स्तित्वनियतत्वेऽप्यकायत्वमनेनैव साधितम् । अतएव तेषा[१४]मस्तिकायप्रकरणे सता[१५]म-प्यनुपादानमिति ॥

[५] अत्र[१६] पञ्चास्तिकायानामस्तित्वसंभवप्रकारः कायत्वसंभवप्रकारश्चोक्तः । अस्ति ह्यस्तिकायानां गुणैः[१७] पर्यायैश्च[१८] विविधैः सह स्वभावो आत्मभावोऽनन्यत्वम्[१९] । वस्तुनो[२०] विशेषा[२१] हि व्यतिरेकिणः पर्य्याया गुणास्तु त एवान्वयिनः[२२] । तत एकेन पर्यायेण प्रलीयमानस्यान्येनोपजायमानस्यान्वयिना गुणेन ध्रौव्यं बिभ्राणस्यैकस्याऽपि वस्तुनः समुच्छेदोत्पादध्रौव्यलक्षणमस्तित्वमुपपद्यतएव । गुणपर्यायैः सह सर्वथा-न्यत्वे[२३] त्वन्यो विनश्यत्यन्यः प्रादुर्भवत्यन्यो ध्रुवत्वमालम्बत इति सर्वं विप्लवते[२४] । ततः साध्वस्तित्वसंभव-प्रकारकथनं । कायत्वसंभवप्रकारस्त्वयमुपदिश्यते । अवयविनो[२५] हि जीवपुद्गलधर्म्माऽधर्म्माऽऽकाशपदार्था-स्तेषा[२६]मवयवा अपि प्रदेशाख्याः परस्परव्यतिरेकित्वात्[२७]पर्याया उच्यन्ते । तेषां[२८] तैः[२९] सहानन्यत्वे[३०] कायत्व-सिद्धिरुपपत्तिमती[३१] । निरवयवस्यापि परमाणोः सावयवत्वशक्तिसद्भावात् कायत्वसिद्धिरत एवानपवादा[३२] । न चैवं तदा शङ्क्यम् पुद्गलादन्येषाममूर्तत्वादविभाज्यानां[३३] सावयत्वकल्पनमन्याय्यम्[३४] । दृश्यत एवा-विभाज्येऽपि[३५] विहायसीदं घटाकाशमिदमघटाकाशमिति विभागकल्पनम् । यदि तत्र[३६] विभागो न कल्पेत तदा यदेव घटाकाशं तदेवाघटाकाशं स्यात् । न च तदिष्टं[३७] । ततः कालाणुभ्योऽन्यत्र[३८] सर्वेषां कायत्वाख्यं साव-यवत्वमवसेयं । त्रैलोक्यरूपेण निष्पन्नत्वमपि तेषामस्तिकायत्वसाधनपरमुपन्यस्तम् । तथाच—त्रयाणा-मूर्ध्वाऽधोमध्यलोकानामुत्पादव्ययध्रौव्यवन्तस्तद्[३९]विशेषात्मका भावा भवन्तस्तेषां मूलपदार्थानां गुणपर्यय-

---

१ द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्ये पर्याये वा वस्तुताध्यवसायो नय इति यावत् । यद्वा स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशे-षव्यञ्जको नयः. २ तत्र पर्यायाभावात् द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः. ३ द्रव्याभावात् पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः. ४ द्वयोर्नययोर्मध्ये. ५ सर्वज्ञानामुपदेशः. ६ तिष्ठमानाः पञ्चास्तिकायाः. ७ विद्य-मानाः भवन्तः. ८ अस्तित्वतः. ९ अपृथग्भूताः. १० निर्विभागैरणुभिः. ११ अणुभिः प्रदेशैर्महान्तः अणुमहान्तः त्र्यणुकस्कन्धापेक्षया द्वाभ्यामणुभ्यां महान्त इति कायत्वमुक्तं । एकप्रदेशाणोः कथं कायत्वमिति चेत् स्कन्धानां कारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति. १२ कायत्वसिद्धिः. १३ कालाणूनां पुनर्ब-न्धकारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं नास्ति. १४ कालाणूनां. १५ विद्यमानानाम्. १६ अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं केन प्रकारेण संभवतीति प्रतिज्ञापयति. १७ सहभुवो गुणाः. १८ व्यतिरेकिणः पर्यायैः. १९ अभिन्नत्वं. २० वस्तुनः द्रव्यस्य. २१ केवलज्ञानादयो गुणाः. २२ एकस्यापि वस्तुनो भूतभाविभवत्पर्याय-भेदेषु वर्तमानस्य यदनुगतप्रत्ययोत्पादकं सोऽन्वयः स एषामिति ते अन्वयिनः. २३ भिन्नत्वे. २४ विनश्यति. २५ प्रदेशाख्या अवयवाः विद्यन्ते येषां ते अवयविनः. २६ तेषां जीवादिपदार्थानाम् त्रिभुवनाकारपरिणतानां सावयवत्वात् सः प्रदेशाख्यः. २७ अन्योन्यभिन्नत्वात् भिन्नत्वात् पृथग्भावाद्वा. २८ अस्तिकायानां. २९ तैः पर्यायैः. ३० अभिन्नत्वे. ३१ युक्तिमती. ३२ अपवादरहिता निश्चयसिद्धिरित्यर्थः. ३३ विभागर-हितानां अखण्डानां. ३४ अयोग्यमिति शङ्का न कर्तव्या. ३५ विभागरहिते. ३६ आकाशे. ३७ इष्टं मान्यं. ३८ कालद्रव्यं विहाय कायत्वं च विद्यते इति अङ्गीकर्तव्यम्. ३९ तेषामूर्ध्वाधोमध्यलोकानां.

योगपूर्वकमस्तित्वं साधयन्ति । अनुमीयते च धर्म्माधर्म्माकाशानामूर्ध्वाऽधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनात्कायत्वाख्यं सावयवत्वम् । जीवानामपि प्रत्येकमूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनत्वा-ल्लोकपूरणावस्थाव्यवस्थितव्यक्तेस्सदा सन्निहितशक्तेस्तदनुमीयत एव । पुद्गलानामप्यूर्ध्वाधोमध्यलोक-विभागरूपपरिणतमहास्कन्धत्वप्राप्तिव्यक्तिशक्तियोगित्वात्तथाविधा सावयवत्वसिद्धिरस्त्येवेति ॥

[६] अत्र पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यत्वमुक्तम् । द्रव्याणि हि सहक्रमभुवां गुणपर्याया-णामनन्यतयाऽऽधारभूतानि भवन्ति । ततो वृत्तवर्तमानवर्तिष्यमाणानां भावानां पर्यायाणां स्वरूपेण परि-णतत्वादस्तिकायानां परिवर्तनलिङ्गस्य कालस्य चास्ति द्रव्यत्वं । नच तेषां भूतभवद्भविष्यद्भावात्मना परिणममानानामनित्यत्वम् । यतस्ते भूतभवद्भविष्यद्भावावस्थास्वपि प्रतिनियतस्वरूपापरित्यागान्नित्या एव । अत्र कालः पुद्गलादिपरिवर्तनहेतुत्वात्पुद्गलादिपरिवर्तनगम्यमानपर्यायत्वाच्चास्तिकायेष्वन्तर्भावार्थं स-परिवर्तनलिङ्ग इत्युक्त इति ॥

[७] अत्र षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरेऽपि प्रतिनियतस्वरूपादप्रच्यवनमुक्तम् । अत एव तेषां परिणामवत्त्वेऽपि प्राग्नित्यत्वमुक्तम् । अत एव च न तेषामेकत्वापत्तिर्न च जीवकर्म्मणोर्व्यव-हारनयादेशादेकत्वेऽपि परस्परस्वरूपोपादानमिति ॥

[८] अत्रास्तित्वस्वरूपमुक्तम् । अस्तित्वं हि सत्ता नाम सतो भावः । सत्वं न सर्वथा नित्यतया सर्वथा क्षणिकतया वा विद्यमानमात्रं वस्तु । सर्वथा नित्यस्य वस्तुनस्तत्वतः क्रमभुवां भावानामभावा-त्कुतो विकारवत्वम् । सर्वथा क्षणिकस्य च तत्वतः प्रत्यभिज्ञानाभावात् कुत एकसंतानत्वम् । ततः प्रत्यभिज्ञानहेतुभूतेन केनचित्स्वरूपेण ध्रौव्यमालम्ब्यमानं काभ्यांचित्क्रमप्रवृत्ताभ्यां स्वरूपाभ्यां प्रली-यमानमुपजायमानं चैककालमेव परमार्थतस्त्रितयीमवस्थां बिभ्राणं वस्तु सदवबोध्यम् । अत एव सत्ताप्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मिकाऽवबोद्धव्या । भावभाववतोः कथंचिदेकस्वरूपत्वात् । सा च त्रिलक्ष-णस्य समस्तस्यापि वस्तुविस्तारस्य सादृश्यसूचकत्वादेका । सर्वपदार्थस्थिता च । त्रिलक्षणस्य सदित्यभिधानस्य सदिति प्रत्ययस्य च सर्वपदार्थेषु तन्मूलस्यैवोपलम्भात् । सविश्वरूपा च विश्वस्य समस्तवस्तुविस्तारस्यापि रूपैस्त्रिलक्षणैः स्वभावैः सह वर्तमानत्वात् । अनन्तपर्याया चानन्ताभिर्द्रव्यपर्याय-व्यक्तिभिस्त्रिलक्षणाभिः परिगम्यमानत्वात् । एवंभूतापि सा न खलु निरङ्कुशा किं तु सप्रतिपक्षा । प्रति-पक्षो ह्यसत्ता सत्तायाः, अत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः, अनेकत्वमेकस्याः, एकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थ-स्थितायाः, एकरूपत्वम् सर्वविश्वरूपायाः, एकपर्यायत्वमनन्तपर्यायाया इति । द्विविधा हि सत्ता महासत्ता-वान्तरसत्ता च । तत्र सर्वपदार्थसार्थव्यापिनी सादृश्यास्तित्वसूचिका महासत्ता प्रोक्तैव । अन्या तु प्रति-नियमवस्तुवर्तिनी स्वरूपास्तित्वसूचिकाऽवान्तरसत्ता । तत्र महासत्ताऽवान्तरसत्तारूपेणाऽसत्ताऽवान्तरसत्ता

---

१ शुद्धजीवास्तिकायस्य या अनन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धिपर्यायसत्ता च शुद्धा संख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपा-देयमिति. २ द्रव्यस्य सहभुवो गुणाः. ३ द्रव्यस्य क्रमभुवः पर्यायाः. ४ पञ्चास्तिकायाः. ५ अत्र पञ्चास्तिकायप्रकरणे. ६ परिवर्तनमेव पुद्गलादिपरिणमनमेव अग्नेर्धूमवत्कार्यभूतं लिङ्गं चिह्नं गमकं सूचकं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गकालाणुद्रव्यरूपो द्रव्यकालस्तेन संयुक्तः । ननु कालद्रव्यसंयुक्त इति वक्तव्यं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्त इत्यवक्तव्यवचनं किमर्थमिति । नैवं पञ्चास्तिकायप्रकरणे कालमुख्यता नास्तीति पदार्थानां नवजीर्णपरिणतिरूपेण कायलिङ्गेन ज्ञायते. ७ स्वकीयस्वकीयस्वरूपात्. ८ तेषां द्रव्याणां. ९ निश्चयात् स्वभावात्. १० पर्य्यायाणाम्. ११ पूर्वानुभूतदर्शनेन जायमानं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्. १२ पर्यायाभ्याम्. १३ पर्य्यायद्रव्ययोः परिणामपरिणामिनो-र्वा. १४ उत्पादध्रौव्यव्यययुक्तस्य. १५ अर्थस्य तयोराधारभूतस्य तद्गुणस्य. १६ व्यापकत्वात्. १७ अवान्तरसत्ता.

च महासत्तारूपेणाऽसत्तेत्यसत्ता सत्तायाः । येन स्वरूपेणोत्पादस्तत्तथोत्पादैकलक्षणमेव येन स्वरूपेणोच्छेदस्तत्तथोच्छेदैकलक्षणमेव येन स्वरूपेण ध्रौव्यं तत्तथा ध्रौव्यैकलक्षणमेव तत उत्पद्यमानोच्छिद्यमानाऽवतिष्ठमानानां वस्तुनः स्वरूपाणां प्रत्येकं[1] त्रैलक्षण्याभावादत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः। एकस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता नान्यस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता भवतीत्यनेकत्वमेकस्याः। प्रतिनियतपदार्थस्थिताभिरेव सत्ताभिः पदार्थानां प्रतिनियमो[2] भवतीत्येकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थितायाः । प्रतिनियतैकरूपाभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकरूपत्वं वस्तूनां भवतीत्येकरूपत्वं सविश्वरूपायाः । प्रतिपर्यायनियताभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकपर्यायाणामानन्त्यं भवतीत्येकपर्यायत्वमनन्तपर्यायायाः। इति सर्वमनवद्यम् सामान्यविशेषप्ररूपणप्रवणनयै[3]र्द्वयायत्तत्वात् तद्देशनायाः ॥

[९] अत्र सत्ताद्रव्ययोरर्थान्तरत्वं प्रत्याख्यातम्[4]। द्रवति गच्छति सामान्यरूपेण स्वरूपेण व्याप्नोति तांस्तान् क्रमभुवः सहभुवश्च सद्भावपर्यायान् स्वभाव[5]विशेषानित्यनुगतार्थया निरुक्त्या द्रव्यं व्याख्यातम्। द्रव्यं च लक्ष्यलक्षणभावादिभ्यः कथंचिद्भेदे[6]ऽपि वस्तुतः[7] सत्तायाः अपृथग्भूतमेवेति मन्तव्यम्[8]। ततो यत्पूर्वं सत्वमसत्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकत्वमनेकत्वं सर्वपदार्थस्थितत्वमेकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं च प्रतिपादितं सत्तायास्तत्सर्वं तदनर्थान्तरभूतस्य द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यं। ततो न कश्चिदपि तेषु सत्ताविशेषोऽवशिष्येत यः सत्तां वस्तुतो द्रव्यात्पृथक् व्यवस्थापयेदिति ॥

[१०] अत्र त्रेधा द्रव्यलक्षणमुक्तम् । सद्द्रव्यलक्षणमुक्तलक्षणायाः सत्ताया अविशेषाद्द्रव्यस्य सत्स्वरूपमेव लक्षणम्, नचानेकान्तात्मकस्य द्रव्यस्य सन्मात्रमेव स्वरूपं[9]। यतो लक्ष्यलक्षणविभागाभाव इति उत्पादव्ययध्रौव्याणि वा द्रव्यलक्षणं। एकजात्यविरोधिनि क्रमभुवां भावानां संताने पूर्वभावविनाशः समुच्छेद उत्तरभावप्रादुर्भावश्च समुत्पादः। पूर्वोत्तरभावोच्छेदोत्पादयोरपि स्वजातेरपरित्यागो ध्रौव्यं। तानि सामान्यादेशादभिन्नानि विशेषादेशाद्भिन्नानि युगपद्भावीनि स्वभावभूतानि द्रव्यस्य लक्षणं भवन्तीति । गुणपर्याया वा द्रव्यलक्षणं । अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनोऽन्वयिनो विशेषा गुणाः व्यतिरेकिणः पर्याया[10]स्ते द्रव्ये यौगपद्येन क्रमेण च प्रवर्तमानाः कथञ्चिद्भिन्नाः स्वभावभूताः[11] द्रव्यलक्षणता[12]मापद्यन्ते । त्रया[13]णामप्यमीषां द्रव्यलक्षणानामेक[14]स्मिन्नभिहिते[15]ऽन्यदुभयमर्था[16]देवापद्यते । सच्चेदुत्पादव्ययध्रौव्यवच्च गुणपर्यायवच्च । उत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेत्सच्च गुणपर्यायवच्च। गुणपर्यायवच्चेत्सच्चोत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेति। सद्धि नित्यानित्यस्वभावत्वाद्ध्रुवत्वमुत्पादव्ययात्मकताञ्च प्रथयति । ध्रुवत्वात्मकैर्गुणैरुत्पादव्ययाद्व्ययात्मकैः पर्यायैश्च सहैकत्वञ्चाख्या[17]ति । उत्पादव्ययध्रौव्या[18]णि तु नित्यानित्यस्वरूपं परमार्थं सदावेदयन्ति । गुणपर्यायांश्चात्मलाभनिबन्धनभूतान् प्रथयन्ति[19] । गुणपर्यायास्त्वन्वयव्यतिरेकित्वाद्ध्रौव्योत्पत्तिविनाशान् सूचयन्ति, नित्यानित्यस्वभावं परमार्थं सच्चोपलक्षयन्ति[20] ॥

[११] अत्रोभयनया[21]भ्यां द्रव्यलक्षणं प्रविभक्तम् । द्रव्यस्य हि सहक्रमप्रवृत्तगुणपर्यायसद्भावरूपस्य त्रिकालावस्थायिनोऽनादिनिधनस्य न समुच्छेदसमुदयौ युक्तौ । अथ तस्यैव पर्य्यायाणां सहप्रवृत्तिभाजां केषांचित् ध्रौव्यसंभवेऽप्यपरेषां क्रमप्रवृत्तिभाजां विनाशसंभवसंभावनमुपपन्नम् । ततो

---

१ एकमेकस्वरूपं प्रति त्रिलक्षणत्वाभावात्. २ निश्चयः. ३ अत्र सत्तादेशनाया द्विनयाधीनत्वात्. ४ प्रत्याख्यातं निराकृते। "प्रत्याख्यातो निराकृतः" इति वचनात्. ५ स्वरूपभेदान्. ६ संज्ञालक्षणप्रयोजनेन. ७ परमार्थतः. ८ ज्ञातव्यं अवबोद्धव्यं वा. ९ द्रव्यम्. १० गुणपर्य्यायाः. ११ द्रव्यस्य लक्षणभूताः. १२ प्राप्नुवन्ति. १३ सत्ता, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वं, गुणपर्यायत्वं चेति त्रयाणाम्. १४ लक्षणे. १५ कथ्यते. १६ अर्थानुसारात्. १७ कथयति. १८ कर्तृणि. १९ विस्तारयन्ति. २० दर्शयन्ति अवबोधयन्ति वा. २१ द्रव्यार्थिकपर्य्यायार्थिकनयाभ्याम्.

द्रव्यार्थार्पणायामनुत्पादमनुच्छेदं सत्स्वभावमेव द्रव्यं । तदेव पर्यायार्थार्पणायां सोत्पादं सोच्छेदं चाव-बोद्धव्यम् । सर्वमिदमनवद्यञ्च द्रव्यपार्यायाणामभेदात् ॥

[१२] अत्र द्रव्यपर्यायाणाम[2]भेदो निर्दिष्टः । दुग्धदधिनवनीतघृतादिवियुतगोरसवत्पर्यायवियुतं[3] द्रव्यं नास्ति । गोरसवियुक्तदुग्धदधिनवनीतघृतादिवद्द्रव्यविर्युक्ताः[4] पर्य्याया न सन्ति । ततो द्रव्यस्य पर्य्यायाणाञ्चादेशवशात्कथंचिद् भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनाम् वस्तुत्वेनाभेद इति ॥

[१३] अत्र द्रव्य[5]गुणानाम[6]भेदो निर्दिष्टः । पुद्गलभूतस्पर्शरसगन्धवर्णवद्द्रव्येण विना न गुणाः संभवन्ति । स्पर्शरसगन्धवर्णपृथग्भूतपुद्गलवद्गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति । ततो द्रव्यगुणानामप्यादेशात् कथंचिद्भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति ॥

[१४] अत्र द्रव्यस्यादेशवशेनोक्ता सप्तभङ्गी । स्यादस्ति द्रव्यं स्यान्नास्ति द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं स्यादवक्तव्यं द्रव्यं स्यादस्ति चावक्तव्यं स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यमिति । अत्र[7] सर्वथात्वनिषेधकोऽनैकान्तिको द्योतकः कथंचिदर्थे[8] स्याच्छब्दो निपातः । तत्र[9] स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति द्रव्यं । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टं नास्ति द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च क्रमेणादिष्टमास्ति च नास्ति च द्रव्यं स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपदादिष्टमवक्तव्यं द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति चावक्तव्यञ्च द्रव्यं । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टं नास्ति चावक्तव्यं द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति । नचैतदनुपपन्नम्[10] । सर्वस्य वस्तुनः स्वरूपादिना अशून्यत्वात्[11]पररूपादिना शून्यत्वात्[12] । उभाभ्याम[13]शून्यशून्यत्वात् सहावाच्यत्वात्[14] भङ्गसंयोगार्पणायाम[15]शून्यावाच्यत्वात् शून्यावाच्यत्वात् अशून्यशून्यावाच्यत्वाच्चेति ॥ १४ ॥

[१५] अत्रासत्प्रादुर्भावमुत्पादस्य सदुच्छेदत्वं विगमस्य[16] निषिद्धं । भावस्य[17] सतो हि द्रव्यस्य न द्रव्यत्वेन विनाशः । अभावस्यासतोऽन्यद्रव्यस्य न द्रव्यत्वेनोत्पादः । किं तु भावाः सन्ति द्रव्याणि सदुच्छेदमसदुत्पादं चान्तरेणैव गुणपर्यायेषु विनाशमुत्पादं चारभन्ते । यथा हि घृतोत्पत्तौ गोरसस्य सतो न विनाशः न चापि गोरसव्यतिरिक्तस्यार्थान्तरस्यासतः उत्पादः किंतु गोरसस्यैव सदुच्छेदमसदुत्पादञ्चानुपलभ्यमानस्य[18] स्पर्शरसगन्धवर्णादिषु परिणामिषु गुणेषु पूर्वावस्थया विनश्यत्सूत्तरावस्थया प्रादुर्भवत्सु नश्यति च नवनीतपर्य्यायो घृतपर्याय उत्पद्यते तथा सर्वभावानामपीति ॥ १५ ॥

[१६] अत्र भावगुणपर्यायाः[19] प्रज्ञापिताः । भावा हि जीवादयः षट् पदार्थाः । तेषाम् गुणाः पर्यायाश्च

---

१ शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नरनारकादिविभावपरिणामोत्पत्तिविनाशरहितम्. २ निश्चयनयेन. ३ रहितम्. ४ द्रव्यरहिताः. ५ द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात्. ६ निश्चयनयेन. ७ सप्तभङ्ग्यां. ८ स्याद्वादस्वरूपेऽस्तिनास्तिकथने. ९ तच्च स्वद्रव्यचतुष्टयं शुद्धजीवविषये कथ्यते, शुद्धपर्य्यायाधारभूतं द्रव्यं भण्यते, लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं, भण्यते वर्तमानशुद्धपर्य्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयकालो, भण्यते शुद्धचैतन्यभावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयः. १० अयुक्तम्. ११ अस्तित्वात्. १२ नास्तित्वात्. १३ अस्तिनास्तिरूपेण सह एकस्मिन्समावेशशून्यत्वात्. १४ द्वाभ्यां अस्तिनास्तिभ्यां अस्तिनास्तित्वात्. १५ अस्तिनास्त्यादिभङ्ग्यां योज्यमानायाम्. १६ व्ययस्य विनाशस्य वा. १७ भावस्येति पदस्य कोऽर्थः । तद्यथा–सतो हि द्रव्यस्येत्यनेन विद्यमानस्य द्रव्यत्वेन न विनाश इत्यर्थः. १८ अप्राप्यमाणस्य. १९ द्रव्यगुणपर्य्यायाः.

प्रसिद्धाः । तथापि जीवस्य वक्ष्यमाणोदाहरणप्रसिद्ध्यर्थमभिधीयन्ते । गुणा हि जीवस्य ज्ञानानुभूतिलक्षणा शुद्धचेतना, कार्य्यानुभूतिलक्षणा कर्म[1]फलानुभूतिलक्षणा चाशुद्धचेतना, चैतन्यानुविधायिपरिणामलक्षणः सविकल्पनिर्विकल्परूपः शुद्धाशुद्धतया सकलविकलतां दधानो द्वेधोपयोगश्च[2] । पर्य्यायास्त्वगुरुलघुगुण-हानिवृद्धिनिर्वृत्ताः शुद्धाः । सूत्रोपात्तास्तु सुरनारकतिर्यङ्मनुष्यलक्षणाः परद्रव्यसंबन्धनिर्वृत्तत्वादशुद्धा-श्चेति ॥

[१७] इदं भावनाशाभावोत्पादनिषेधोदाहरणम् । प्रतिसमयसंभवदगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्त[3]स्व-भावपर्य्यायसंतत्यविच्छेदकेनैकेन सोपाधिना मनुष्यत्वलक्षणेन पर्य्यायेण विनश्यति जीवः । तथावि-धेन देवत्वलक्षणेन नारकतिर्य्यक्त्वलक्षणेन वान्येन पर्य्यायेणोत्पद्यते । न च मनुष्यत्वेन नाशे जीव-त्वेनाऽपि नश्यति । देवत्वादिनोत्पादे जीवत्वेनाप्युपपद्यते । किं तु सदुच्छेदमसदुत्पादमन्तरेणैव तथा विवर्तत इति ॥

[१८] अत्र कथंचिद्व्ययोत्पादवत्त्वेऽपि द्रव्यस्य सदा विनष्टानुत्पन्नत्वं ख्यापितं । यदेव पूर्वोत्तर-पर्यायविवेकसंपर्कापादितामु[4]भयीमवस्थामात्मसात् कुर्वाणमुच्छिद्यमानमुत्पद्यमानं च द्रव्यमालक्ष्यते । तदेव तथाविधोभयावस्थाव्यापिना प्रतिनियतैकवस्तुत्वनिबन्धनभूतेन स्वभावेनाविनष्टमनुत्पन्नं वा वेद्यते । पर्यायास्तु तस्य पूर्वपूर्वपरिणामोपमर्दो[7]त्तरोत्तरपरिणामोत्पादरूपाः प्रणाशसंभवधर्म्माणोऽभिधीयन्ते । ते च वस्तुत्वेन द्रव्यादपृथग्भूता एवोक्ताः । ततः पर्य्यायैः सहैकवस्तुत्वाज्जायमानं म्रियमाणमपि जीव-द्रव्यं सर्वदानुत्पन्नाविनष्टं द्रष्टव्यम् । देवमनुष्यादिपर्यायास्तु क्रमवर्तित्वादुपस्थितातिवाहितस्वसमया उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति चेति ॥

[१९] अत्र सदसतोरविनाशानुत्पादौ स्थितिपक्षत्वेनोपन्यस्तौ । यदि हि जीवो य एव म्रियते स एव जायते य एव जायते स एव म्रियते तदेवं सतो विनाशोऽसत उत्पादश्च नास्तीति व्यवतिष्ठते । यत्तु देवो जायते मनुष्यो म्रियते इति व्यपदिश्यते तदवधृतकालदेवमनुष्यत्वपर्याय-निर्वर्तकस्य देवमनुष्यगतिनाम्नस्तन्मात्रत्वादविरुद्धं । यथा हि महतो वेणुदण्डस्यैकस्य क्रमवृत्तीन्यने-कानि पर्वाण्यात्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्व्वान्तरमगच्छन्ति स्वस्थानेषु भावभाञ्जि परस्थानेष्वभाव-भाञ्जि भवन्ति । वेणुदण्डस्तु सर्वेष्वपि पर्वस्थानेषु भावभागपि पर्वान्तरसंबन्धेन पर्व्वान्तरसंबन्धाभावात् अभावभाग्भवति । तथा निरवधित्रिकालावस्थायिनो जीवद्रव्यस्यैकस्य क्रमवृत्तयोऽनेके मनुष्यत्वादि-पर्याया आत्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्य्यायान्तरमगच्छन्तः स्वस्थानेषु भावभाजः परस्थानेष्वभाव-भाजो भवन्ति । जीवद्रव्यं तु सर्वपर्य्यायस्थानेषु भावभागपि पर्यायान्तरसंबन्धेन पर्य्यायान्तरसंबन्धा-भावादभावभाग्भवति ॥

[२०] अत्रात्यन्तासदुत्पादत्वं सिद्धस्य निषिद्धम् । यथा स्तोककालान्वयिषु नामकर्मविशेषोदय-

---

१ कर्मणां फलानि सुखादीनि कर्मफलानि तेषामनुभूतिः अनुभवनं भुक्तिः सैव लक्षणं यस्याः सेति. २ ज्ञानदर्शनोपयोगः. ३ निष्पन्न–. ४ सविकारेण. ५ पूर्वोत्तरपर्य्यायौ विवेकसंपर्कौ पूर्वपर्यायस्य मनुष्यत्व-लक्षणस्य विवेकः विवेचनं विनाश इति यावत्, उत्तरपर्य्यायस्य देवत्वलक्षणस्य संपर्कः संबन्धः संयोगः उत्पाद इत्यर्थः, इति पूर्वोत्तरपर्य्यायविवेकसंपर्कौ, ताभ्यां निष्पादिता या सा ताम्. ६ उत्पादव्ययसमर्थाम्. ७ उपमर्दो विनाशः. ८ पर्य्यायाः. ९ परमार्थेन. १० कथ्यते. ११ आयुःप्रमाणम्. १२ उत्पादव्ययमात्रत्वात्. १३ स्वकीयप्रमाणपरिच्छेद्यात्. १४ उत्पत्तिभोक्तारः. १५ विनाशभाजः भवन्ति. १६ देवलक्षणोत्तरपर्य्याय-संबन्धेन. १७ मनुष्यलक्षणपूर्वपर्य्यायसंबन्धाभावात्.

निर्वृत्तेषु[1] जीवस्य देवादिपर्यायेष्वेकस्मिन्[2] स्वकारणनिर्वृत्तौ निर्वृत्तेऽभूतपूर्व एव चान्यस्मिन्नुत्पन्ने नासदुत्पत्तिः[3]। तथा दीर्घकालान्वयिनि[4] ज्ञानावरणादिकर्मसामान्योदयनिर्वृत्तिसंसारित्वपर्याये भव्यस्य स्वकारणनिर्वृत्तौ[5] निर्वृत्ते[6] समुत्पन्ने चाभूतपूर्वे[7] सिद्धत्वपर्याये नासदुत्पत्तिरिति । किंच यथा द्राघीयसि वेणुदण्डे व्यवहिताव्यवहितविचित्रकिर्म्मीरताखचिताधस्तनार्द्धभागे[8] एकान्तव्यवहितसुविशुद्धोर्ध्वार्द्धभागेऽवतारिता[9] दृष्टिः समन्ततो विचित्रचित्रकिर्म्मीरताव्याप्तिं पश्यन्ती समनुमिनोति[10] तस्य[11] सर्वत्रा-[12]विशुद्धत्वम्[13]। तथा क्वचिदपि जीवद्रव्ये व्यवहिताव्यवहितज्ञानावरणादिकर्म्मकिर्म्मीरताखचितबहुतराधस्तनार्द्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धबहुतरोर्ध्वभागेऽवतारिता बुद्धिः समन्ततो ज्ञानावरणादिकर्म्मकिर्म्मीरताव्याप्तिं व्यवस्यन्ती[14] समनुमिनोति[15] तस्य[16] सर्वत्राविशुद्धत्वम्[17]। यथा च तत्र वेणुदण्डे व्याप्तिज्ञानाभासनिबन्धनविचित्र[18]किर्म्मीरतान्वयः । तथा च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्म्मीरतान्वयः[19]। यथैव च तत्र वेणुदण्डे विचित्रचित्रकिर्म्मीरताभावात्सुविशुद्धत्वं । तथैव च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्म्मीरतान्वयाभावादाप्तागमसम्यगनुमानातीन्द्रियज्ञानपरिच्छिन्नात्सिद्धत्वमिति ॥

[२१] जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपपत्त्युपसंहारो[20]ऽयं । द्रव्यं हि सर्वदाऽविनष्टानुत्पन्नमाम्नातं । ततो जीवद्रव्यस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वमुपन्यस्तं । तस्यैव[21] देवादिपर्य्यायरूपेण प्रादुर्भवतो भावकर्तृत्वमुक्तं[22]। तस्यैव च मनुष्यादिपर्य्यायरूपेण व्ययतो भावकर्तृत्वमाख्यातं । तस्यैव च सतो[23] देवादिपर्य्यायस्योच्छेदमारभमाणस्य भावाभावकर्तृत्वमुपपादितं । तस्यैव चासतः पुनर्मनुष्यादिपर्य्यायस्योत्पादमारभमाणस्याभावभावकर्तृत्वमभिहितं । सर्वमिदमनवद्यं द्रव्यपर्य्यायाणामन्यतरगुणमुख्यत्वेन व्याख्यानात् । तथा हि यदा जीवः पर्य्यायैर्[24]गुणत्वेन द्रव्यमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा नोत्पद्यते न विनश्यति न च क्रमवृत्त्या वर्तमानत्वात् सत्पर्य्यायजातमुच्छिनत्ति नासदुत्पादयति । यदा तु द्रव्यगुणत्वेन पर्य्यायमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा प्रादुर्भवति विनश्यति सत्पर्य्यायजातमतिवाहितस्वकालमुच्छिनत्ति[25] असदुपस्थितं[26] स्वकालमुत्पादयति चेति । स खल्वयं प्रसादोऽनेकान्तवादस्य यदीदृशोऽपि विरोधो न विरोधः । इति षड्द्रव्यसामान्यप्ररूपणा ॥

[२२] अत्र सामान्येनोक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां मध्यात् पञ्चानामस्तिकायत्वम् व्यवस्थापितम् । अकृतत्वात् अस्तित्वमयत्वात् विचित्रात्मपरिणतिरूपस्य लोकस्य कारणत्वाच्चाभ्युपगम्यमानेषु षट्सु द्रव्येषु जीवपुद्गलाकाशधर्म्माधर्म्माः प्रदेशप्रचयात्मकत्वात् पञ्चास्तिकायाः। न खलु कालस्[27]तदभावाद[28]स्तिकाय इति सामर्थ्याद[29]वसीयत इति ॥

[२३] अत्रास्तिकायत्वेनानुक्तस्यापि कालस्यार्थापन्नत्वं द्योतितं । इह हि जीवानां पुद्गलानां च सत्तास्वभावत्वादस्ति प्रतिक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यैकवृत्तिरूपः परिणामः। स[30] खलु सहकारिकारण-

१ निष्पन्नेषु. २ पर्य्याये. ३ अविद्यमानोत्पत्तिर्न. ४ बहुकालानुवर्त्तिनि. ५ अतिक्रान्ते. ६ विनाशं गते सति. ७ पूर्वमनुत्पन्ने. ८ आच्छादितानाच्छादितः. ९ आरोपिता. १० अनुमानं करोति संकल्पयति प्रमाणयति वा. ११ वेणुदण्डस्य. १२ सर्वस्मिन्नूर्ध्वाधोभागे. १३ प्रलिप्तत्वम्. १४ चिन्तयन्ती. १५ अनुमानं करोति. १६ तस्य जीवस्य. १७ सर्वस्मिन् जीवद्रव्यज्ञानावरणादित्वम्. १८ चित्ररचनासंतानः. १९ पर्याया-भावान्वयः इति पाठान्तरम्. २० अभिप्रायः. २१ तस्य जीवस्य. २२ पर्य्यायोत्पादकत्वमुक्तम्. २३ अविद्यमानस्य. २४ गौणत्वेन. २५ उच्छेदयति. २६ असद्रूपेणावस्थितम्. २७ कालः खल्वस्तिकाय इति बलात्कारेणाङ्गीक्रियते न व्यवह्रियते इत्यर्थः. २८ प्रदेशप्रचयात्मकस्याभावात् कायत्वाभावात्. २९ निश्चीयते. ३० स परिणामः.

सद्भावे[1] दृष्टः। गतिस्थित्यवगाहपरिणामवत्। यस्तु सहकारिकारणं स कालस्तत्परिणामान्यथानुपपत्तिगम्यमानत्वादनुक्तोऽपि निश्चयकालोऽस्तीति निश्चीयते। यस्तु निश्चयकालपर्य्यायरूपो व्यवहारकालः स जीवपुद्गलपरिणामेनाभिव्यज्यमानत्वात्[2] तदायत्त[3] एवाभिगम्यत एवेति॥

[२४–२५] अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं द्योतितम्। परमाणुप्रचलनायत्तः समयः, नयनपुटघटनायत्तो निमिषः, तत्संख्याविशेषतः काष्ठा[4] कला[5] नाडी[6] च। गगनमणिगमनायत्तो दिवारात्रः[7]। तत्संख्याविशेषतः मासः, ऋतुः, अयनं, संवत्सरः इति। एवंविधो हि व्यवहारकालः केवलकालपर्यायमात्रत्वेनावधारयितुमशक्यत्वात् परायत्त इत्युपमीयत इति॥

[२६] अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित् परायत्तत्वे सदुपपत्तिरुक्ता। इह हि व्यवहारकाले निमिषसमयादौ अस्ति तावत् चिर इति क्षिप्र इति संप्रत्ययः। स खलु दीर्घह्रस्वकालनिबन्धनं प्रमाणमन्तरेण न संभाव्यते। तदपि प्रमाणं पुद्गलद्रव्यपरिणाममन्तरेण नावधार्यते। ततः परिणामद्योत्यमानत्वाद्व्यवहारकालो निश्चयेनानन्याश्रितोऽपि प्रतीत्यभाव इत्यभिधीयते। तदत्रास्तिकायसामान्यप्ररूपणायामस्तिकायत्वाभावात्साक्षादनुपन्यस्यमानोऽपि जीवपुद्गलपरिणामान्यथानुपपत्त्या निश्चयरूपस्तत्परिणामायत्ततया व्यवहाररूपः कालोऽस्तिकायपञ्चकवल्लोकरूपेण परिणत इति खरतरदृष्टयाभ्युपगम्यत इति॥

इति समयव्याख्यायामन्तर्नीति-षड्द्रव्य-पञ्चास्तिकायसामान्यव्याख्यानरूपः पीठबन्धः समाप्तः॥

अथामीषामेव विशेषव्याख्यानम्।

तत्र तावज्जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं। भट्टमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिः।

[२७] अत्र संसारावस्थस्याऽऽत्मनः सोपाधि निरुपाधि च स्वरूपमुक्तं। आत्मा हि निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः[10]। व्यवहारेण द्रव्यप्राणधारणाज्जीवः। निश्चयेन चिदात्मकत्वाद् व्यवहारेण चिच्छक्तियुक्तत्वाच्चेतयिता[11]। निश्चयेनापृथग्भूतेन व्यवहारेण पृथग्भूतेन चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेनोपलक्षितत्वादुपयोगविशेषितः[12]। निश्चयेन भावकर्मणां व्यवहारेण द्रव्यकर्मणामास्रवणबन्धनसंवरणनिर्जरणमोक्षणेषु स्वयमीशत्वात्[13] प्रभुः। निश्चयेन[14] पौद्गलिककर्मनिमित्तात्मपरिणामानां व्यवहारेणात्मपरिणामनिमित्तपौद्गलिककर्मणां कर्तृत्वात्[15] कर्त्ता। निश्चयेन शुभाशुभकर्म्मनिमित्तसुखदुःखपरिणामानां

---

१ अस्तित्वे सति. २ प्रकटीक्रियमाणत्वात्. ३ जीवपुद्गलपरिणामाधीन एव गम्यते. ४ पञ्चदशनिमिषैः काष्ठा. ५ विंशतिकाष्ठाभिः कला. ६ साधिकविंशतिकलाभिः घटिका. ७ त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः. ८ पञ्चास्तिकायानां. ९ सत्तासुखबोधचैतन्यात्. १० आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सुखसत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्जीवति, तथाचाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति। तथैवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति. ११ शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथैवाशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया वाऽशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति. १२ निश्चयेन केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धोपयोगेन तथैवाशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति. १३ समर्थत्वात्. १४ शुद्धनिश्चयेन शुद्धभावानां परिणामानां तथैवाशुद्धनिश्चयेन पौद्गलिककर्मनिमित्तात्परिणामानां रागद्वेषमोहानां कर्तृत्वात् कर्त्ता. १५ निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणमनसमर्थत्वात्तथैवाशुद्धनिश्चयेन संसारसंसारकारणरूपाशुद्धपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति। भावकर्मरूपरागादिभावानां तथाचानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मणो धर्मादीनां कर्तृत्वात् कर्त्ता भवति.

व्यवहारेण शुभाशुभकर्मसंपादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वाद्भोक्ता[1] । निश्चयेन लोकमात्रोऽपि विशिष्टावगाहपरिणामशक्तियुक्तत्वात् नामकर्मनिर्वृत्तमणुमहच्च शरीरमधितिष्ठन् व्यवहारेण देहमात्रो[2] व्यवहारेण कर्मभिः सहैकत्वपरिणामान्मूर्तोऽपि निश्चयेन नीरूपस्वभावत्वान्नहि मूर्तः[3] । निश्चयेन पुद्गलपरिणामानुरूपचैतन्यपरिणामात्माभिर्व्यवहारेण चैतन्यपरिणामानुरूपपुद्गलपरिणामात्मभिः कर्मभिः संयुक्तत्वात्कर्मसंयुक्त[4] इति ॥

[२८] अत्र मुक्तावस्थस्यात्मनो निरुपाधि स्वरूपमुक्तम् । आत्मा हि परद्रव्यत्वात्कर्मरजसा साकल्येन[5] यस्मिन्नेव क्षणे[6] मुच्यते तस्मिन्नेवोर्ध्वगमनस्वभावत्वाल्लोकान्तमधिगम्य परतो गतिहेतोरभावादवस्थितः केवलज्ञानदर्शनाभ्यां स्वरूपभूतत्वादमुक्तोऽनन्तमतीन्द्रियं सुखमनुभवति । मुक्तस्य चास्य भावप्राणधारण[7]लक्षणं जीवत्वं, चिद्रूपलक्षणं चेतयितृत्वं, चित्परिणामलक्षणं उपयोगः, निर्वर्तित[8]समस्ताधिकारशक्तिमात्रं प्रभुत्वं, समस्तवस्त्वसाधारणस्वरूपनिर्वर्तनमात्रं कर्तृत्वं, स्वरूपभूतस्वातन्त्र्यलक्षणसुखोपलम्भरूपं भोक्तृत्वं, अतीतानन्तरशरीरपरिमाणावगाह[9]परिणामरूपं देहमात्रत्वं, उपाधिसंबन्धविविक्तमात्यन्तिकममूर्तत्वं । कर्मसंयुक्तत्वं तु द्रव्यभावकर्मविप्रमोक्षान्न भवत्येव । द्रव्यकर्माणि हि पुद्गलस्कन्धाभावकर्माणि तु चिद्विवर्ताः[10] । [11]विवर्तते हि चिच्छक्तिरनादिज्ञानावरणादिकर्मसंपर्क[12]कूणितप्रचारा परिच्छेद्य[13]स्य विश्वस्यैकदेशेषु क्रमेण व्याप्रियमाणा । यदा तु ज्ञानावरणादिकर्मसंपर्कः प्रणश्यति तदा परिच्छेद्यस्य विश्वस्य सर्वदेशेषु युगपद्व्यापृतौ कथंचित्कौटस्थ्य[15]मवाप्य विषयान्तर[16]मनाप्नुवन्ती न विवर्तते । स खल्वेष निश्चितः सर्वज्ञसर्वदर्शित्वोपलम्भः । अयमेव द्रव्यकर्मनिबन्धनभूतानां भावकर्मणां कर्तृत्वोच्छेदः । अयमेव च विकारपूर्वकानुभवाभावादौपाधिकसुखदुःखपरिणामानां भोक्तृत्वोच्छेदः । इदमेव चानादिविवर्तखेदविच्छित्तिसुस्थितानन्तचैतन्यस्यात्मनः स्वतन्त्रस्वरूपानुभूतिलक्षणसुखस्य भोक्तृत्वमिति ॥

[२९] इदं सिद्धस्य निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखसमर्थनम् । आत्मा हि ज्ञानदर्शनसुखस्वभावः संसारावस्थायामनादिकर्मक्लेशसंकोचितात्मशक्तिः परद्रव्यसंपर्केण क्रमेण किंचित्किंचिज्जानाति पश्यति पर[17]प्रत्ययं मूर्तसंबन्धं सव्याबाधं सान्तं सुखमनुभवति च । यदा त्वस्य[18] कर्मक्लेशाः सामस्त्येन प्रणश्यन्ति, तदाऽनर्गलाऽसंकुचितात्मशक्तिरसहायः स्वयमेव युगपत्समग्रं जानाति, पश्यति, स्वप्रत्यय[19]ममूर्तसंबन्धमव्याबाधमनन्तसुखमनुभवति च । ततः सिद्धस्य समस्तं स्वयमेव जानतः, पश्यतः, सुखमनुभवतश्च, स्वं न परेण प्रयोजनमिति ॥

[३०] जीवत्वगुणव्याख्येयम् । इन्द्रियबलाः पुरूच्छ्वासलक्षणा हि प्राणाः । तेषु[20] चित्सामान्यान्वयिनो

---

१ शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मोत्थवीतरागपरमानन्दरूपसुखस्य तथैवाशुद्धनिश्चयेनेन्द्रियजनितसुखदुःखानां तथाचोपचरितासद्भूतव्यवहारेण सुखदुःखसाधकेष्टानिष्टाशनपानादिवहिरङ्गविषयाणां च भोक्तृत्वात् भोक्ता भवति. २ निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमितोऽपि व्यवहारेण शरीरनामकर्मोदयजनिताऽणुमहच्छरीरप्रमाणत्वात्स्वदेहमात्रो भवति. ३ असद्भूतव्यवहारेणानादिकर्मबन्धसहितत्वान्मूर्तोऽपि शुद्धनिश्चयेन वर्णादिरहितत्वादमूर्तोऽपि भवति. ४ शुद्धनिश्चयेन कर्मरहितोऽप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मसंयुक्तत्वात् तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिरूपभावकर्मसंयुक्तो भवति. ५ द्रव्यभावरूपेण. ६ समये. ७ सत्तासुखबोधचैतन्यलक्षणं. ८ रचित—. ९ विस्तार—. १० पर्यायाः. ११ व्यावुट्टनं करोति. १२ संकोचित—. १३ ज्ञेयस्य. १४ चिच्छक्तिः. १५ निश्चलत्वं प्राप्य. १६ ज्ञेयरूपं परद्रव्यं अनाप्नुवन्ती. १७ पराधीनं वा पराश्रितं सुखं. १८ आत्मनः. १९ स्वात्मोत्थं सुखम्. २० प्राणेषु.

भावप्राणाः, पुद्गलसामान्यान्वयिनो द्रव्यप्राणाः, तेषामु[1]भयेषामपि त्रिष्वपि कालेष्वनवच्छिन्नसंतानत्वेन धारणात्संसारिणो जीवत्वं। मुक्तस्य तु केवलानामेव भावप्राणानां धारणात्तदवसेयमिति ॥

[३१–३२] अत्र जीवानां स्वाभाविकं प्रमाणं मुक्तामुक्तविभागश्चोक्तः। जीवा ह्यविभागैकद्रव्यत्वाल्लोकप्रमाणैकप्रदेशाः। अगुरुलघवो गुणास्तु तेषा[2]मगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबन्धनस्य स्वभावस्याविभाग[3]परिच्छेदाः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानयोऽनन्ताः। प्रदेशास्तु अविभागपरमाणुपरिच्छिन्नसूक्ष्मांशरूपा असंख्येयाः। एवंविधेषु तेषु केचित्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण सर्वलोकव्यापिनः। केचित्तु तदव्यापिनः इति। अथ ये तेषु मिथ्यादर्शनकषाययोगैरनादिसन्ततिप्रवृत्तैर्युक्तास्ते संसारिणो ये विमुक्तास्ते सिद्धास्ते च प्रत्येकं बहव इति ॥

[३३] एष देहमात्रत्वदृष्टान्तोपन्यासः। यथैव हि पद्मरागरत्नं क्षीरे क्षिप्तं स्वतो व्यतिरिक्तप्रभास्कन्धेन तद् व्याप्नोति क्षीरं। तथैव हि जीवः अनादिकषायमलीमसत्वमूले शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशैस्तदभिव्याप्नोति शरीरम्। यथैव च तत्र क्षीरेऽग्निसंयोगादुद्वलमाने तस्य पद्मरागरत्नस्य प्रभास्कन्ध उद्वलते पुनर्निविशमाने निविशते च। तथैव च तत्र शरीरे विशिष्टाऽऽहारादिवशादुत्सर्पति तस्य जीवस्य प्रदेशाः उत्सर्पन्ति पुनरपसर्पति अपसर्पन्ति च। यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र प्र[4]भूतक्षीरे क्षिप्तं स्वप्रभास्कन्धविस्तारेण तद् व्याप्नोति प्रभूतक्षीरम्। तथैव हि जीवोऽन्य[5]त्र महति शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशविस्तारेण तद् व्याप्नोति महच्छरीरं। यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र स्तोकक्षीरे निक्षिप्तं स्वप्रभास्कन्धोपसंहारेण तद् व्याप्नोति स्तोकक्षीरं। तथैव च जीवोऽन्यत्राणुशरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशोपसंहारेण तद् व्याप्नोत्यणुशरीरमिति ॥

[३४] अत्र जीवस्य देहाद्देहान्तरेऽस्तित्वं, देहात्पृथग्भूतत्वं, देहान्तरसंचरणकारणं चोपन्यस्तम्। आत्मा हि संसारावस्थायां क्रमवर्तिन्यनवच्छिन्नशरीरसंताने यथैकस्मिन् शरीरे वृत्तः, तथा क्रमेणान्येष्वपि शरीरेषु वर्तत इति तस्य सर्वत्रास्तित्वम्। न चैकस्मिन् शरीरे नीरक्षीरमिवैक्ये[6]न स्थितोऽपि भिन्नस्वभावत्वात्तेन सहैक इति। तस्य देहात्पृथग्भूतत्वं अनादिबन्ध[7]नोपाधिविवर्तितविविधाऽध्यवसायविशिष्टत्वात्तन्मूलकर्मजालमलीमसत्वाच्च चेष्टमान[8]स्या[9]ऽऽत्मनस्तथाविधाऽध्यवसायकर्मनिर्वर्तितेतरशरीरप्रवेशो भवतीति तस्य देहान्तरसंचरणकारणोपन्यास इति ॥

[३५] सिद्धानां जीवत्वदेहमात्रत्वव्यवस्थेयम्। सिद्धानां हि द्र[10]व्यप्राणधारणात्मको मुख्यत्वेन जीवस्वभावो नास्ति। न च जीवस्वभावस्य सर्वथा भावोऽस्ति भावप्रा[11]णधारणात्मकस्य जीवस्वभावस्य मुख्यत्वेन सद्भावात्। नच तेषां[12] शरीरेण सह नीरक्षीरयोरिवैक्येन वृत्तिः। यतस्ते तत्संपर्क[13]हेतुभूतकषाययोगविप्रयोगादतीतानन्तरशरीरमात्रावगाहपरिणतत्वेऽप्यत्यन्तभिन्न[14]देहाः। वाचां गोचरमतीतश्च तन्म[15]हिमा। यतस्ते लौकिकप्राणधारणमन्तरेण शरीरसंबन्धमन्तरेण च परिप्राप्तनिरुपाधिस्वरूपाः सततं प्रत[16]पन्तीति ॥

---

१ अशुद्धनिश्चयेन भावरूपाणां, उपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपाणाम्. २ जीवानाम्. ३ अभिन्नाः. ४ प्रचुरदुग्धे. ५ अन्यस्मिन्. ६ एकस्वरूपत्वेन. ७ अनादि च तदेव बंधनं च तस्योपाधिः तेन विवर्तिताः निष्पादिताः ते च ते विविधा नानाप्रकाराः अध्यवसाया रागद्वेषमोहपरिणतिरूपाश्च तैर्विशिष्टत्वात्संयुक्तत्वात्. ८ रागद्वेषमोहरूपेण विक्रियां कुर्वाणस्य. ९ जीवस्य. १० द्रव्यप्राणाः इन्द्रियबलाः पुरुच्छ्वासलक्षणात्मकाः. ११ भावप्राणस्य सत्तासुखबोधचैतन्यलक्षणस्य. १२ तेषां सिद्धानां. १३ तस्य शरीरस्य संपर्कः संयोगः तत्संपर्कहेतुभूताश्च ते कषाययोगाश्च तेषां विप्रयोगो विनाशस्तस्मात्. १४ अतिशयेन त्यक्तदेहाः. १५ तेषां सिद्धानां महिमा तन्महिमा. १६ प्रकाशयन्ति.

[३६] सिद्धस्य कार्यकारणभावनिरासोऽयम् । यथा संसारी जीवो भावकर्मरूपयाऽऽत्मपरिणामसंतत्या द्रव्यकर्म्मरूपया च पुद्गलपरिणामसंतत्या कारणभूतया तेन तेन देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपेण कार्यभूत उत्पद्यते न तथा सिद्धरूपेणापीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमुत्पद्यमानो नान्यतः कुतश्चिदुत्पद्यत इति । यथैव च स एव संसारी भावकर्म्मरूपामात्मपरिणामसंततिं, द्रव्यकर्मरूपां च पुद्गलपरिणामसंततिं कार्यभूतां कारणभूतत्वेन निर्वर्तयन् तानि तानि देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपाणि कार्याण्युत्पादयत्यात्मनो न तथा सिद्धरूपमपीति । सिद्धो ह्युभयकर्म्मक्षये स्वयमात्मानमुत्पादयन् नान्यत्किञ्चिदुत्पादयति ॥

[३७] अत्र जीवाभावो मुक्तिरिति निरस्तम् । द्रव्यं द्रव्यतया शा[1]श्वतमिति, नित्ये द्रव्ये पर्यायाणां प्रतिसमयमुच्छे[2]द इति, द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपर्यायैः भा[3]व्यमिति, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपर्य्यायैरभा[4]व्यमिति, द्रव्यमन्यद्रव्यैः सह सदा शू[5]न्यमिति, द्रव्यं स्वद्रव्येण सदाऽशू[6]न्यमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनन्तं ज्ञा[7]नं क्वचित्सान्तं ज्ञा[8]नमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनन्तं क्वचित्सान्तमज्ञानमिति । एतदन्यथानुपपद्यमानं मु[9]क्तौ जीवस्य सद्भावमावेदयतीति ॥

[३८] चेतयितृत्वगुणव्याख्येयम् । ए[10]के हि चेतयितारः प्रकृष्टतरमोहमलीमसेन प्रकृष्टतरज्ञानावरणमुद्रिता[11]नुभावेन चेतकस्वभावेन प्रकृष्टतरवीर्यान्तरायाऽव[12]सादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखरूपं कर्मफलमेव प्राधान्येन चेतयन्ते । अ[13]न्ये तु प्रकृष्टतरमोहमलीमसेनापि प्रकृष्टज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन मनाग्वीर्यान्तरायक्षयोपशमासादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखानुरूपकर्मफलानुभवनसंवलितमपि कार्यमेव प्राधान्येन चेतयन्ते । अ[14]न्यतरे तु प्रक्षालितसकलमोहकलङ्केन समुच्छिन्नकृत्स्नज्ञानावरणतयाऽत्यन्तन्मुद्रितसमस्तानुभावेन चेतकस्वभावेन समस्तवीर्यान्तरायक्षयासादितानन्तवीर्या अपि निर्ज्जीर्णकर्मफलत्वादत्यन्तकृतकृत्यत्वाच्च स्वतो व्यतिरिक्तं स्वाभाविकं सुखं ज्ञानमेव चेतयन्त इति ॥

[३९] अत्र कः किं चेतयत इत्युक्तं । चेतयन्तेऽनुभवन्ति उपलभन्ते विदन्तीत्येकार्थाश्चेतनानुभूत्युपलब्धिवेदनानामेकार्थत्वात् । तत्र स्थावराः कर्मफ[15]लं चेतयन्ते । त्र[16]साः कार्यं चेतयन्ते । केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयन्त इति ॥

अथोपयोगगुणव्याख्यानम् ।

[४०] आत्मनश्चै[17]तन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः । सोऽपि द्विविधः । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयो-

---

१ सिद्धावस्थायां तावट्टङ्कोत्कीर्णज्ञापकैकरूपेण विनश्वरत्वाद्द्रव्यरूपेण शाश्वतस्वरूपमस्ति. २ अथ पर्य्यायरूपेणागुरुलघुकगुणपट्स्थानगतहानिवृद्ध्यपेक्षयोच्छेदोऽस्ति. ३ निर्विकारचिदानन्दैकस्वभावपरिणामेन भवनं भव्यत्वं. ४ अतीतमिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामेन भवनं अपरिणमनमभव्यत्वं च. ५ स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वम्. ६ निजपरमात्मतत्वानुगतद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेतरमशून्यत्वम्. ७ समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानम्. ८ विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थाज्ञाने परिज्ञानादविज्ञानम्. ९ मोक्षावस्थायामिदं नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते । तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोऽस्ति. १० स्थावरकायाः. ११ आच्छादितात्मतमाहात्म्येन. १२ आच्छादित—. १३ द्वीन्द्रियादयः. १४ सिद्धाः. १५ अव्यक्तसुखदुःखानुभवरूपं शुभाशुभकर्मफलमनुभवन्ति. १६ द्वीन्द्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानन्दैकस्वभावमात्मसुखमलभमानाः सन्तो विशेपरागद्वेषानुरूपया कार्यचेतनया सहितमनुभवन्ति. १७ चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति, अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोऽयं घटोऽयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयतीति चैतन्यानुविधायी.

गश्च। तत्र विशेषग्राहि ज्ञानं। सामान्यग्राहि दर्शनम्। उपयोगश्च सर्वदा जीवादपृथग्भूत एव। एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादिति ॥

[४१] ज्ञानोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्। तत्राभिनिवोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानमवधि[1]ज्ञानं, मनःपर्य्यय[2]ज्ञानं, केवलज्ञानं, कुमतिज्ञानं, कुश्रुतज्ञानं, विभङ्गज्ञानमिति नामाभिधानम्। आत्मा ह्यनन्तसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धज्ञानसामान्यात्मा। स खल्वनादिज्ञानावरणकर्म्मच्छन्नप्रदेशः सन्, यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्वाच्च मूर्त्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणाऽवबुध्यते तदाभिनिवोधिकज्ञानम्। यत्तदावरणक्षयोपशमादनिन्द्रियावलम्वाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तत् श्रुतज्ञानं। यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तदवधिज्ञानम्। यत्तदावरणक्षयोपशमादेव परमनोगतं मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्येत तन्मनःपर्ययज्ञानम्। यत्सकलावरणात्यन्तक्षये केवल एव मूर्त्तामूर्तद्रव्यं सकलं विशेषेणावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलज्ञानम्। मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमाभिनिवोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम्। मिथ्यादर्शनोदयसहचरितं श्रुतज्ञानमेव कुश्रुतज्ञानं। मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमवधिज्ञानमेव विभङ्गज्ञानमिति स्वरूपाभिधानम् ॥ इत्थं मतिज्ञानादिज्ञानोपयोगाष्टकं व्याख्यातम् ॥ ७ ॥

[४२] दर्शनोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्। चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति नामाभिधानम्। आत्मा ह्यनन्तसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धदर्शनसामान्यात्मा। स खल्वनादिदर्शनावरणकर्म्मावच्छन्नप्रदेशः सन् यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुरिन्द्रियावलम्वाच्च मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तच्चक्षुर्दर्शनं[3]। यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुर्वर्जितेतरचतुरिन्द्रियानिन्द्रियावलम्वाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदचक्षुर्दर्शनं[4]। यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदवधिदर्शनम्[5]। यत्सकलावरणात्यन्तक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं सामान्येनावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलदर्शनमिति[6] स्वरूपाभिधानम् ॥

[४३] एकस्यात्मनोऽनेकज्ञानात्मकत्वसमर्थनमेतत्। न तावज्ज्ञानी[7] ज्ञानात् पृथग्भवति, द्वयो[8]रप्येकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात्। द्वयोरप्यभिन्नप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात्। द्वयोरप्येकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात्। द्वयोरप्येकस्वभावत्वेनैकभावत्वात्। न चैवमुच्यमानेऽप्येकस्मिन्नात्मन्याभिनिवोधिकादीन्यनेकानि ज्ञानानि विरुध्यन्ते द्रव्यस्य विश्वरूपत्वात्। द्रव्यं हि सहक्रमप्रवृत्तानन्तगुणपर्य्यायाधारतयाऽनन्तरूपत्वादेकमपि विश्वरूपमभिधीयत इति ॥

[४४] द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे, गुणानां च द्रव्याद्भेदे दोषोपन्यासोऽयम्। गुणा हि क्वचिदाश्रिताः।

---

१ अव समन्तात् द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमितित्वेन धीयते ध्रियते इत्यवधिः. २ परकीयमनोगतार्थं उपचारात् मनः, मनः पर्येति गच्छतीति मनःपर्ययः. ३ अयमात्मा निश्चयनयेनाखण्डैकदर्शनस्वभावोऽपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा कम्पितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति वहिरङ्गचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलम्वेन यन्मूर्तवस्तुनि निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनम्. ४ शेषेन्द्रियनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति वहिरङ्गचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलम्वनेन यन्मूर्तामूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षुर्दर्शनम्. ५ स एवात्माऽवधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं. ६ रागादिदोषरहितं चिदानन्दैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निर्विकल्पध्यानेन निरवशेषकेवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्ति वस्तु वस्तुगतसत्तासामान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधनमनन्तविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवति. ७ आत्मा. ८ आत्मज्ञानयोः.

यत्राश्रितास्तद्द्रव्यम्[1]। तच्चेदन्यद्गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रितास्तद्द्रव्यं। तदपि अन्यच्चेद्गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रिताः तद्द्रव्यम्। तदप्यन्यदेव गुणेभ्यः। एवं द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे भवति द्रव्यानन्त्यम्[2]। द्रव्यं हि गुणानां समुदायः। गुणाश्चेदन्ये समुदायात्, कोनाम समुदायः। एवं गुणानां द्रव्याद् भेदे भवति द्रव्याभाव इति ॥

[४५] द्रव्यगुणानां स्वोचितानन्यत्वोक्तिरियम्। अविभक्तप्रदेशत्वलक्षणं द्रव्यगुणानामनन्यत्वमभ्युपगम्यते[3]। विभक्तप्रदेशत्वलक्षणं त्वन्यत्वमनन्यत्वं च नाभ्युपगम्यते। तथा हि—यथैकस्य परमाणोरेकेनात्मप्रदेशेन[4] सह विभक्तत्वादनन्यत्वं। तथैकस्य परमाणोस्तद्वर्तिनां स्पर्शरसगन्धवर्णादिगुणानां चाविभक्तप्रदेशत्वादनन्यत्वं। यथा त्वत्यन्तविप्रकृष्टयोः[5] सह्यविन्ध्ययोरत्यन्तसंनिकृष्टयोश्च[6] मिश्रितयोस्तोयपयसोर्विभक्तप्रदेशत्वलक्षणमन्यत्वमनन्यत्वं च। न तथा द्रव्यगुणानां विभक्तप्रदेशत्वाभावादन्यत्वमनन्यत्वं चेति ॥

[४६] व्यपदेशादीनामेकान्तेन द्रव्यगुणान्यत्वनिबन्धनत्वमत्र प्रत्याख्यातम्। यथा देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे षष्ठीव्यपदेशः, तथा वृक्षस्य शाखा द्रव्यस्य गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। यथा देवदत्तः फलमङ्कुशेन धनदत्ताय वृक्षाद्वाटिकायामवचिनोतीत्यन्यत्वे कारकव्यपदेशः। तथा मृत्तिका घटभावं स्वयं स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् करोतीत्याऽऽत्माऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मने आत्मन आत्मनि जानातीत्यनन्यत्वेऽपि। यथा प्रांशोर्देवदत्तस्य[7] प्रांशुर्गौरित्यन्यत्वे संस्थानं। तथा प्रांशोर्वृक्षस्य[9] प्रांशुः[10] शाखाभरो, मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। यथैकस्य देवदत्तस्य दश गाव इत्यन्यत्वे संख्या। तथैकस्य वृक्षस्य दश शाखाः, एकस्य द्रव्यस्यानन्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। यथा गोष्ठे[11] गाव इत्यन्यत्वे विषयः। तथा वृक्षे शाखाः, द्रव्ये गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। ततो न व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां वस्तुत्वेन भेदं साधयन्तीति ॥

[४७] वस्तुत्वभेदाभेदोदाहरणमेतत्। यथा धनं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तम् भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य, भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य, भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य, भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य, पुरुषस्य धनीति व्यपदेशं[12] पृथक्त्वप्रकारेण कुरुते। यथा च ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्याभिन्नसंस्थानं अभिन्नसंस्थानस्याभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्याभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य ज्ञानीति व्यपदेशमेकत्वप्रकारेण कुरुते। तथान्यत्राऽपि। यत्र द्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशोऽस्ति तत्र पृथक्त्वं, यत्राभेदेन तत्रैकत्वमिति ॥

[४८] द्रव्यगुणानामर्थान्तरभूतत्वे दोषोऽयम्। ज्ञानी ज्ञानाद्यद्यर्थान्तरभूतस्तदा स्वकरणांशमन्तरेण[13] परशुरहितदेवदत्तवत्करणव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानोऽचेतन एव स्यात्। ज्ञानञ्च यदि ज्ञानिनोऽर्थान्तरभूतं तदा तत्कर्त्रंशमन्तरेण[14] देवदत्तरहितपरशुवत्तत्कर्तृत्वव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानमचेतन-

---

१ यस्मिन्वस्तुनि आश्रितास्तद्द्रव्यं स्यात्. २ गुणेभ्यो द्रव्यस्य भेदे सत्येकद्रव्यस्याप्यानन्त्यं प्राप्नोति। अथवा द्रव्यात्सकाशाद्यद्यन्ये भिन्ना गुणा भवन्ति तदा द्रव्यस्याभावं प्रकुर्वन्ति. ३ "अङ्गीकारोऽभ्युपगमः" इति हैमः। तेन अङ्गीक्रियते इत्यर्थः. ४ स्वकीयप्रदेशेन. ५ अत्यन्तभिन्नयोः. ६ मिलितयोः. ७ पुष्टस्य. ८ पुष्टः. ९ पुष्टस्य वा महतः. १० महान्. ११ गावः तिष्ठन्त्यत्रेति गोष्ठं गवांस्थानं तस्मिन्. १२ संज्ञाम्. १३ ज्ञानं विना. १४ यथाऽग्नेर्गुणिनः सकाशादत्यन्तभिन्नः सन्नुष्णत्वलक्षणगुणोऽग्नेर्दहनक्रियां प्रत्ययमसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति। तथा जीवात् गुणिनः सकाशादत्यन्तभिन्नो ज्ञानगुणः पदार्थपरिच्छित्तिं प्रत्ययमसमर्थः सन्नियमेन जडो भवति। यथोष्णगुणादत्यन्तभिन्नः सन् वह्निर्गुणी दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति। तथा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्नः सन् जीवो गुणी पदार्थपरिच्छित्तिं प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन जडोभवति। अथ मतं। यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवति इति नैव वक्तव्यं।

मेव स्यात् । न च ज्ञानज्ञानिनोर्युतसिद्धयोस्संयोगेन चेतनत्वं द्रव्यस्य निर्विशेषस्य गुणानां निराश्रयाणां शून्यत्वादिति ॥

[४९] ज्ञानज्ञानिनोः समवायसंबन्धनिरासोऽयम्[1]। न[2] खलु ज्ञानादर्थान्तरभूतः पुरुषो ज्ञानसमवायात् ज्ञानी भवतीत्युपपन्नं । स खलु ज्ञानसमवायात् पूर्वं किं ज्ञानी किमज्ञानी? । यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो निष्फलः । अथाज्ञानी तदा किमज्ञानसमवायात्, किमज्ञानेन सहैकत्वात्? । न तावदज्ञानसमवायात् । अथाज्ञानिनो ह्यज्ञानसमवायो निष्फलः । ज्ञानित्वन्तु ज्ञानसमवायाभावात् नास्त्येव । ततोऽज्ञानीति वचनमज्ञानेन सहैकत्वमवश्यं साधयत्येव । सिद्धे चैवमज्ञानेन सहैकत्वे ज्ञानेनाऽपि सहैकत्वमवश्यं सिद्ध्यतीति ॥

[५०] [3]समवायस्य पदार्थान्तरत्वनिरासोऽयम् । द्रव्यगुणानामेकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादनादिरनिधना सहवृत्तिर्हि समवर्तित्वम् । स एव समवायो जैनानाम् । तदेव संज्ञादिभ्यो भेदेऽपि वस्तुत्वेनाभेदादपृथग्भूतत्वम् । तदेव युतसिद्धिनिबन्धनस्यास्तित्वान्तरस्याभावादयुतसिद्धत्वम् । ततो द्रव्यगुणानां समवर्तित्वलक्षणसमवायभाजामयुतसिद्धिरेव, न पृथग्भूतत्वमिति[4] ॥

[५१–५२] दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकार्थपुरस्सरो द्रव्यगुणानामनर्थान्तरत्वव्याख्योपसंहारोऽयम् । वर्णरसगन्धस्पर्शा हि परमाणोः प्ररूप्यन्ते । ते च परमाणोरविभक्तप्रदेशत्वेनानन्यत्वेऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबन्धनैर्विशेषैरन्यत्वं प्रकाशयन्ति । एवं ज्ञानदर्शने अप्यात्मनि संबद्धे आत्मद्रव्यादविभक्तप्रदेशत्वेनाऽनन्येऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबन्धनैर्विशेषैः पृथक्त्वमासादयतः । स्वभावतस्तु नित्यमपृथक्त्वमेव बिभ्रतः ॥

इति उपयोगगुणव्याख्यानं समाप्तं ॥

अथ कर्तृत्वगुणव्याख्यानम् ।

तत्रादिगाथात्रयेण तदुपोद्घातः ।

[५३] जीवा हि निश्चयेन परभावानामकरणात् स्वभावानां कर्त्तारो भविष्यन्ति । तांश्च कुर्वाणाः किमनादिनिधनाः, किं सादिसनिधनाः, किं साद्यनिधनाः, किं तदाकारेण परिणताः, किमपरिणताः भविष्यन्तीत्याशङ्क्येदमुक्तम् । जीवा हि सहजचैतन्यलक्षणपारिणामिकभावेनाऽनादिनिधनाः । त एवौदयिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावैः सादिसनिधनाः । त एव क्षायिकभावेन साद्यनिधनाः । नच सादित्वात् सनिधनत्वं क्षायिकभावस्याशङ्क्यम्[6] । स[7] खलूपाधिनिर्वृत्तौ प्रवर्तमानः सिद्धभाव इव सद्भाव एव । जीवस्य सद्भावेन चानन्ता एव जीवाः प्रतिज्ञायन्ते । न च तेषामनादिनिधनसहजचैतन्यलक्षणैकभावानां सादिसनिधनानि साद्यनिधनानि भावान्तराणि नोपपद्यन्त इति वक्तव्यम् । ते खल्वनादिकर्ममलीमसाः पङ्कसंपृक्ततोयवत्तदाकारे परिणतत्वात्पञ्चप्रधानगुणप्रधानत्वेनैवानुभूयन्त इति ॥

छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितः पुरुषशक्तिविशेषस्त्वभ्यन्तरोपकरणं । शक्तेरभावे दात्रोपकरणे हि तद्व्यापारे च सति यथा छेदनक्रिया नास्ति, तथा प्रकाशोपाध्यायादिबहिरङ्गसहकारिसद्भावे सत्यभ्यन्तरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रियां न भवतीति.

१ अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यन्तभेदे सति समवायसंबन्धेनाप्येकत्वं कर्तुं नायातीति प्रतिपादयति. २ त्वया अङ्गीकृतं चेत्तर्हि शृणु. ३ अथ गुणगुणिनोः कथञ्चिदेकत्वं विहायान्यः कोऽपि समवायो नास्तीति समर्थयति. ४ एवं समवायनियमकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्. ५ कथञ्चिद्भिन्नत्वम् । ६ इति नाशङ्क्यम्. ७ क्षायिकभावः. ८ विनाशरहिताः. ९ कर्दमसंमिश्रजलवत्. १० यद्यपि स्वभावेन विशुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशात्कर्दमजलवदौदयिकादिभावपरिणता दृश्यन्ते.

[५४] जीवस्य भाववशात्सादिसनिधनत्वे साद्यनिधनत्वे च विरोधपरिहारोऽयम् । एवं हि पञ्चभिर्भावैः स्वयं परिणममानस्याऽस्य जीवस्य कदाचिदौदयिकेनैकेन मनुष्यत्वादिलक्षणेन भावेन सतो विनाशस्तथा परेणौदयिकेनैव देवत्वादिलक्षणेन भावेन असत उत्पादो भवत्येव । एतच्च 'न सतो विनाशो नासत उत्पाद' इति पूर्वोक्तसूत्रेण सह विरुद्धमपि न विरुद्धम् । यतो जीवस्य द्रव्यार्थिकनयादेशेन न सत्प्रणाशो नासदुत्पादः । तस्यैव पर्य्यायार्थिकनयादेशेन सत्प्रणाशो सदुत्पादश्च । न चैतदनुपपन्नम् । नित्ये जले कल्लोलानामनित्यत्वदर्शनादिति ॥

[५५] जीवस्य सदसद्भावोच्छित्त्युत्पत्तिनिमित्तोपाधिप्रतिपादनमेतत् । यथा हि जलराशेर्जलराशित्वेनासदुत्पादं सदुच्छेदं चाननुभवतश्चतुर्भ्यः ककुब्विभागेभ्यः क्रमेण वहमानाः पवमानाः कल्लोलानामसदुत्पादं सदुच्छेदं च कुर्वन्ति । तथा जीवस्याऽपि जीवत्वेन सदुच्छेदमसदुत्पत्तिं चाननुभवतः क्रमेणोदीयमानाः नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवनामप्रकृतयः सदुच्छेदमसदुत्पादं च कुर्वन्तीति ॥

[५६] जीवस्य भावोदयवर्णनमेतत् । कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः । अनुद्भूतिरुपशमः । उद्भूत्यनुद्भूती क्षयोपशमः । अत्यन्तविश्लेषः क्षयः । द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः । तत्रोदयेन युक्त औदयिकः । उपशमेन युक्त औपशमिकः । क्षयोपशमेन युक्तः क्षायोपशमिकः । क्षयेण युक्तः क्षयिकः । परिणामेन युक्तः पारिणामिकः । त एते पञ्च जीवगुणाः । तत्रोपाधिचतुर्विधत्वनिबन्धनाश्चत्वारः । स्वभावनिबन्धन एकः । एते चोपाधिभेदात् स्वरूपभेदाच्च भिद्यमाना बहुष्वर्थेषु विस्तार्यन्त इति ॥

[५७] जीवस्यौदयिकादिभावानां कर्तृत्वप्रकारोक्तिरियम् । जीवेन हि द्रव्यकर्म व्यवहारनयेनानुभूयते । तच्चानुभूयमानं जीवभावानां निमित्तमात्रमुपवर्ण्यते । तस्मिन्निमित्तमात्रभूते जीवेन कर्तृत्वभूतेनात्मनः कर्म्मभूतो भावः क्रियते । अमुना यो येन प्रकारेण जीवेन भावः क्रियते, स जीवस्तस्य भावस्य तेन प्रकारेण कर्त्ता भवतीति ॥

[५८] द्रव्यकर्मणां निमित्तमात्रत्वेनौदयिकादिभावकर्तृत्वमत्रोक्तम् । न खलु कर्मणा विना जीवस्योदयोपशमौ क्षयक्षायोपशमावपि विद्येते । ततः क्षायिकक्षायोपशमिकश्चौदयिकौपशमिकश्च भावः कर्मकृतोऽनुमन्तव्यः । पारिणामिकस्त्वनादिनिधनो निरुपाधिः स्वाभाविक एव । क्षायिकस्तु स्वभावव्यक्तिरूपत्वादनन्तोऽपि कर्मणः क्षयेनोत्पद्यमानत्वात् सादिरिति कर्मकृत एवोक्तः । औपशमिकस्तु कर्मणामुपशमे समुत्पद्यमानत्वादनुपशमे समुच्छिद्यमानत्वात् कर्मकृत एवेति । अथवा उदयोपशमक्षयक्षयोपशमलक्षणाश्चतस्रो द्रव्यकर्म्मणामेवावस्थाः । न पुनः परिणामलक्षणैकावस्थस्य जीवस्य । तत उदयादिसंजातानामात्मनो भावानां निमित्तमात्रभूततथाविधावस्थत्वेन स्वयं परिणमनाद्द्रव्यकर्मापि व्यवहारनयेनात्मनो भावानां कर्तृत्वमापद्यत इति ॥

[५९] जीवभावस्य कर्मकर्तृत्वे पूर्वपक्षोऽयम् । यदि खल्वौदयिकादिरूपो जीवस्य भावः कर्मणा क्रियते तदा जीवस्तस्य कर्त्ता न भवति । नच जीवस्याकर्तृत्वमिष्यते । ततः पारिशेष्येण द्रव्यकर्मणः कर्त्ताऽऽपद्यते । तत्तु कथं । यतो निश्चयनयेनात्मा स्वभावमुज्झित्वा नान्यत्किमपि करोतीति ॥

---

१ अविद्यमानस्य भावस्य. २ अनुपलभ्यमानस्य. ३ वायवः. ४ कर्म्मणां फलदानसमर्थतयाऽनुद्भूतिरनुदयः. ५ नीरागनिर्भरानन्दलक्षणप्रचण्डाखण्डज्ञानकाण्डपरिणतात्मभावनारहितेन मनोवचनकायव्यापाररूपकर्म्मकाण्डपरिणतेन च पूर्वं यदुपार्जितं ज्ञानावरणादि कर्म तदुदयागतं व्यवहारेणैव. ६ उपाधिचतुर्विधत्वं निबन्धनं कारणं येषां ते. ७ रागादिपरिणामानामुदयागतं द्रव्यकर्म व्यवहारेण कारणं दर्शयति.

[६०] पूर्वसूत्रोदितपूर्वपक्षसिद्धान्तोऽयम् । व्यवहारेण निमित्तमात्रत्वाज्जीवभावस्य कर्म कर्तृ, कर्मणोऽपि जीवभावः कर्त्ता । निश्चयेन तु न जीवभावानां कर्म कर्तृ, न कर्मणो जीवभावः । न च ते[1] कर्त्तारमन्तरेण संभूयेते । यतो निश्चयेन जीवपरिणामानां जीवः कर्त्ता, कर्मपरिणामानां कर्म कर्तृ इति ॥

[६१] निश्चयेन जीवस्य स्वभावानां कर्तृत्वं पुद्गलकर्मणामकर्तृत्वं चागमेनोपदर्शितमत्र इति ॥

[६२] अत्र निश्चयेनाभिन्नकारकत्वात् कर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूपकर्तृत्वमुक्तम् । कर्म खलु कर्मत्वप्रवर्तमानपुद्गलस्कन्धरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणं कर्मत्वगमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वत् प्राप्यकर्मत्वपरिणामरूपेण कर्मतां कलयत् पूर्वभावव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालम्बनादुपात्तापादानत्वमुपजायमानपरिणामरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसंप्रदानत्वमाधीयमानपरिणामाधारत्वाद्गृहीताधिकरणत्वं स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानं न कारकान्तरमपेक्षते[2] । एवं जीवोऽपि भावपर्य्यायेण[3] प्रवर्तमानात्मद्रव्यरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणो भावपर्य्यायगमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वन्, प्राप्यभावपर्य्यायरूपेण कर्मतां कलयन्, पूर्वभावपर्य्यायव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालम्बनादुपात्तापादानत्वः, उपजायमानभावपर्य्यायरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसंप्रदानत्वः, आधीयमानभावपर्य्यायाधारत्वाद्गृहीताधिकरणत्वः स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकान्तरमपेक्षते । अ[4]तः कर्मणः कर्तुर्नास्ति जीवः कर्ता, जीवस्य कर्तुर्नास्ति कर्म कर्तृ निश्चयेनेति ॥

[६३] कर्मजीवयोरन्योन्याकर्तृत्वेऽन्यदत्तफलान्योपभोगलक्षणदूषणपुरःसरः पूर्वपक्षोऽयम् ॥

अथ सिद्धान्तसूत्राणि ।

[६४] कर्मयोग्यपुद्गला अञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्गक[5]न्यायेन सर्वलोकव्यापित्वाद्यत्रात्मा तत्रानानीता एवावतिष्ठन्त इत्यत्रोक्तम् ॥

[६५] अन्याकृतकर्मसंभूतिप्रकारोक्तिरियम् । आत्मा हि संसारावस्थायां पारिणामिकचैतन्यस्वभावमपरित्यजन्नेवानादिबन्धनबद्धत्वादनादिमोहरागद्वेषस्निग्धैरविशुद्धैरेव भावैर्विवर्तते । स[6] खलु यत्र यदा मोहरूपं, रागरूपं, द्वेषरूपं वा स्वस्य भावमारभते । तत्र तदा तं[7] मेव निमित्तीकृत्य जीवप्रदेशेषु परस्परावगाहेनानुप्रविष्टाः स्वभावैरेव पुद्गलाः कर्मभावमापद्यन्त इति ॥

[६६] अनन्यकृतत्वं कर्मणां वैचित्र्यस्यात्रोक्तम् । यथा हि स्वयोग्यचन्द्रार्कप्रभोपलम्भे संध्याभ्रेन्द्रचापपरिवेषप्रभृतिभिर्बहुभिः प्रकारैः पुद्गलस्कन्धविकल्पाः कर्त्र[8]न्तरनिरपेक्षा एवोत्पद्यन्ते । तथा स्वयोग्यजीवपरिणामोपलम्भे ज्ञानावरणप्रभृतिभिर्बहुभिर्प्रकारैः कर्माण्यपि कर्त्रन्तरनिरपेक्षाण्येवोत्पद्यन्ते इति ॥

[६७] निश्चयेन जीवकर्मणोश्चैककर्तृत्वे[9]ऽपि व्यवहारेण कर्मदत्तफलोपलम्भो जीवस्य न विरुध्यत इत्यत्रोक्तम् । जीवा हि मोहरागद्वेषस्निग्धत्वात्पुद्गलस्कन्धाश्च स्वभावस्निग्धत्वाद्बन्धावस्थायां परमाणुद्वन्द्वानीवान्योन्यावगाहग्रहणप्रतिबद्धत्वेनावतिष्ठन्ते । यदा तु [10]ते परस्परं वियुज्यन्ते, तदोदितप्रच्यव-

---

१ भावकर्मणी अत्र द्विवचनम्. २ अन्यषट्कारकाणि न वाञ्छते. ३ रागद्वेषरूपेण भावकर्मणा. ४ निश्चयतः. ५ 'समुद्गकः' इत्युक्ते 'संपुटकः' इत्यर्थो भवति; तथाचोक्तममरकोशे नृवर्गे "समुद्गकः संपुटकः" इति । अञ्जनवर्णेन मर्दिताञ्जनेन यथा समुद्गकः संपुटकः कज्जलधरसंभृतो भवति तथा षड्द्रव्यैर्लोकः संभृतोऽस्तीति भावः. ६ आत्मा. ७ रागद्वेषरूपमात्मभावम्. ८ अन्यकर्त्तारं विना. ९ उपादानरूपेण निजनिजस्वरूपकर्तृत्वेऽपि. १० जीवपुद्गलस्कन्धाः.

माना निश्चयेन सुखदुःखरूपात्मपरिणामानां[1] व्यवहारेणेष्टानिष्टविषयाणां निमित्तमात्रत्वात्पुद्गलकायाः सुखदुःखरूपं फलं प्रयच्छन्ति। जीवाश्च निश्चयेन निमित्तमात्रभूतद्रव्यकर्मनिर्वर्तितसुखदुःखस्वरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेण द्रव्यकर्मोदयापादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वात्तथाविधं फलं भुञ्जते इति। एतेन जीवस्य भोक्तृत्वगुणोऽपि व्याख्यातः॥

[६८] कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्। तत एतत् स्थितं निश्चयेनात्मनः कर्म कर्तृ, व्यवहारेण जीवभावस्य। जीवोऽपि निश्चयेनात्मभावस्य कर्ता व्यवहारेण कर्मण इति। यथात्रोभयनयाभ्यां कर्म कर्तृ, तथैकेनापि नयेन न भोक्तृ। कुतः चैतन्यपूर्वकानुभूतिसद्भावाभावात्। ततश्चेतनत्वात्केवल एव जीवः कर्मफलभूतानां कथंचिदात्मनः सुखदुःखपरिणामानां कथंचिदिष्टानिष्टविषयाणां भोक्ता प्रसिद्ध इति॥

[६९] कर्मसंयुक्तत्वमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत्। एवमयमात्मा प्रकटितप्रभुत्वशक्तिः स्वकैः कर्मभिर्गृहीतकर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकारोऽनादिमोहावच्छिन्नत्वादुपजातविपरीताभिनिवेशः प्रत्यस्तमितसम्यग्ज्ञानज्योतिः सान्तमनन्तं वा संसारं परिभ्रमतीति॥

[७०] कर्मवियुक्तत्वमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत्। अयमेवात्मा यदि जिनाज्ञया मार्गमुपगम्योपशान्तक्षीणमोहत्वात्प्रहीणविपरीताभिनिवेशः समुद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिः कर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकारं परिसमाप्य[2] सम्यक्प्रकटितप्रभुत्वशक्तिर्ज्ञानस्यैवानुमार्गेण चरति, तदा विशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भनरूपमपवर्गनगरं विगाहत इति॥

अथ जीवविकल्पा उच्यन्ते।

[७१-७२] स खलु जीवो महात्मा नित्यचैतन्योपयुक्तत्वादेक एव। ज्ञानदर्शनभेदाद्विविकल्पः। कर्मफलकार्यज्ञानचेतनाभेदेन लक्ष्यमाणत्वात्रिलक्षणः। ध्रौव्योत्पादविनाशभेदेन वा चतसृषु गतिषु चंक्रमणत्वाच्चतुश्चङ्क्रमणः। पञ्चभिः पारिणामिकौदयिकादिभिरग्रगुणैः प्रधानत्वात् पञ्चाग्रगुणप्रधानः। चतसृषु दिक्षूर्ध्वमधश्चेति भवान्तरसंक्रमणषट्केनापक्रमेण युक्तत्वात् षट्कापक्रमयुक्तः। अस्तिनास्त्यादिभिः सप्तभङ्गैः सद्भावो यस्येति सप्तभङ्गसद्भावः। अष्टानां कर्मणां गुणानां वा आश्रयत्वादष्टाश्रयः। नवपदार्थरूपेण वर्तनान्नवार्थः। पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिसाधारणप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियरूपेषु दशसु स्थानेषु गतत्वाद्दशस्थानग इति॥

[७३] बद्धजीवस्य षङ्गतयः कर्मनिमित्ताः। मुक्तस्याप्यूर्ध्वगतिरेका स्वाभाविकीत्यत्रोक्तम्।

इति जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम्।

अथ पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम्।

[७४] पुद्गलद्रव्यविकल्पादेशोऽयम्। पुद्गलद्रव्याणि हि कदाचित् स्कन्धपर्यायेण, कदाचित् स्कन्धदेशपर्य्यायेण, कदाचित् स्कन्धप्रदेशपर्य्यायेण, कदाचित् परमाणुत्वेनात्र[3] तिष्ठन्ति। नान्यागतिरस्ति। इति तेषां चतुर्विकल्पत्वमिति॥

[७५] पुद्गलद्रव्यविकल्पनिर्देशोऽयम्। अनन्तानन्तपरमाण्वारब्धोऽप्येकः स्कन्धनाम पर्य्यायः। तदर्धं स्कन्धदेशो नाम पर्य्यायः। तदर्धार्धं स्कन्धप्रदेशो नाम पर्य्यायः। तदर्धं स्कन्धदेशो नाम पर्य्यायः।

---

१ स्वकीयस्य. २ निराकृत्य. ३ लोके.

तदर्धार्धं स्कन्धप्रदेशो नाम पर्य्यायः । एवं भेदवशाद्व्यणुकस्कन्धादनन्ताः स्कन्धप्रदेशपर्यायाः । निर्विभागैकप्रदेशः स्कन्धस्यान्त्यभेदः परमाणुरेकः । पुनरपि द्वयोः परमाण्वोः संघातादेको द्व्यणुकस्कन्धपर्य्यायः । एवं संघातवशादनन्ताः स्कन्धपर्य्यायाः । एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनन्ता भवन्तीति ॥

[७६] स्कन्धानां पुद्गलव्यवहारसमर्थनमेतत् । स्पर्शरसवर्णगन्धगुणविशेषैः षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिः पूरणगलनधर्मत्वात् स्कन्धव्यक्त्याविर्भावतिरोभावाभ्यामपि च पूरणगलनोपपत्तेः परमाणवः पुद्गला इति निश्चीयन्ते । स्कन्धास्त्वनेकपुद्गलमयैकपर्यायत्वेन पुद्गलेभ्योऽनन्यत्वात्पुद्गला इति व्यवह्रियन्ते । तथैव च बादरसूक्ष्मत्वपरिणामविकल्पैः षट्प्रकारतामापद्य त्रैलोक्यरूपेण निष्पद्य स्थितवन्त इति । तथाहि—बादरबादराः, बादराः, बादरसूक्ष्माः, सूक्ष्मबादराः, सूक्ष्माः, सूक्ष्मसूक्ष्माः इति । तत्र छिन्नाः स्वयं संधानासमर्थाः काष्ठपाषाणादयो बादरबादराः । छिन्नाः स्वयं संधानसमर्थाः क्षीरघृततैलतोयरसप्रभृतयो बादराः । स्थूलोपलम्भा अपि छेत्तुं भेत्तुमादातुमशक्याः छायाऽऽतपतमोज्योत्स्नादयो बादरसूक्ष्माः । सूक्ष्मत्वेऽपि स्थूलोपलम्भाः स्पर्शरसगंधवर्णशब्दाः सूक्ष्मबादराः । सूक्ष्मत्वेऽपि हि करणानुपलभ्याः कर्मवर्गणादयः सूक्ष्माः । अत्यन्तसूक्ष्माः कर्मवर्गणाभ्योऽधो द्व्यणुकस्कन्धपर्यन्ताः सूक्ष्मसूक्ष्मा इति ॥

[७७] परमाणुव्याख्येयम् । उक्तानां स्कन्धपर्य्यायाणां योऽन्त्यो भेदः स परमाणुः । स तु पुनर्विभागाभावादविभागी । निर्विभागैकप्रदेशत्वादेकः । मूर्तद्रव्यत्वेन सदाप्यविनश्वरत्वान्नित्यः । अनादिनिधनरूपादिपरिणामोत्पन्नत्वान्मूर्तिभवः । रूपादिपरिणामोत्पन्नत्वेऽपि शब्दस्य परमाणुगुणत्वाभावात्पुद्गलस्कन्धपर्य्यायत्वेन वक्ष्यमाणत्वाच्चाशब्दो निश्चीयत इति ॥

[७८] परमाणूनां जात्यन्तरत्वनिरासोऽयम् । परमाणोर्हि मूर्तत्वनिबन्धनभूताः स्पर्शरसगन्धवर्णा आदेशमात्रेणैव भिद्यन्ते । वस्तुतस्तु यथा तस्य स एव प्रदेश आदिः, स एव मध्यः स एवान्तः इति । एवं द्रव्यगुणयोरविभक्तप्रदेशत्वात् य एव परमाणोः प्रदेशः स एव स्पर्शस्य, स एव गन्धस्य, स एव रूपस्येति । ततः क्वचित्परमाणौ गन्धगुणे, क्वचित् गन्धरसगुणयोः, क्वचित् गन्धरसरूपगुणेषु अपकृष्यमाणेषु तदविभक्तप्रदेशः परमाणुरेव विनश्यतीति । न तदपकर्षो युक्तः । ततः पृथिव्यप्तेजोवायुरूपस्य धातुचतुष्कस्यैक एव परमाणुः कारणं । परिणामवशात् विचित्रो हि परमाणोः परिणामगुणः क्वचित्कस्यचिद्गुणस्य व्यक्ताव्यक्तत्वेन विचित्रां परिणतिमादधाति । यथा च तस्य परिणामवशादव्यक्तो गन्धादिगुणोऽस्तीति प्रतिज्ञायते न तथा शब्दोऽप्यव्यक्तोऽस्तीति ज्ञातुं शक्यते । तस्यैकप्रदेशस्यानेकप्रदेशात्मकेन शब्देन सहैकत्वविरोधादिति ॥

[७९] शब्दस्य पुद्गलसंघपर्यायत्वख्यापनमेतत् । इह हि बाह्यश्रवणेन्द्रियावलम्बितो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिः शब्दः । स खलु स्वरूपेणानन्तपरमाणूनामेकस्कन्धो नाम पर्य्यायः । बहिरङ्गसाधनीभूतमहास्कन्धेभ्यः तथाविधपरिणामेन समुत्पद्यमानत्वात् स्कन्धप्रभवः । यतो हि परस्पराभिहतेषु महास्कन्धेषु शब्दः समुपजायते । किंच स्वभावनिर्वृत्ताभिरेवानन्तपरमाणुमयीभिः शब्दयोग्यवर्गणाभि-

१ अस्तित्वप्रमेयत्वादयस्तु सामान्यगुणास्सर्वेषां द्रव्याणां मध्ये साधारणरूपेण विद्यन्ते । पुनः स्पर्शरसगन्धवर्णगुणास्तु पुद्गलद्रव्ये एव विद्यन्ते । अत एव गुणविशेषाः कथ्यन्ते. २ वर्णगन्धरसस्पर्शैः पूरणं गलनं कुर्वन्ति स्कन्धवत्तस्मात्पुद्गला परमाणवः. ३ द्विप्रदेशादिस्कन्धानां पुद्गलत्वग्रहणं प्रदेशपूरणगलनरूपत्वात्. ४ पृथक् क्रियन्ते. ५ पूर्वोक्तेषु एतेषु गुणेषु अपकृष्यमाणेषु गौणतां प्राप्तेषु सत्सु. ६ तस्य परमाणोरपकर्षो विनाशो न युक्तः. ७ परमाणोः. ८ शब्दपर्य्यायेण. ९ अन्योन्यसंघटितेषु.

रन्योन्यमनुप्रविश्य समन्ततोऽभिव्याप्य पूरितेऽपि सकले लोके यत्र यत्र वहिरङ्गकारणसामग्री समुदेति तत्र तत्र ते[1]ः शब्दत्वेन स्वयं व्यपरिणमन्त इति शब्दस्य नियतमुत्पाद्यत्वात् स्कन्धप्रभवत्वमिति ॥

[८०] परमाणोरेकप्रदेशत्वख्यापनमेतत् । परमाणुः स खल्वेकेन प्रदेशेन रूपादिगुणसामान्यभाजा सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यः । एकेन प्रदेशेन तदविभक्तवृत्तीनां स्पर्शादिगुणानामवकाशदानान्नानवकाशः[2] । एकेन प्रदेशेन द्व्यादिप्रदेशाभावादात्मादिनात्ममध्येनात्मान्तेन न सावकाशः[3] । एकेन प्रदेशेन स्कन्धानां भेदनिमित्तत्वात् स्कन्धानां भेत्ता । एकेन प्रदेशेन स्कन्धसंघातनिमित्तत्वात्स्कन्धानां कर्त्ता । एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तिततद्गतिपरिणामापन्नेन समयलक्षणकालविभागकरणात् कालस्य प्रविभक्ता । एकेन प्रदेशेन तत्सूत्रितद्व्यादिभेदपूर्विकायाः स्कन्धेषु द्रव्यसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तदवच्छिन्नैकाकाशप्रदेशपूर्विकायाः क्षेत्रसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तिततद्गतिपरिणामावच्छिन्नसमयपूर्विकायाः कालसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तद्विवर्तिजघन्यवर्णादिभावाववोधपूर्विकाया भावसंख्यायाः प्रविभागकरणात् प्रविभक्ता संख्याया अपीति ॥

[८१] परमाणुद्रव्ये गुणपर्य्यायवृत्तिप्ररूपणमेतत् । सर्वत्रापि परमाणौ रसवर्णगन्धस्पर्शाः सहभुवो गुणाः । ते च क्रमप्रवृत्तैस्तत्र स्वपर्य्यायैर्वर्तन्ते । तथाहि—पञ्चानां रसपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते । पञ्चानां वर्णपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते । उभयोर्गन्धपर्य्यायोरन्यतरेणैकेनैकदा गन्धो वर्तते । चतुर्णां शीतस्निग्धशीतरूक्षोष्णस्निग्धोष्णरूक्षरूपाणां स्पर्शपर्य्यायद्वन्द्वानामन्यतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते । एवमयमुक्तगुणवृत्तिः परमाणुः शब्दस्कन्धपरिणतिशक्तिस्वभावात् शब्दकारणं । एकप्रदेशत्वेन शब्दपर्य्यायपरिणतिवृत्त्यभावादशब्दः । स्निग्धरूक्षत्वप्रत्ययबन्धवशादनेकपरमाण्वेकत्वपरिणतिरूपस्कन्धान्तरितोऽपि स्वभावमपरित्यजन्नुपात्तसंख्यत्वादेकमेव द्रव्यमिति ॥

[८२] सकलपुद्गलविकल्पोपसंहारोऽयम् । इन्द्रियविषयाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाश्च, द्रव्येन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि, कायाः औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानि, द्रव्यमनोद्रव्यकर्माणि नोकर्माणि, विचित्रपर्यायोत्पत्तिहेतवोऽनन्ताऽनन्ताणुवर्गणाः, अनन्ताऽसंख्येयाणुवर्गणाः, अनन्ताः संख्येयाणुवर्गणाः, द्व्यणुकस्कन्धपर्यन्ताः परमाणवश्च, यदन्यदपि मूर्तं तत्सर्वं पुद्गलविकल्पत्वेनोपसंहर्तव्यमिति[4] ॥

इति पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

[८३] धर्मस्वरूपाख्यानमेतत् । धर्मो हि स्पर्शरसगन्धवर्णानामत्यन्ताभावादमूर्तस्वभावः । तत एव चाशब्दः । सकललोकाकाशाभिव्याप्यावस्थितत्वाल्लोकावगाढः । अयुतसिद्धप्रदेशत्वात् स्पृष्टः । स्वभावादेव सर्वतो विस्तृतत्वात्पृथुलः । निश्चयनयेनैकप्रदेशोऽपि व्यवहारनयेनाऽसंख्यातप्रदेश इति ॥

[८४] धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपाख्यानमेतत् । अपि च धर्मः अगुरुलघुभिर्गुणैरगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबन्धनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदैः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनन्तैः सदापरिणतत्वादुत्पादव्ययवत्वेऽपि स्वरूपादप्रच्यवनान्नित्यः । गतिक्रियापरिणताना[5]मुदासीनाऽविनाभूतसहायमात्रत्वात्कारणभूतः । स्वास्तित्वमात्रनिर्वृत्तत्वात् स्वयमकार्य इति ॥

---

१ शब्दयोग्यपुद्गलवर्गणाः. २ अवकाशरहित इत्यर्थः. ३ अवकाशसहित इत्यर्थः. ४ अङ्गीकर्तव्यम् । ५ धर्मं विना गमनं नास्ति. ६ जीवपुद्गलानाम्.

[८५] धर्मस्य गतिहेतुत्वे दृष्टान्तोऽयम् । यथोदकं स्वयमगच्छदगमयच्च[1] स्वयमेव गच्छतां मत्स्यानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति । तथा धर्मोऽपि स्वयमगच्छन् अगमयंश्च स्वयमेव गच्छतां जीवपुद्गलानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति इति ॥

[८६] अधर्मस्वरूपाख्यानमेतत् । यथा धर्मः प्रज्ञापितस्तथाऽधर्मोऽपि[2] प्रख्यापनीयः । अयं तु विशेषः । सगतिक्रियायुक्तानामुदकवत्कारणभूत एषः । पुनः स्थितिक्रियायुक्तानां पृथिवीवत्कारणभूतः । यथा पृथिवी स्वयं पूर्वमेव तिष्ठन्ती परमस्थापयन्ती च स्वयमेव तिष्ठतामश्वादीनामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन स्थितिमनुगृह्णाति ॥

[८७] धर्माधर्मसद्भावे हेतूपन्यासोऽयम् । धर्माधर्मौ विद्येते । लोकालोकविभागान्यथानुपपत्तेः । जीवादिसर्वपदार्थानामेकत्रवृत्तिरूपो लोकः । शुद्धैकाकाशवृत्तिरूपोऽलोकः । तत्र जीवपुद्गलौ स्वरसत[3] एव गतितत्पूर्वस्थितिपरिणामापन्नौ । तयोर्यदि[4] गतिपरिणामं तत्पूर्वस्थितिपरिणामं वा स्वयमनुभवतोर्वहिरङ्गहेतू धर्माधर्मौ न भवेताम्, तदा तयोर्निरर्गलगतिस्थितिपरिणामत्वादलोकेऽपि वृत्तिः केन वार्येत । ततो न लोकालोकविभागः सिध्येत । धर्माधर्मयोस्तु जीवपुद्गलयोर्गतितत्पूर्वस्थित्योर्वहिरङ्गहेतुत्वेन सद्भावेऽभ्युपगम्यमाने[5] लोकालोकविभागो जायत इति । किञ्च धर्माधर्मौ द्वावपि परस्परं पृथग्भूतास्तित्वनिर्वृत्तत्वाद्विभक्तौ । एकक्षेत्रावगाढत्वादविभक्तौ । निष्क्रियत्वेन सकललोकवर्तिनोर्जीवपुद्गलयोर्गतिस्थित्युपग्रहणकरणाल्लोकमात्राविति ॥

[८८] धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वेऽप्यत्यन्तौदासीन्याख्यापनमेतत् । यथा हि गतिपरिणतः प्रभञ्जनो[6] वैजयन्तीनां[7] गतिपरिणामस्य हेतुकर्त्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मः । स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपरिणाममेवापद्यते । कुतोऽस्य[8] सहकारित्वेन परेषां गतिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं । किन्तु सलिलमिव मत्स्यानां जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतेः प्रसरो[9] भवति । अपि च यथा गतिपूर्वस्थितिपरिणतस्तुरङ्गोऽश्ववारस्य स्थितिपरिणामस्य हेतुकर्त्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मः । स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपूर्वस्थितिपरिणाममेवापद्यते । कुतोऽस्य[10] सहस्थायि[11]त्वेन परेषां गतिपूर्वस्थितिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं । किन्तु पृथिवीवत्तुरङ्गस्य जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतिपूर्वस्थितेः प्रसरो भवतीति ॥

[८९] धर्माधर्मयोरौदासीन्ये हेतूपन्यासोऽयम् । धर्मः किल न जीवपुद्गलानां कदाचिद्गतिहेतुत्वमभ्यस्यति, न कदाचित्स्थितिहेतुत्वमधर्मः । तौ हि परेषां गतिस्थित्योर्यदि मुख्यहेतू स्यातां; तदा येषां गतिस्तेषां गतिरेव न स्थितिः, येषां स्थितिस्तेषां स्थितिरेव न गतिः । तत एकेषामपि[12] गतिस्थितिदर्शनादनुमीयते न तौ तयोर्मुख्यहेतू । किन्तु व्यवहारनयव्यवस्थापितौ उदासीनौ । कथमेवं गतिस्थितिमतां पदार्थानां गतिस्थिती भवत इति चेत्, सर्वे हि गतिस्थितिमन्तः पदार्थाः स्वपरिणामैरेव निश्चयेन गतिस्थिती कुर्वन्तीति ॥

इति धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् ।

---

१ अन्यमगमयत्. २ अधर्मः. ३ स्वभावतः. ४ जीवपुद्गलयोः. ५ अङ्गीक्रियमाणे सति. ६ वायुः. ७ पताकानाम्. ८ धर्मद्रव्यस्य. ९ प्रवर्तको भवति । न प्रेरकतया प्रेरकः. १० अधर्मद्रव्यस्य. ११ सहचलनरूपेण. १२ एकस्वरूपसरूपसमूहजीवपुद्गलानाम्.

अथाकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम्—

[९०] आकाशस्वरूपाख्यानमेतत् । षड्द्रव्यात्मके लोके सर्वेषां शेषद्रव्याणां यत्समस्तावकाशनिमित्तं विशुद्धक्षेत्ररूपं तदाकाशमिति ॥

[९१] लोकाद्बहिराकाशसूचनेयं । जीवादीनि शेषद्रव्याण्यवधृतपरिमाणत्वाल्लोकादनन्यान्येव । आकाशं त्वनन्तत्वाल्लोकादनन्यदन्यच्चेति ॥

[९२] आकाशस्यावकाशैकहेतोर्गतिस्थितिहेतुत्वशङ्कायां दोषोपन्यासोऽयम् । यदि खल्वाकाशमवगाहिनामवगाहहेतुर्गतिस्थितिमतां गतिस्थितिहेतुरपि स्यात्, तदा सर्वोत्कृष्टस्वाभाविकोर्ध्वगातिपरिणता भगवन्तः सिद्धा वहिरङ्गान्तरङ्गसाधनसामग्र्यां सत्यामपि कुतस्तत्राकाशे तिष्ठन्त इति ॥

[९३] स्थितिपक्षोपन्यासोऽयम् । यतो गत्वा भगवन्तः सिद्धाः लोकोपर्यवतिष्ठन्ते, ततो गतिस्थितिहेतुत्वमाकाशे नास्तीति निश्चेतव्यम् । लोकालोकावच्छेदकौ धर्माधर्मावेव गतिस्थितिहेतू मन्तव्याविति ॥

[९४] आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे हेतूपन्यासोऽयम् । नाकाशं गतिस्थितिहेतु लोकालोकसीमव्यवस्थायास्तथोपपत्तेः । यदि गतिस्थित्योराकाशमेव निमित्तमिष्येत्, तदा तस्य सर्वत्र सद्भावाज्जीवपुद्गलानां गतिस्थित्योर्निःसीमत्वात्प्रतिक्षणमलोको हीयते । पूर्वं पूर्वं व्यवस्थाप्यमानश्चान्तो लोकस्योत्तरोत्तरपरिवृद्ध्या विघटते । ततो न तत्र तद्धेतुरिति ॥

[९५] आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वनिरासव्याख्योपसंहारोऽयम् । धर्माधर्मावेव गतिस्थितिकारणेनाकाशमिति ॥

[९६] धर्माऽधर्माऽलोकाकाशानामवगाहवशादेकत्वेऽपि वस्तुत्वेनान्यत्वमत्रोक्तम् । धर्माधर्मालोकाकाशानि हि समानपरिमाणत्वात्सहावस्थानमात्रेणैवैकत्वभाञ्जि । वस्तुतस्तु व्यवहारेण गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वरूपेण निश्चयेन विभक्तप्रदेशत्वरूपेण विशेषेण पृथगुपलभ्यमानेनान्यत्वभाञ्ज्येव भवन्तीति ॥

इत्याकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

अथ चूलिका ।

[९७] अत्र द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं चोक्तम् । स्पर्शरसगन्धवर्णसद्भावस्वभावं मूर्तं । स्पर्शरसगन्धवर्णाऽभावस्वभावममूर्तं, चैतन्यसद्भावस्वभावं चेतनं । चैतन्याभावस्वभावमचेतनं । तत्रामूर्तमाकाशं, अमूर्तः कालः, अमूर्तः स्वरूपेण जीवः, पररूपावेशान्मूर्तोऽपि अमूर्तो धर्मः, अमूर्तोऽधर्मः, मूर्तः पुद्गल एवैक इति । अचेतनमाकाशं, अचेतनः कालः, अचेतनो धर्मः, अचेतनोऽधर्मः, अचेतनः पुद्गलः, चेतनो जीव एवैक इति ॥

[९८] अत्र सक्रियत्वनिष्क्रियत्वमुक्तम् । प्रदेशान्तरप्राप्तिहेतुः परिस्पन्दनरूपपर्यायः क्रिया । तत्र सक्रिया वहिरङ्गसाधनेन सहभूताः जीवाः । सक्रिया वहिरङ्गसाधनेन सहभूताः पुद्गलाः । निष्क्रियमाकाशं, निष्क्रियो धर्मः, निष्क्रियोऽधर्मः, निष्क्रियः कालः । जीवानां सक्रियत्वस्य वहिरङ्गसाधनं

---

१ पञ्चद्रव्याणाम्. २ जीवपुद्गलानाम्. ३ आकाशस्य. ४ लोकस्यान्तो. ५ आकाशे. ६ गमनस्थित्योः कारणं न. ७ स्वभावेन. ८ कर्मनोकर्मसंयोगात्.

कर्मनोकर्मोपचयरूपाः पुद्गला इति । ते[1] पुद्गलकरणाः । तदभावान्निःक्रियत्वं सिद्धानां[2] । पुद्गलानां सक्रियत्वस्य वहिरङ्गसाधनं परिणामनिर्वर्तकः[3] काल इति ते कालकरणाः । नच कर्मादीनामिव[4] कालस्याभावः । ततो न सिद्धानामिव निष्क्रियत्वं पुद्गलानामिति ॥

[९९] मूर्तामूर्तलक्षणाख्यानमेतत् । इह हि जीवैः[5] स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्भिरिन्द्रियैस्[6]तद्विषयभूताः स्पर्शरसगन्धवर्णस्वभावा अर्था गृह्यन्ते । श्रोत्रेन्द्रियेण तु त[7] एव तद्विषयहेतुभूतशब्दाकारपरिणता गृह्यन्ते । ते[8] कदाचित्स्थूलस्कन्धत्वमापन्नाः कदाचित्सूक्ष्मत्वमापन्नाः कदाचित्परमाणुत्वमापन्नाः इन्द्रियग्रहणयोग्यतासद्भावाद् गृह्यमाणा अगृह्यमाणा वा मूर्ता इत्युच्यन्ते । शेषमितरत् समस्तमप्यर्थसंजातं स्पर्शरसगन्धवर्णाभावस्वभावमिन्द्रियग्रहणयोग्यताया अभावादमूर्तमित्युच्यते । चित्तग्रहणयोग्यतासद्भावभाग्भवति तदुभयमपि[10] । चित्तं ह्यनियत[11]विषयमप्राप्यकारि[12] मतिश्रुतज्ञानसाधनीभूतं मूर्तममूर्तं च समाददातीति ॥

इति चूलिका समाप्ता ।

अथ कालद्रव्यव्याख्यानम् ।

[१००] व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपाख्यानमेतत् । तत्र क्रमानुपाती समयाख्यः पर्यायो व्यवहारकालः । तदाधारभूतं द्रव्यं निश्चयकालः । तत्र व्यवहारकालो निश्चयकालपर्य्यायरूपोऽपि जीवपुद्गलानां परिणामेनावच्छिद्यमानत्वात्तत्परिणामभव इत्युपगीयते । जीवपुद्गलानां परिणामस्तु वहिरङ्गनिमित्तभूतद्रव्यकालसद्भावे सति संभूतत्वाद्द्रव्यकालसंभूत इत्यभिधीयते । तत्रेदं तात्पर्यं । व्यवहारकालो जीवपुद्गलपरिणामेन निश्चीयते, निश्चयकालस्तु तत्परिणामान्यथानुपपत्त्येति[13] । तत्र क्षणभङ्गी व्यवहारकालः । सूक्ष्मपर्य्यायस्य[14] तावन्मात्रत्वात् । नित्यो निश्चयकालः स्वगुणपर्य्यायाधारद्रव्यत्वेन सर्वदैवाऽविनश्वरत्वादिति ॥

[१०१] नित्य[15]क्षणिकत्वेन कालविभागख्यापनमेतत् । यो हि द्रव्यविशेषः 'अयं कालः, अयं कालः' इति सदा व्यपदिश्यते स खलु स्वस्य[16] सद्भावम्[17]आवेदयन्[18] भवति नित्यः । यस्तु पुनरुत्पन्नमात्र एव प्रध्वस्यते स खलु तस्यैव द्रव्यविशेषस्य समयाख्यः पर्य्याय इति । स[19] तूत्सङ्गितक्षणभङ्गोऽप्युपदर्शितस्वसंतानो[20] नयवलाद्दीर्घान्तरस्थाय्युपगीयमानो न दुष्यति । ततो न खल्वाऽऽवलिकापल्योपमसागरोपमादिर्व्यवहारो विप्रतिषिध्यते । तदत्र निश्चयकालो नित्यः द्रव्यरूपत्वात् । व्यवहारकालः क्षणिकः पर्य्यायरूपत्वादिति ॥

---

१ जीवाः. २ पुद्गलकरणाभावात्. ३ निष्पादकः. ४ अत्र यथा शुद्धात्माऽनुभूतिवलेन कर्मपुद्गलानामभावात्सिद्धानां निष्क्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानां । कस्मात्कालस्यैव सर्वत्रैव विद्यमानत्वादित्यर्थः. ५ कर्तृभूतैः. ६ करणभूतैः. ७ अर्थाः ८ श्रोत्रेन्द्रियविषयभूतशब्दाकारपरिणताः. ९ विषयाः अर्थाः. १० मूर्तामूर्त. ११ यथा स्पर्शनेन्द्रियस्य स्पर्शः, रसनेन्द्रियस्य रसः, घ्राणेन्द्रियस्य गन्धश्चक्षुरिन्द्रियस्य रूपं, कर्णेन्द्रियस्य शब्दः विषयस्तथा चित्तस्य मनसः न नियतविषयोऽत एव चित्तमनियतविषयात्मकम्. १२ यथा स्पर्शरसघ्राणकर्णेन्द्रियाणि प्राप्यकारीणि तथा चित्तं प्राप्यकारि न, चक्षुरिन्द्रियवत्. १३ निर्धार्यते. १४ समयादिरूपस्य. १५ नित्यत्वेन क्षणिकत्वेन नित्यो निश्चयकालः, क्षणिको व्यवहारकालः. १६ स्वकीयस्य. १७ अस्तित्वम्. १८ कथयन्सन्नित्यो भवति । अत्र दृष्टान्तः । यथा—यो हि अक्षरद्वयवाच्यो सिंहशब्दः स तस्य सिंहनाम्नः तिरश्चो सद्भावमस्तित्वमावेदयन् नित्यो भवति. १९ व्यवहारकालः. २० समयावलिप्रत्यादिसंतानः, वा क्रमेण समयोत्तरसंतानः

[१०२] कालस्य [1]द्रव्यास्तिकायत्वविधिप्रतिषेधविधानमेतत् । यथा खलु जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानि सकलद्रव्यलक्षणसद्भावाद्द्रव्यव्यपदेशभाञ्जि भवन्ति, तथा कालोऽपि । इत्येवं षड्द्रव्याणि । किंतु यथा जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानां द्व्यादिप्रदेशलक्षणत्वमस्ति अस्तिकायत्वं । न तथा लोकाकाशप्रदेशसंख्यानामपि कालाणूनामेकप्रदेशत्वादस्त्यस्तिकायत्वम् । अत एव च पञ्चास्तिकायप्रकरणे न हीह मुख्यत्वेनोपन्यस्तः कालः । जीवपुद्गलपरिणामावच्छिद्यमानपर्यायत्वेन तत्परिणामान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानद्रव्यत्वेना[2]त्रैवान्तर्भावितः ॥

इति कालद्रव्यव्याख्यानं समाप्तम् ।

---

[१०३] तदवबोधफलपुरस्सरः पञ्चास्तिकायव्याख्योपसंहारोऽयम् । न खलु कालकलितपञ्चास्तिकायेभ्योऽन्यत् किमपि सकलेनाऽपि [3]प्रवचनेन प्रति[4]पाद्यते । ततः प्रवचनसार एवायं पञ्चास्तिकायसंग्रहः । यो हि नामा[5]ऽमुं समस्तवस्तुतत्त्वाभिधायिन[6]मर्थतोऽर्थि[7]तयाऽवबुध्यात्रैव जीवास्तिकायान्तर्गतमात्मानं स्वरूपेणात्यन्तविशुद्धचैतन्यस्वभावं निश्चित्य परस्परकार्यकारणीभूतानादिरागद्वेषपरिणामकर्मबन्धसंततिसमारोपितस्वरूपविकारं तदा[8]त्वेऽनुभूयमानमवलोक्य तत्कालोन्मीलितविवेकज्योतिः कर्मबन्धसंततिप्रवर्तिकां रागद्वेषपरिणतिमत्य[9]स्यति [10]स खलु जीर्य[11]माणस्नेहो जघन्य[12]स्नेहगुणाभिमुखपरमाणुवद्भाविबन्धपराङ्मुखः पूर्वबन्धात्प्रच्यवमानः शिखितप्तोद[13]कदौस्थ्यानुकारिणो दुःखस्य परिमोक्षं विगाहत इति ॥

[१०४] दुःखविमोक्षकरणक्रमाख्यानमेतत् । एतस्य शास्त्रस्यार्थभूतं शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानं कश्चिज्जीवस्तावज्जानीते । ततस्तमेवानुगन्तुमुद्यमते । ततोऽस्य क्षीयते [14]दृष्टिमोहः । ततः स्वरूपपरिचयादुन्मज्ज[15]ति ज्ञानज्योतिः । ततो रागद्वेषौ प्रशाम्यतः । ततः उत्तरः पूर्वश्च बन्धो विनश्यति । ततः पुनर्बन्धहेतुत्वाभावात् स्वरूपस्थो नित्यं प्रतपतीति ॥

इति समयव्याख्यायामन्तर्नीतषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायवर्णनात्मकः प्रथमः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ।

द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेन शुद्धं बुधाना[16]मिह तत्त्वमुक्तम् ।
प[17]दार्थभङ्गेन कृतावतारं प्रकीर्त्यते संप्रति वर्त्म त[18]स्य ॥ १ ॥

[१०५] आप्तस्तुतिपुरस्सरा प्रतिज्ञेयम् । [19]अमुना हि प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य मूलकर्तृत्वेनाऽपुनर्भवकारणस्य भगवतः परमभट्टारकमहादेवाधिदेवश्रीवर्द्धमानस्वामिनः सिद्धिनिबन्धनभूतां तां भावस्तुतिमासूत्र्य, कालकलितपञ्चास्तिकायानां पदार्थविकल्पो मोक्षस्य मार्गश्च वक्तव्यत्वेन प्रतिज्ञात इति ॥

---

१ कालस्य द्रव्यत्वविधिविधानं दर्शितं । पुनः अस्तिकायत्वप्रतिषेधविधानं दर्शितञ्चात्र सूत्रैः. २ पञ्चास्तिकायमध्ये कालान्तरभावः. ३ सिद्धान्तेन. ४ कथ्यते. ५ पञ्चास्तिकायसंग्रहम्. ६ परमार्थतः. ७ कार्यतया. ८ वर्तमानकाले. ९ त्यजति. १० पूर्वोक्तः जीवः. ११ जीर्यमाणस्नेहो मोहः यस्य एवंभूतः सन्. १२ यथा जघन्यस्नेहजघन्यसचिक्कणगुणेन अभिमुखसहितपरमाणुर्न बध्यते पूर्वबन्धात्प्रच्यवते च जघन्यसचिक्कणत्वात् । स्नेहस्य जघन्यांशत्वादित्यर्थः. १३ अग्नितप्तोदकं दौस्थ्यं जाज्वल्यमानं तप्तभावं अनुकारि सदृशं जायते तत्सदृशस्य दुःखस्याभावं लभते । तद्यथा जलस्य शीतलस्वभावोऽस्ति परन्तु अग्निसंयोगात्तप्तरूपं विकारभावं प्राप्नोति । पुनः कर्मबन्धवत् यदाऽग्निसंयोगो विघटते तदा शुद्धस्वभावं स्वस्य शीतलस्वभावं लभते एव । तथा हि—यदा कर्मबन्धरहितः स आत्मा भवति तदा दुःखस्य अभावं लभते. १४ दर्शनमोहः. १५ प्रकटीभवति प्रकाशते. १६ पञ्चास्तिकायव्याख्यायाम्. १७ पदार्थविकल्पनेन भेदेन वा विवरणेन. १८ शुद्धात्मतत्त्वस्य. १९ सूत्रेण.

[१०६] मोक्षमार्गस्यैव तावत्सूचनेयम् । सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव नासम्यक्त्वज्ञानयुक्तं, चारित्रमेव नाचारित्रं, रागद्वेषपरिहीणमेव न रागद्वेषापरिहीणम्, मोक्षस्यैव[1] न भावतो बन्धस्य[2], मार्ग एव नामार्गः, भव्यानामेव नाभव्यानां, लब्धबुद्धीनामेव नालब्धबुद्धीनां, क्षीणकषायत्वे भवत्येव, न कषायसहितत्वे भवतीत्यष्टधा नियमोऽत्र द्रष्टव्यः ॥

[१०७] सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सूचनेयम् । भावाः खलु कालकलितपञ्चास्तिकायविकल्परूपा नव पदार्थास्तेषां मिथ्यादर्शनोदयापादिताश्रद्धानाभावस्वभावं, भावान्तरश्रद्धानं, सम्यग्दर्शनं[3] शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्वविनिश्चयबीजम् । तेषामेव[4] मिथ्यादर्शनोदयान्नौयान[5]संस्कारादिस्वरूपविपर्य्ययेणाध्यवसीयमानानां तन्निवृत्तौ[6] समञ्जसाऽध्यवसायः[7] । सम्यक्ज्ञानं[8] मनाक्ज्ञानचेतनाप्रधानात्मतत्त्वोपलम्भबीजम् । सम्यग्दर्शनज्ञानसन्निधानादमार्गेभ्यः समग्रेभ्यः परिच्युत्य स्वतत्त्वे विशेषेण रूढमार्गाणां[9] सतामिन्द्रियानिन्द्रियविषयभूतेष्वर्थेषु, रागद्वेषपूर्वकविकाराभावान्निर्विकारावबोधस्वभावः समभावश्चारित्रं[10] तदात्वायतिरमणीयमनणीयसोऽपुनर्भवसौख्यस्यैकबीजम् । इत्येष त्रिलक्षणो मोक्षमार्गः पुरस्तान्निश्चयव्यवहाराभ्यां व्याख्यास्यते । इह तु सम्यग्दर्शनज्ञानयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां नवपदार्थानामुपोद्घातहेतुत्वेन सूचित इति ॥

[१०८] पदार्थानां नामस्वरूपाभिधानमेतत् । जीवः, अजीवः, पुण्यं, पापं, आस्रवः, संवरो, निर्जरा, बन्धः, मोक्ष इति नवपदार्थानां नामानि । तत्र चैतन्यलक्षणो जीवास्तिकाय एवेह जीवः । चैतन्याभावलक्षणोऽजीवः । स पञ्चधा पूर्वोक्त एव पुद्गलास्तिकः, आकाशास्तिकः, धर्मास्तिकः, अधर्मास्तिकः, कालद्रव्यञ्चेति । इमौ हि जीवाजीवौ पृथग्भूताऽस्तित्वनिर्वृत्तत्वेन भिन्नस्वभावभूतौ मूलपदार्थौ । जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ताः सप्ताऽन्ये च पदार्थाः । शुभपरिणामो[11] जीवस्य, तन्निमित्तः[12] कर्मपरिणामः[13] पुद्गलानाञ्च पुण्यम् । अशुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानाञ्च पापम् । मोहरागद्वेषपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानाञ्चास्रवः । मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानाञ्च संवरः । कर्मवीर्यशातनसमर्थो वहिरङ्गान्तरङ्गतपोभिर्वृंहित[14]शुद्धोपयोगो जीवस्य, तदनुभाव[15]नीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानाञ्च निर्जरा । मोहरागद्वेषस्निग्धपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तेन कर्मत्वपरिणतानां जीवेन

---

१ स्वात्मोपलब्धिरूपस्य. २ शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबन्धस्य. ३ कथंभूतं सम्यग्दर्शनं शुद्धचैतन्यस्वरूपात्मतत्वविनिश्चयबीजम्. ४ नवपदार्थानामेव. ५ यथा नौयानसंस्कारादिस्वरूपविपर्ययेणेत्यनेन नावि स्थितस्य स्वस्य गमनं न दृश्यते । अन्येषां स्थिरीभूतानां सर्वेषां वृक्षपर्वतादीनां गमनं दृश्यते । कुतः स्वसारादिस्वरूपविपर्ययात् । अनेन संस्कारादिस्वरूपविपर्य्ययेण अध्यवसीयमानानां निश्चीयमानानां, तथा मिथ्यादर्शनोदयात् स्वरूपविपर्ययेण गृहीतानां नवपदार्थानाम्. ६ पुनः तन्निवृत्तौ मिथ्यादर्शननिवृत्तौ सत्याम्. ७ सम्यग्निर्णयः. ८ कथंभूतं सम्यग्ज्ञानं मनाक् ज्ञानचेतनायाः प्रधानात्मतत्त्वोपलम्भबीजम्. ९ मार्ग आरूढानां तिष्ठतां. १० कथंभूतं चारित्रं तदात्वायतिरमणीयं वर्तमाने उत्तरकाले च रमणीयं सुखदायकं । पुनः कीदृशम् अनणीयसः अपुनर्भवसौख्यस्यैकबीजं । अनणीयसः महतः अपुनर्भवसौख्यस्य मोक्षस्य एकं बीजम् । ११ भावपुण्यम्. १२ तदेव भावपुण्यं निमित्तं कारणं यस्य सः. १३ कर्माष्टकपर्य्यायः द्रव्यपुण्यं. १४ वर्धित—. १५ तस्य शुद्धोपयोगस्य अनुभावं प्रभावं तेन कारणेन रसरहितानां समुपात्तकर्मपुद्गलानां च निर्जरा ज्ञातव्या.

सहान्योन्यसंमूर्च्छनं पुद्गलानाञ्च बन्धः । अत्यन्तशुद्धात्मोपलम्भो जीवस्य जीवेन सहात्यन्त-विश्लेषः कर्मपुद्गलानाञ्च मोक्ष इति ॥

अथ जीवपदार्थानां व्याख्यानं प्रपञ्चनार्थम् ।

[१०९] जीवस्वरूपोपदेशोऽयम् । जीवाः हि द्विविधाः । संसारस्था अशुद्धा निर्वृत्ताः शुद्धाश्च । ते खलूभयेऽपि चेतनस्वभावाः । चेतनपरिणामलक्षणेनोपयोगेन लक्षणीयाः । तत्र संसारस्था देहप्रवीचाराः । निर्वृत्ता अदेहप्रवीचारा इति ॥

[११०] पृथिवीकायादिपञ्चविधोद्देशोऽयम् । पृथिवीकायाः, अप्कायाः, तेजःकायाः, वायुकायाः, वनस्पतिकायाः, इत्येते पुद्गलपरिणामा बन्धवशाज्जीवानुसंश्रिताः । अवान्तरजातिभेदाद्बहुका अपि स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमभाजां जीवानां बहिरङ्गस्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तिभूताः कर्मफलचेतनाप्रधानत्वान्मोहबहुलमेव स्पर्शोपलम्भमुपपादयन्ति ॥

[१११–११२] पृथिवीकायिकादीनां पञ्चानामेकेन्द्रियत्वनियमोऽयम् । पृथिवीकायिकादयो हि जीवा स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सत्येकेन्द्रिया अमनसो भवन्तीति ॥

[११३] एकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वे दृष्टान्तोपन्यासोऽयम् । अण्डान्तर्लीनानां, गर्भस्थानां, मूर्च्छितानां च बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनेऽपि येन प्रकारेण जीवत्वं निश्चीयते, तेन प्रकारेणैकेन्द्रियाणामपि उभयेषामपि बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनस्य समानत्वादिति ॥

[११४] द्वीन्द्रियप्रकारसूचनेयम् । एते स्पर्शनरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसयोः परिच्छेत्तारो द्वीन्द्रिया अमनसो भवन्तीति ॥

[११५] त्रीन्द्रियप्रकारसूचनेयम् । एते स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसगन्धानां परिच्छेत्तारस्त्रीन्द्रिया अमनसो भवन्तीति ॥

[११६] चतुरिन्द्रियप्रकारसूचनेयम् । एते स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमात्, श्रोत्रेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसगन्धवर्णानां परिच्छेत्तारश्चतुरिन्द्रिया अमनसो भवन्तीति ॥

[११७] पञ्चेन्द्रियप्रकारसूचनेयम् । अथ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् नोइन्द्रियावरणोदये सति स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दानां परिच्छेत्तारः पञ्चेन्द्रिया अमनस्काः । केचित्तु नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमात् समनस्काश्च भवन्ति । तत्र देवमनुष्यनारकाः समनस्का एव, तिर्यञ्च उभयजातीया इति ॥

---

१ एकदेशसङ्क्षयः. २ एकत्र सम्बन्धित्वं द्रव्यबन्धः. ३ 'प्रपञ्चयति' इति वा पाठः. ४ संसारस्थाः, निर्वृत्ताः। तत्र संसारस्था अशुद्धा ज्ञातव्यास्तु पुनः निर्वृत्ताः शुद्धा ज्ञातव्या इत्यर्थः. ५ परीक्षणीयाः. ६ देहस्य प्रवीचारो भोगस्तेन सहिताः देहसहिता इत्यर्थः. ७ न देहप्रवीचारा अदेहप्रवीचारा इति समासः. ८ सर्वेषां चेत् विवक्षा पृथक् पृथक् एवं पृथिवीकायिकाः सप्तलक्षजातिका एवं अप् तेजः वायुरपि सप्तसप्तलक्षजातयः, वनस्पतीनां दशलक्षजातयः सन्ति। एवं पञ्चानां बहुका अवान्तरभेदा ज्ञातव्याः. ९ जीवत्वं निश्चीयते. १० एकेन्द्रियाणां अण्डमध्यादिवर्तिपञ्चेन्द्रियाणाञ्च.

[११८] इन्द्रियभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबन्धत्वेनोपसंहारोऽयम् । देवगतिनाम्नो देवायुषश्चोदयाद्देवा[1]स्ते च भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकनिकायभेदाच्चतुर्धा । मनुष्यगतिनाम्नो, मनुष्यायुषश्च उदयान्मनुष्याः[2] । ते कर्मभोगभूमिजभेदात् द्विविधाः । तिर्यग्गतिनाम्नस्तिर्यगायुषश्च उदयात्तिर्यञ्चस्[3]ते पृथिवीशम्बूकयूकोद्दंशजलचरोरगपक्षिपरिसर्पचतुष्पदादिभेदादनेकधा । नरकगतिनाम्नो, नरकायुषश्च उदयान्नारकाः[4] । ते रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमिजभेदात्सप्तधा । तत्र[5] देवमनुष्यनारकाः पञ्चेन्द्रिया एव । तिर्यञ्चस्तु केचन पञ्चेन्द्रियाः, केचिद्देवमनुष्यनारकाः पञ्चेन्द्रिया एव । तिर्यञ्चस्तु केचित्पञ्चेन्द्रियाः । केचिदेक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया अपीति ॥

[११९] गत्यायुर्नामोदयनिर्वृत्तत्वाद्देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वोद्योतनमेतत् । क्षीयते हि क्रमेणारब्धफलो गतिनामविशेषायुर्विशेषश्च जीवानाम् । एवमपि तेषां गत्यन्तरस्यायुरन्तरस्य[6] च कषायानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या[7] भवति बीजं[8] ततस्तदुचितमेव[9] । गत्यन्तरमायुरन्तरञ्च ते प्राप्नुवन्ति । एवं क्षीणाक्षीणाभ्यामपि पुनः पुनर्नवीभूताभ्यां गतिनामायुःकर्मभ्यामनात्मस्वभावभूताभ्यामपि चिरमनुगम्यमानाः[10] संसरन्त्यात्मानमचेतयमाना जीवा इति ॥

[१२०] उक्तजीवप्रपञ्चोपसंहारोऽयम् । एते ह्युक्तप्रकाराः सर्वे संसारिणो देहप्रवीचारा अदेहप्रवीचारा भगवन्तः सिद्धाः शुद्धा जीवाः । तत्र देहप्रवीचारत्वादेकप्रकारत्वेऽपि संसारिणो द्विप्रकाराः । भव्या अभव्याश्च । ते शुद्धस्वरूपोपलम्भशक्तिसद्भावासद्भावाभ्यां पाच्यापाच्यमुद्गवदभिधीयन्त इति ॥

[१२१] व्यवहारजीवत्वैकान्तप्रतिपत्तिनिरासोऽयम् । य इमे एकेन्द्रियादयः पृथिवीकायिकादयश्चानादिजीवपुद्गलपरस्परावगाहमवलोक्य, व्यवहारनयेन जीवप्राधान्याज्जीवा इति प्रज्ञाप्यन्ते । निश्चयनयेन तेषु[11] स्पर्शनादीन्द्रियाणि, पृथिव्यादयश्च कायाः जीवलक्षणभूतचैतन्यस्वभावाभावान्न जीवा भवन्तीति । तेष्वेव[12] स्वपरपरिच्छित्तिरूपेण प्रकाशमानं ज्ञानं तदेव गुणगुणिनोः कथञ्चिदभेदाज्जीवत्वेन प्ररूप्यत इति ॥

[१२२] अन्यासाधरणजीवकार्यख्यापनमेतत् । चैतन्यस्वभावत्वात्कर्तृस्थायाः क्रियायाः[13] ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्त्ता न तत्संबन्धः[14] पुद्गलो यथाकाशादि । सुखाभिलाषक्रियायाः दुःखोद्वेगक्रियायाः स्वसंवेदितहिताहितनिर्वर्तनक्रियायाश्च चैतन्यविवर्तनरूप[15]सङ्कल्पप्रभवत्वात्स[16] एव कर्त्ता नान्यः । शुभाशुभकर्मफलभूताया इष्टानिष्टविषयोपभोगक्रियायाश्च सुखदुःखस्वरूपस्वपरिणामक्रियाया इव स एव कर्त्ता नान्यः । एतेना[17]साधारणकार्यानुमेयत्वं पुद्गलव्यतिरिक्तस्यात्मनो द्योतितमिति ॥

[१२३] जीवाजीवव्याख्योपसंहारोपक्षेपसूचनेयम् । एवमनया दिशा व्यवहारनयेन कर्मग्रन्थ[18]-

---

१ अणिमादिगुणैर्दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः. २ मनसा निपुणा मनसा उत्कृष्टा वा मनुष्या मनुष्या वा. ३ तिरोऽञ्चतीति तिर्यङ् । तिरस् शब्दस्य वक्रवाचिनः ग्रहणात्. ४ नरान् प्राणिनः कायति कदर्थयतीति नरकं कर्म तदुदयात् जाताः नारकाः । अथवा नरान् अज्ञानिनः कायति घातयति खण्डीकरोतीति नरकं कर्म तदुदयाज्जाता नारकाः. ५ चतुर्गत्यादिभेदेषु. ६ अविद्यमानात् आयुषः अन्यत् इति आयुरन्तरं तस्य. ७ कर्मभिः आत्मानं लिम्पतीति लेश्या आत्मप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या इति. ८ कारणं. ९ तेषां जीवानां लेश्याया वा उचितं योग्यम्. १० प्राप्यमाणाः. ११ संसारिजीवेषु. १२ इन्द्रियकायेषु. १३ कथंभूतायाः क्रियायाः कर्तृस्थायाः । कर्तरि तिष्ठति इति कर्तृस्था, तस्याः कर्तृस्थायाः. १४ अनादिकर्मबन्धत्वात् तत्संबन्धः जीवसंबन्धः पुद्गलः कथ्यते । स पुद्गलो ज्ञप्तिक्रियायाश्च कर्त्ता दृशिक्रियायाश्च नेति तात्पर्यम्. १५ पर्यायरूपः. १६ जीवः. १७ ज्ञप्तेर्दृशेश्च क्रियायाः कर्त्ता न स्यादित्यनेन. १८ गोमटसारादिकर्मग्रन्थाः संप्रति विद्यन्त एव । वा अन्या अपि कर्मपद्धतयः सन्त्येव तैः प्रतिपादितः.

प्रतिपादितजीवगुणमार्गणास्थानादिप्रपञ्चितविचित्रविकल्परूपैः, निश्चयनयेन मोहरागद्वेषपरिणतिसम्पादितविश्वरूपत्वात्कदाचिदशुद्धैः कदाचित्तदभावाच्छुद्धैश्चैतन्यविवर्तग्रन्थिरूपैर्बहुभिः पर्य्यायैः जीवमधिगच्छेत्। अधिगम्य चैवमचैतन्यस्वभावत्वात् ज्ञानादर्थान्तरभूतैरितैः प्रपञ्चमानैर्लिङ्गैर्जीवसंबद्धमसंबद्धं वा स्वतो भेदबुद्धिप्रसिद्ध्यर्थमजीवमधिगच्छेदिति ॥

इति जीवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

अथाजीवपदार्थव्याख्यानम्।

[१२४] आकाशादीनामेव जीवत्वे हेतूपन्यासोऽयम्। आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु चैतन्यविशेषरूपा जीवगुणा नो विद्यन्ते। आकाशादीनां तेषामचेतनत्वसामान्यत्वात्। अचेतनत्वसामान्यञ्चाकाशादीनामेव। चेतनता जीवस्यैव। चेतनत्वसामान्यादिति ॥

[१२५] आकाशादीनामचेतनत्वसामान्ये पुनरनुमानमेतत्। सुखदुःखज्ञानस्य हितपरिकर्मणोऽहितभीरुत्वस्य चेति, चैतन्यविशेषाणां नित्यमनुपलब्धेरविद्यमानचैतन्यसामान्या एवाकाशादयोऽजीवा इति ॥

[१२६–१२७] जीवपुद्गलयोः संयोगेऽपि भेदनिबन्धनस्वरूपाख्यानमेतत्। यत्खलु शरीरशरीरिसंयोगेन स्पर्शरसगुणगन्धवर्णत्वाच्छब्दत्वात्संस्थानसङ्घातादिपर्य्यायपरिणतत्वाच्च, इन्द्रियग्रहणयोग्यं तत्पुद्गलद्रव्यम्। यत्पुनः स्पर्शरसगन्धवर्णगुणत्वादशब्दत्वादनिर्दिष्टसंस्थानत्वादव्यक्तत्वादिपर्य्यायैः परिणतत्वाच्च नेन्द्रियग्रहणयोग्यम्, तच्चेतनागुणत्वात् रूपिभ्योऽरूपिभ्यश्चाजीवेभ्यो विशिष्टं जीवद्रव्यम्। एवमिह जीवाजीवयोर्द्वयोर्वास्तवो भेदः सम्यग्ज्ञानानां मार्गप्रसिद्ध्यर्थं प्रतिपादित इति ॥

इति अजीवपदार्थव्याख्यानं पूर्णम्।

[१२८] उक्तौ मूलपदार्थौ। अथ संयोगपरिणामनिर्वृत्तेतरसप्तपदार्थानामुपोद्घातार्थं जीवपुद्गलकर्मचक्रमनुवर्ण्यते ॥

[१२८–१२९–१३०] इह हि संसारिणो जीवादनादिबन्धनोपाधिवशेन स्निग्धः परिणामो भवति। परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म। कर्मणो नारकादिगतिषु गतिः। गत्यधिगमनाद्देहः। देहादिन्द्रियाणि। इन्द्रियेभ्यो विषयग्रहणं। विषयग्रहणाद्रागद्वेषौ। रागद्वेषाभ्यां पुनः स्निग्धः परिणामः। परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म। कर्मणः पुनर्नारकादिगतिषु गतिः। गत्यधिगमनात्पुनर्देहः। देहात्पुनरिन्द्रियाणि। इन्द्रियेभ्यः पुनर्विषयग्रहणं। विषयग्रहणात्पुनारागद्वेषौ। रागद्वेषाभ्यां पुनरपि स्निग्धः परिणामः। एवमिदमन्योन्यकार्य्यकारणभूतजीवपुद्गलपरिणामात्मकं कर्मजालं संसारचक्रजीवस्यानाद्यनिधनं सादिसनिधनं वा चक्रवत्परिवर्तते। तदत्र पुद्गलपरिणामनिमित्तो जीवपरिणामो जीवपरिणामनिमित्तः पुद्गलपरिणामश्च वक्ष्यमाणपदार्थबीजत्वेन संप्रधारणीय इति ॥

---

१ तेषां रागद्वेषमोहादीनामभावात्. २ इतः परं कथ्यमानैः. ३ शीर्यतेऽनेनात्मा तत् शरीरम्। शरीरसंयोगे सति समचतुरस्रादिषु स्थानपर्य्यायपरिणतत्वात्. ४ वज्रऋषभसंहननादिपर्य्यायपरिणतं तदपि पुद्गलमेव। अतएव इन्द्रियपरिणतं तदपि पुद्गलमेव। अतएव इन्द्रियग्रहणयोग्यम्. ५ आकाररहितत्वात्, अतएव आत्मनि आकारो वर्ण्यते. ६ ज्ञानस्य अगुरुलघुकैः पर्य्यायैः परिणतत्वात्. ७ पुद्गलेभ्यः. ८ धर्मादिभ्यः. ९ वस्तुसंबन्धी भेदः. १० उदाहरणार्थम्.

अथ पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम्।

[१३१] पुण्यपापयोग्यभावस्वभावख्यापनमेतत्। इह हि दर्शनमोहनीयविपाककलुषपरिणामता मोहः। विचित्रचारित्रमोहनीयविपाकप्रत्यये प्रीत्यप्रीती रागद्वेषौ। तस्यैव मन्दोदये विशुद्धपरिणामता चित्तप्रसादपरिणामः। एवमिमे यस्य भावे भवन्ति, तस्यावश्यं भवति शुभोऽशुभो वा परिणामः। तत्र यत्र प्रशस्तरागश्चित्तप्रसादश्च तत्र शुभः परिणामः। यत्र मोहद्वेषावप्रशस्तरागश्च तत्राऽशुभ इति॥

[१३२] पुण्यपापस्वरूपाख्यानमेतत्। जीवस्य कर्तुः निश्चयकर्मतापन्नः शुभपरिणामो द्रव्यपुण्यस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भवति भावपुण्यम्। एवं जीवस्य कर्तुर्निश्चयकर्मतामापन्नोऽशुभपरिणामो द्रव्यपापस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापम्। पुद्गलस्य कर्तृनिश्चयकर्मतामापन्नो विशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपुण्यम्। पुद्गलस्य कर्तृनिश्चयकर्मतामापन्नोऽविशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवाऽशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपापम्। एवं व्यवहारनिश्चयाभ्यामात्मनो मूर्तममूर्तञ्च कर्म प्रज्ञापितमिति॥

[१३३] मूर्तकर्मसमर्थनमेतत्। यतो हि कर्मणां फलभूतः सुखदुःखहेतुविषयो मूर्तो, मूर्तैरिन्द्रियैर्जीवेन नियतं भुज्यते। ततः कर्मणां मूर्तत्वमनुमीयते। तथाहि—मूर्तं कर्म मूर्तसंवन्धेनानुभूयमानं मूर्तफलत्वादाखुविषवदिति॥

[१३४] मूर्तकर्मणोरमूर्तजीवमूर्तकर्मणोश्च वन्धप्रकारसूचनेयम्। इह हि संसारिणि जीवेऽनादिसंतानेन प्रवृत्तमास्ते मूर्तकर्म। तत्स्पर्शादिमत्त्वादागामि मूर्तकर्म स्पृशति। ततस्तन्मूर्तं तेन सह स्नेहगुणवशाद्वन्धनमनुभवति। एष मूर्तयोः कर्मणोर्वन्धप्रकारः। अथ निश्चयनयेनाऽमूर्तो जीवोऽनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन्, विशिष्टतया मूर्तानि कर्माण्यवगाहते। तत्परिणामनिमित्तलब्धात्मपरिणामैः मूर्तकर्मभिरपि विशिष्टतयाऽवगाह्यते च। अयं त्वन्योन्यावगाहात्मको जीवमूर्तकर्मणोर्वन्धप्रकारः। एवममूर्तस्यापि जीवस्य मूर्तेन पुण्यपापकर्मणा कथञ्चिद्वन्धो न विरुध्यते॥

इति पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम्।

अथास्रवपदार्थव्याख्यानम्।

[१३५] पुण्यास्रवस्वरूपाख्यानमेतत्। प्रशस्तरागोऽनुकम्पापरिणतिः चित्तस्याकलुषत्वञ्चेति त्रयः शुभा भावाः। द्रव्यपुण्यास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपुण्यास्रवः। तन्निमित्तः शुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपुण्यास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपुण्यास्रवः। तन्निमित्तः शुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपुण्यास्रव इति॥

[१३६] प्रशस्तरागस्वरूपाख्यानमेतत्। अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे व्यवहारचारित्रानुष्ठाने वासनाप्रधाना चेष्टा। गुरूणामाचार्यादीनां रसिकत्वेनानुगमनम्। एषः प्रशस्तो रागः प्रशस्तविषयत्वात्।

---

१ निर्मलपरिणामः. २ परिणामयोर्मध्ये. ३ यस्मिन् जीवे. ४ अशुद्धनिश्चयनयेन. ५ पूर्वं. ६ समीचीनप्रवृत्तयः. ७ द्रव्यकर्म—. ८ मूषकविषवत्. ९ आगामिमूर्तकर्म—. १० निश्चयनयेन जीवः अमूर्तोऽस्ति परन्तु अनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन् विशिष्टतया मूर्तानि कर्माणि अवगाहते.

अयं[1] हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्राधान्यस्य ज्ञानिनो भवति । उपरितनभूमिका[2]यामलब्धास्पदस्या[3]स्थानरागनिषेधार्थं[4] तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचि[5]ज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥

[१३७] अनुकम्पास्वरूपाख्यानमेतत् । कश्चिदुदन्या[6]दिदुःखप्लुत[7]मवलोक्य करुणया तत्प्रति[8]चिकीर्षाकुलितचित्तत्वमज्ञानिनोऽनुकम्पा । ज्ञानिनस्त्वधस्तनभूमिकासु विहरमाणस्य जन्मार्णवनिमग्नजगदवलोकनान्मनाग्मनःखेदं[9] इति ॥

[१३८] चित्तकलुषत्वस्वरूपाख्यानमेतत् । क्रोध-मान-मायालोभानां तीव्रोदये चित्तस्य क्षोभः कालुष्यम् । तेषामे[10]व मन्दोदये तस्य[11] प्रसादो[12]ऽकालुष्यम् । तत्[13] कादाचित्कविशिष्टकषायक्षयोपशमे सत्यज्ञानिनोऽपि भवति । कषायोदयानुवृत्तेरसमग्र[14]व्यावर्तितोपयोगस्यावान्तरभूमिकासु कदाचित् ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥

[१३९] पापास्रवस्वरूपाख्यानमेतत् । प्रमादबहुलचर्यापरिणतिः, कालुष्यपरिणतिः, विषयलौल्यपरिणतिः, परपरितापपरिणतिः, परापवादपरिणतिश्चेति पञ्चाशुभा भावा द्रव्यपापास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापास्रवः । तन्निमित्तोऽशुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपापास्रव इति ॥

[१४०] पापास्रवभूतभावप्रपञ्चाख्यानमेतत् । तीव्रमोहविपाकप्रभवा आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्तीव्रकषायोदयानुरञ्जितयोगप्रवृत्तिरूपाः कृष्णनीलकपोतलेश्यास्तिस्रः । रागद्वेषोदयप्रकर्षादिन्द्रियाधीनत्वरागद्वेषोद्रेकात्प्रियसंयोगाऽप्रियवियोगवेदनामोक्षणनिदानाकाङ्क्षणरूपमार्तं । कषायक्रूराशयत्वाद्धिंसा[15]ऽसत्यास्तेयविषयसंरक्षणानन्दरूपं रौद्रम् । नैष्कर्म्ये[16]न्तु शुभकर्मण[17]श्चान्यत्र दुष्टतया प्रयुक्तं ज्ञानम् । सामान्येन दर्शनचारित्रमोहनीयोदयोपजनिताविवेकरूपो मोहः । एषः भावपापास्रवप्रपञ्चो द्रव्यपापास्रवप्रपञ्चप्रदो भवतीति ॥

इति आस्रवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ संवरपदार्थव्याख्यानम् ।

[१४१] अनन्तरत्वा[18]त्पापस्यैव संवराख्यानमेतत् । मार्गो हि संवरस्तन्निमित्तमिन्द्रियाणि कषायाश्च संज्ञाश्च यावतांशेन यावन्तं वा कालं निगृह्यन्ते तावतांशेन तावन्तं वा कालं पापास्रवद्वारं पिधीयते । इन्द्रियकषायसंज्ञाः भावपापास्रवो द्रव्यपापास्रवहेतुः पूर्वमुक्तः । इह तन्निरोधो[19] भावपापसंवरो द्रव्यपापसंवरहेतुरवधारणीय इति ॥

[१४२] सामान्यसंवरस्वरूपाख्यानमेतत् । यस्य रागरूपो द्वेषरूपो मोहरूपो वा समग्रपरद्रव्येषु न हि विद्यते भावः तस्य निर्विकारचैतन्यत्वात्समसुखदुःखस्य भिक्षोः शुभमशुभञ्च कर्म नास्रवति ।

---

१ प्रशस्तरागः. २ उपरितनशुद्धवीतरागदशायां, वा उपरितनगुणस्थानेषु. ३ अप्राप्तस्थानस्याज्ञानिनः इत्यर्थः. ४ अयोग्यदेवादिपदार्थेषु रागनिषेधार्थं. ५ कदाचित्प्रशस्तरागो भवति. ६ उदन्या तृषा इत्यर्थः. ७ पीडितम्. ८ तृष्णादिविनाशकप्रतीकारः. ९ अनुकम्पा भवति. १० क्रोधमानमायालोभानाम्. ११ तस्य चित्तस्य. १२ प्रसन्नता निर्मलता. १३ तत् अकालुष्यम्. १४ अपरिपूर्ण—. १५ हिंसानन्दं, असत्यानन्दं, स्तेयानन्दं, विषयसंरक्षणानन्दं । इति चतुर्द्धा रौद्रं भवति. १६ प्रयोजनं विना. १७ शुभकर्म त्यक्त्वा अन्यत्र प्रयुक्तं ज्ञानमित्यर्थः. १८ आस्रवादनन्तरं. १९ इन्द्रियादीनां निरोधः.

किन्तु संव्रियत एव । तदत्र मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो भावसंवरः । तन्निमित्तः शुभाशुभकर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यसंवर इति ॥

[१४३] विशेषेण संवरस्वरूपाख्यानमेतत् । यस्य योगिनो विरतस्य सर्वतो निवृत्तस्य योगे वाङ्मनःकायकर्माणि शुभपरिणामरूपं पुण्यमशुभपरिणामरूपं पापञ्च यदा न भवति तस्य तदा शुभाशुभभावकृतस्य द्रव्यकर्मणः संवरः[1] स्वकारणभावात्प्रसिध्यति । तदत्र शुभाशुभपरिणामनिरोधो भावपुण्यपापसंवरो द्रव्यपुण्यपापसंवरस्य हेतुः प्रधानोऽवधारणीय इति ॥

इति संवरपदार्थज्ञानं समाप्तम् ।

अथ निर्जरापदार्थव्याख्यानम् ।

[१४४] निर्जरास्वरूपाख्यानमेतत् । शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः । शुद्धोपयोगः । ताभ्यां युक्तस्तपोभिरनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्याशनकायक्लेशादिभेदाद्बहिरङ्गैः प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदादन्तरङ्गैश्च बहुविधैर्यश्चेष्टते स खलु बहूनां कर्मणां निर्जरणं करोति । तदत्र कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरङ्गतपोभिर्बृंहितः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा । तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानां द्रव्यनिर्जरेति ॥

[१४५] मुख्यनिर्जराकारणोपन्यासोऽयम् । यो हि संवरेण शुभाशुभपरिणामपरमनिरोधेन युक्तः परिज्ञातवस्तुस्वरूपः परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्तबुद्धिः केवलं स्वप्रयोजनसाधनोद्यतमनाः आत्मानं स्वोपलम्भेनोपलभ्य गुणगुणिनोर्[2]वस्तुत्वेनाभेदात्तमेव ज्ञानं स्वं स्वेनाविचलितमनास्संचेतयते स खलु नितान्तनिस्स्नेहः[3] प्रहीणस्नेहाभ्यङ्गपरिष्वङ्गशुद्धस्फटिकस्तम्भवत् पूर्वोपात्तं कर्मरजः संधुनोति[4] । एतेन[5] निर्जरामुख्यत्वे हेतुत्वं ध्यानस्य द्योतितमिति ॥

[१४६] ध्यानस्वरूपाभिधानमेतत् । शुद्धस्वरूपे विचलितचैतन्यवृत्तिर्हि ध्यानम् । अथास्यात्मलाभविधिरभिधीयते । यदा खलु योगी दर्शनचारित्रमोहनीयविपाकपुद्गलकर्मत्वात् कर्मसु संहृत्य, तदनुवृत्तेः व्यावृत्त्योपयोगममुह्यन्तमरज्यन्तमद्विषन्तं चात्यन्तशुद्ध एवात्मनि निष्कम्पं निवेशयति, तदास्य निष्क्रियचैतन्यरूपविश्रान्तस्य वाङ्मनःकायानभावयतः स्वकर्मस्वव्यापारयतः सकलशुभाशुभकर्मेन्धनदहनसमर्थत्वात् अग्निकल्पं, परमपुरुषार्थसिद्धयुपायभूतं ध्यानं जायते इति । तथा चोक्तम्:—

"[6]अज्जवि तिरियण शुद्धा, अप्पा झाए वि लहइ इंदत्तं ।
लोयंति य देवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ॥ १ ॥
अंतो णत्थि सुँईणं[7] कालो थोओ वयं च दुम्मेहा ।
तण्णवरिसिक्खियव्वं जं जरमरणं खइं कुणइ" ॥ २ ॥

इति निर्जरापदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

---

१ संवरो भवति. २ ज्ञानादि आत्मनः गुणाः, आत्मा गुणी तयोः. ३ अतिशयेन रागद्वेषमोहरहितः. ४ निराकरोति. ५ कथनेन.

६ आर्या अपि तिर्यञ्चः, शुद्धात्मध्यानेऽपि लभन्ते इन्द्रत्वम् ।
लोकान्ते च देवत्वं, तत्र च्युता निर्वृतिं यान्ति ॥ १ ॥ इति च्छाया ।

७ अन्तो नास्ति श्रुतीनां, कालः स्तोको वयं च दुर्मेधाः ।
तत् परिशिक्षितव्यं, यत् जरामरणक्षयं करोति ॥ २ ॥ इति च्छाया ।

स्थितत्वेन। स खलु स्वकं चरति जीवः। यतो हि दृशिज्ञप्तिस्वरूपे पुरुषे तन्मात्रत्वेन वर्तनं स्वचरितमिति ॥

[१५९] शुद्धस्वचरितप्रवृत्तिपथप्रतिपादनमेतत्। यो हि योगीन्द्रः समस्तमोहव्यूहबहिर्भूतत्वात्परद्रव्यस्वभावभावरहितात्मा सन्, स्वद्रव्यमेवाभिमुख्येनानुवर्तमानः स्वस्वभावभूतं दर्शनज्ञानविकल्पमप्यात्मनोऽविकल्पत्वेन चरति, स खलु स्वकं चरितं चरति। एवं हि शुद्धद्रव्याश्रितमभिन्नसाध्यसाधनभावं निश्चयनयमाश्रित्य मोक्षमार्गप्ररूपणम् ॥

[१६०–१६१] यत्तु पूर्वमुद्दिष्टं तत्स्वपरप्रत्ययपर्य्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्य प्ररूपितम्। न चैतद्विप्रतिषिद्धनिश्चयव्यवहारयोः साध्यसाधनभावत्वात्सुवर्णसुवर्णपाषाणवत्। अत एवोभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थप्रवर्तनेति ॥

[१६२] निश्चयमोक्षमार्गसाधनभावेन पूर्वोद्दिष्टव्यवहारमोक्षमार्गनिर्देशोऽयम्। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तत्र धर्मादीनां द्रव्यपदार्थविकल्पवतां तत्त्वार्थश्रद्धानभावस्वभावं भावान्तरं श्रद्धानाख्यं सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धाननिर्वृत्तौ सत्यामङ्गपूर्वगतार्थपरिच्छित्तिर्ज्ञानम्। आचारादिसूत्रप्रपञ्चितविचित्रयतिवृत्तसमस्तसमुदयरूपे तपसि चेष्टा चर्य्या। इत्येषः स्वपरप्रत्ययपर्य्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो मोक्षमार्गः। कार्तस्वरपाषाणार्पितदीप्तजातवेदोवत्समाहितान्तरङ्गस्य प्रतिपदमुपरितनशुद्धभूमिकासु परमरम्यासु विश्रान्तिमभिन्नां निष्पादयन्, जात्यकार्तस्वरस्येव शुद्धजीवस्य कथंचिद्भिन्नसाध्यसाधनभावाभावात्स्वयंसिद्धस्वभावेन विपरिणममानस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य साधनभावमापद्यत इति ॥

[१६३] व्यवहारमोक्षमार्गसाध्यभावेन निश्चयमोक्षमार्गोपन्यासोऽयम्। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहित आत्मैव जीवस्वभावनियतचरित्रत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्गः। अथ खलु कथञ्चनानाद्यविद्याव्यपगमाद्व्यवहारमोक्षमार्गमनुपपन्नो धर्मादितत्त्वार्थाश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थाज्ञानातपश्चेष्टानां धर्मादितत्त्वार्थश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थज्ञानतपश्चेष्टानाञ्च त्यागोपादानाय प्रारब्धविविक्तभावव्यापारः, कुतश्चिदुपादेयत्यागे त्याज्योपादाने च पुनः प्रवर्तितप्रतिविधानाभिप्रायो यस्मिन्यावतिकाले विशिष्टभावनासौष्ठववशात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः स्वभावभूतैः सममङ्गाङ्गिभावपरिणत्या तत्समाहितो भूत्वा त्यागोपादानविकल्पशून्यत्वाद्विश्रान्तभावव्यापारः सुनिःप्रकम्पः अयमात्मावतिष्ठते। तस्मिन् तावति काले अयमेवात्मा जीवस्वभावनियतचरितत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्ग इत्युच्यते। अतो निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधनभावो नितरामुपपन्नः ॥

[१६४] आत्मनश्चारित्रज्ञानदर्शनत्वद्योतनमेतत्। यः खल्वात्मानमात्ममयत्वादनन्यमयमात्मना चरति। स्वभावनियतास्तित्वेनानुवर्त्तते। आत्मना जानाति। स्वप्रकाशकत्वेन चेतयते। आत्मना पश्यति। याथातथ्येनावलोकयते। स खल्वात्मैव चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति। कर्तृकर्मकरणानामभेदान्निश्चितो भवति। अतश्चारित्र–ज्ञानदर्शनरूपत्वाज्जीवस्वभावनियतचरितत्व–लक्षणं निश्चयमोक्षमार्गत्वमात्मनो नितरामुपपन्न इति ॥

[१६५] सर्वस्यात्मनः संसारिणो मोक्षमार्गार्हत्वनिरासोऽयम्। इह हि स्वभावप्रातिकूल्याभावहेतुकं सौख्यं। आत्मनो हि दृग्–ज्ञप्ती स्वभावस्तयोर्विषयप्रतिबन्धः प्रातिकूल्यं। मोक्षे खल्वात्मनः सर्वं

---

१ सन्मुखीभूत्वा. २ पुनः तदग्रे प्रतिपाद्यते.

विजानतः पश्यतश्च तदभावः। ततस्तद्धेतुकस्यानाकुलत्वलक्षणस्य परमार्थसुखस्य मोक्षेऽनुभूतिरचलिताऽस्ति। इत्येतद्भव्य एव भावतो विजानाति। ततस्स एव मोक्षमार्गार्हो नैतदभव्यः श्रद्धत्ते। ततः स मोक्षमार्गानर्ह एव इति॥ अतः कतिपये एव संसारिणो मोक्षमार्गार्हा न सर्व एवेति॥

[१६६] दर्शनज्ञानचारित्राणां कथंचिद्बन्धहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य साक्षान्मोक्षहेतुताद्योतनमेतत्। अमूनि हि दर्शनज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या संवलितानि कृशानुसंवलितानीव घृतानि कथञ्चिद्विरुद्धकारणत्वरूढेर्बन्धकारणान्यपि भवन्ति। यदा तु समस्तपरसमयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपया स्वसमयप्रवृत्त्या सङ्गच्छते, तदा निवृत्तकृशानुसंवलनानीव घृतानि विरुद्धकार्यकारणाभावाऽभावात्साक्षान्मोक्षकारणान्येव भवन्ति। ततः स्वसमयप्रवृत्तिनाम्नो जीवस्वभावनियतचरितस्य साक्षान्मोक्षमार्गत्वमुपपन्नमिति॥

[१६७] सूक्ष्मपरसमयस्वरूपाख्यानमेतत्। अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तिबलानुरञ्जिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः। अथ खल्वज्ञानलवावेशाद्यदि यावज्ज्ञानवानपि ततः शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्तते तदा तावत्सोऽपि रागलवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते। अथ न किं पुनर्निरङ्कुशरागकलिकलङ्कितान्तरङ्गवृत्तिरितरो जन इति॥

[१६८] उक्तशुद्धसंप्रयोगस्य कथञ्चिद्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिरासोऽयम्। अर्हदादिभक्तिसंपन्नः कथञ्चिच्छुद्धसंप्रयोगोऽपि सन् जीवो जीवद्रागलवत्वाच्छुभोपयोगतामजहन्, बहुशः पुण्यं बध्नाति; न खलु सकलकर्मक्षयमारभते। ततः सर्वत्र रागकणिकाऽपि परिहरणीया। परसमयप्रवृत्तिनिबन्धनत्वादिति॥

[१६९] स्वसमयोपलम्भाभावस्य रागैकहेतुत्वद्योतनमेतत्। यस्य खलु रागरेणुकणिकाऽपि जीवति हृदये न नाम स समस्तसिद्धान्तसिन्धुपारगोऽपि निरुपरागशुद्धस्वरूपं स्वसमयं चेतयते। ततः स्वसमयसिध्यर्थं पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायमभिदधताऽर्हदादिविषयेऽपि क्रमेण रागरेणुरपसारणीय इति॥

[१७०] रागलवमूलदोषपरंपराख्यापनमेतत्। इह खल्वर्हदादिभक्तिरपि न रागानुवृत्तिमन्तरेण भवति। रागाद्यनुवृत्तौ च सत्यां बुद्धिप्रसरमन्तरेणात्मा न तत्कथंचनाऽपि धारयितुं शक्येत। बुद्धिप्रसारे च सति शुभस्याशुभस्य वा कर्मणो न निरोधोऽस्ति। ततो रागकलिविलासमूल एवायमनर्थसन्तान इति॥

[१७१] रागकलिनिःशेषीकरणस्य करणीयत्वाख्यानमेतत्। यतो रागाद्यनुवृत्तौ चित्तोद्भ्रान्तिः, चित्तोद्भ्रान्तौ कर्मबन्ध इत्युक्तम्। ततः खलु मोक्षार्थिना कर्मबन्धमूलचित्तोद्भ्रान्तिमूलभूता रागाद्यनुवृत्तिरेकान्तेन निःशेषीकरणीया। निःशेषितायां तस्यां प्रसिद्धनैःसङ्ग्यनैर्मल्यशुद्धात्मद्रव्यविश्रान्तिरूपां पारमार्थिकीं सिद्धभक्तिमनुबिभ्राणः प्रसिद्धः स्वसमयप्रवृत्तिर्भवति। तेन कारणेन स एव निःशेषितकर्मबन्धः सिद्धिमवाप्नोतीति॥

[१७२] अर्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तौ साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परम्परया मोक्षहेतुत्वसद्भावद्योतनमेतत्। यः खलु मोक्षार्थमुद्यतमनाः समुपार्जिताचिन्त्यसंयमतपोभारोऽप्यसंभावितपरमवैराग्यभूमिकाधिरोहणसमर्थप्रभुशक्तिः पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायभयेन नवपदार्थैः सहार्हदादिरुचिरूपां परसमयप्रवृत्तिं परित्यक्तुं नोत्सहते; स खलु न नाम साक्षान्मोक्षं लभते। किन्तु सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिरूपया परम्परया तमवाप्नोतीति॥

---

१ तन्नितरमाकर्षसाधन.। २ मोक्षम्.।

[१७३] अर्हदादिभक्तिमात्र–रागजनितसाक्षान्मोक्षस्यान्तरायद्योतनमेतत् । यः खल्वर्हदादिभक्तिविधेयबुद्धिः सन् परमसंयमप्रधानमतितीव्रं तपस्तप्यते; स तावन्मात्ररागकलिकलङ्कितस्वान्तः साक्षान्मोक्षस्यान्तरायीभूतं विषयविषद्रुमामोदमोहितान्तरङ्गं स्वर्गलोकं समासाद्य, सुचिरं रागाङ्गारैः पच्यमानोऽन्तस्ताम्यतीति ॥

[१७४] साक्षान्मोक्षमार्गसारसूचनद्वारेण शास्त्रतात्पर्योपसंहारोऽयम् । साक्षान्मोक्षमार्गपुरस्सरं हि वीतरागत्वम् । ततः खल्वर्हदादिगतमपि रागं चन्दननगसङ्गतमग्निमिव सुरलोकादिक्लेशप्राप्त्याऽत्यन्तमन्तर्दाहाय कल्पमानमाकलय्य साक्षान्मोक्षकामो महाजनः समस्तविषयमपि रागमुत्सृज्यात्यन्तवीतरागो भूत्वा समुच्छलद्दुःखसौख्यकल्लोलं कर्माग्नितप्तकलकलोदभारप्राग्भारभयङ्करं भवसागरमुत्तीर्य, शुद्धस्वरूपपरमामृतसमुद्रमध्यास्य[२] सद्यो निर्वाति[३] । अलं विस्तरेण । स्वस्ति साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति । द्विविधं किल तात्पर्यम् । सूत्रतात्पर्यं शास्त्रतात्पर्यञ्चेति । तत्र सूत्रतात्पर्यं किल प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम् । शास्त्रतात्पर्यं त्विदं प्रतिपाद्यते । अस्य खलु पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य सकलपुरुषार्थसारभूतमोक्षतत्वप्रतिपत्तिहेतोः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेनोपदर्शितसमस्तवस्तुस्वभावस्य, नवपदार्थप्रपञ्चसूचनाविष्कृतबन्धमोक्षसंबन्धिबन्धमोक्षायतनबन्धमोक्षविकल्पस्य, सम्यगावेदितनिश्चयव्यवहाररूपमोक्षमार्गस्य साक्षान्मोक्षकारणभूतपरमवीतरागत्वविश्रान्तसमस्तहृदयस्य परमार्थतो वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति। तदिदं वीतरागत्वम् व्यवहारनिश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमानं भवति समीहितसिद्धये न पुनरन्यथा । व्यवहारनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावमवलम्ब्यानादिभेदवासितबुद्धयः सुखेनैवावतरन्ति तीर्थं प्राथमिकाः । तथाहीदं श्रद्धेयमिदमश्रद्धेयमयं श्रद्धातेदं श्रद्धानमिदमश्रद्धानमिदं ज्ञेयमयं ज्ञातेदं ज्ञानमिदमज्ञानमिदं चरणीयमिदमचरणीयमिदमचरितमिदं चरणमिति कर्तव्याकर्तव्यकर्तृकर्मविभागावलोकनोल्लसितपेशलोत्साहाः। शनैःशनैर्मोहमल्लमुन्मूलयन्तः । कदाचिदज्ञानान्मदप्रमादतन्त्रतया शिथिलितात्माधिकारस्यात्मनो न्याय्यपथप्रवर्तनाय प्रयुक्तप्रचण्डदण्डनीतयः । पुनः पुनर्दोषानुसारेण दत्तप्रायश्चित्ताः सन्ततोद्युक्ताः सन्तोऽथ तस्यैवात्मनो भिन्नविषयश्रद्धानज्ञानचारित्रैरधिरोप्यमाणसंस्कारस्य भिन्नसाध्यसाधनभावस्य रजकशिलातलस्फाल्यमानविमलसलिलाप्लुतविहिताऽध्वपरिष्वङ्गमलिनवासस इव मनाङ्मनाग्विशुद्धिमधिगम्य निश्चयनयस्य भिन्नसाध्यसाधनभावभावाद्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहिततत्वरूपे विश्रान्तसकलक्रियाकाण्डाडम्बरनिस्तरङ्गपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवत्यात्मनि विश्रान्तिमासूचयन्तः क्रमेण समुपजातसमरसीभावाः परमवीतरागभावमधिगम्य, साक्षान्मोक्षमनुभवन्तीति । अथ ये तु केवलव्यवहारावलम्बिनस्ते खलु भिन्नसाधनभावाऽवलोकनेनाऽनवरतं नितरां खिद्यमाना मुहुर्मुहुर्धर्मादिश्रद्धानरूपाध्यवसायानुस्यूतचेतसः, प्रभूतश्रुतसंस्काराधिरोपितविचित्रविकल्पजालकल्माषितचैतन्यवृत्तयः, समस्तयतिवृत्तसमुदायरूपतपःप्रवृत्तिरूपकर्मकाण्डोड्डमराचलिताः, कदाचित्किञ्चिद्रोचमानाः, कदाचित्किञ्चिद्विकल्पयन्तः, कदाचित्किञ्चिदाचरन्तः, दर्शनाचरणाय कदाचित्प्रशाम्यन्तः, कदाचित्संविजमानाः[४], कदाचिदनुकम्प्यमानाः, कदाचिदास्तिक्यमुद्वहन्तः, शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सामूढदृष्टितानां व्युत्थापननिरोधाय नित्यबद्धपरिकराः, उपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनां भावयमाना, वारंवारमभिवर्धितोत्साहा, ज्ञानचरणाय स्वाध्यायकालमवलोकयन्तो, वहुधा विनयं प्रपञ्चयन्तः, प्रविहितदुर्द्धरोपधानाः, सुष्ठुबहुमानमातन्वन्तो, निह्नवापत्तिं नितरां निवारयन्तोऽर्थव्यञ्जनतदुभयशुद्धौ नितान्तसावधानाः, चारित्राच-

---

१ वाहुल्य,— २ अवगाह्य. ३ निर्वाणं याति. ४ वैराग्यमानाः.

रणाय हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहसमस्तविरतिरूपेषु पञ्चमहाव्रतेषु तन्निष्ठवृत्तयः, सम्यग्योगनिग्रहलक्षणासु गुप्तिषु नितान्तं गृहीतोद्योगा, ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपासु समितिष्वत्यन्तनिवेशितप्रयत्नास्तप आचरणायानशनावमोदर्यप्रवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्याशनकायक्लेशेष्वभीक्ष्णमुत्सहमानाः, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यव्युत्सर्गस्वाध्यायध्यानपरिकरांकुशितस्वान्ता, वीर्याचरणाय कर्मकाण्डे सर्वशक्त्या व्याप्रियमाणाः, कर्मचेतनाप्रधानत्वाद्दूरनिवारिताऽशुभकर्मप्रवृत्तयोऽपि समुपात्तशुभकर्मप्रवृत्तयः, सकलक्रियाकाण्डाडम्बरोत्तीर्णदर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपां ज्ञानचेतनां मनागप्यसंभावयन्तः, प्रभूतपुण्यभारमन्थरितचित्तवृत्तयः, सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिपरम्परया सुचिरं संसारसागरे भ्रमन्तीति । उक्तञ्च—"चरणकरणप्पहाणा, ससमयपरमत्थमुक्कवावारा । चरणकरणस्स सारं, णिच्छयसुद्धं ण याणंति" येऽत्र केवलनिश्चयावलम्बिनः सकलक्रियाकर्मकाण्डाडम्बरविरक्तबुद्धयोऽर्धमीलितविलोचनपुटाः किमपि स्वबुद्ध्याऽवलोक्य यथासुखमासते; ते खल्ववधीरितभिन्नसाध्यसाधनभावा अभिन्नसाध्यसाधनभावमलभमाना अन्तराल एव प्रमादकादम्बरीमदभरालसचेतसो मत्ता इव, मूर्च्छिता इव, सुषुप्ता इव, प्रभूतघृतसितोपलपायसासादितसाहित्या इव, समुल्बणबलसञ्जनितजाड्या इव, दारुणमनो-भ्रंशविहितमोहा इव, मुद्रितविशिष्टचैतन्या वनस्पतय इव, मौनीन्द्रीं कर्मचेतनां पुण्यबन्धभयेनानवलम्बमाना अनासादितपरमनैष्कर्म्यरूपज्ञानचेतनाविश्रान्तयो व्यक्ताव्यक्तप्रमादतन्द्रा अरमागतकर्मफलचेतनाप्रधानप्रवृत्तयो वनस्पतय इव केवलं पापमेव बध्नन्ति । उक्तञ्च—"णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता । णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई" ॥ ये तु पुनरपुनर्भवाय नित्यविहितोद्योगमहाभागा भगवन्तो निश्चयव्यवहारयोरन्यतरानवलम्बनेनात्यन्तमध्यस्थीभूताः । शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्वविश्रान्तिविरचनोन्मुखाः प्रमादोदयानुवृत्तिनिर्वर्तिकां क्रियाकाण्डपरिणतिमाहात्म्यान्निवारयन्तोऽत्यन्तमुदासीना यथाशक्त्याऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मनि संचेतयमाना नित्योपयुक्ता निवसन्ति ते खलु स्वतत्त्वविश्रान्त्यनुसारेण क्रमेण कर्माणि सन्यसन्तोऽत्यन्तनिष्प्रमादा नितान्तनिष्कम्पमूर्तयो वनस्पतिभिरुपमीयमाना अविदूरनिरस्तकर्मफलानुभूतयः कर्मानुभूतिनिरुत्सुकाः केवलज्ञानानुभूतिसमुपजाततात्त्विकानन्दनिर्भरतरास्तरसा संसारसमुद्रमुत्तीर्य शब्दब्रह्मफलस्य शाश्वतस्य भोक्तारो भवन्तीति ॥

[१७५] कर्तुः प्रतिज्ञानिर्व्यूढिसूचिका समापनेयम् । मार्गो हि परमवैराग्यकरणप्रवणा पारमेश्वरी परमाज्ञा । तस्याः प्रभावनं प्रख्यापनद्वारेण प्रकृष्टपरिणतिद्वारेण वा समुद्योतनं । तदर्थमेव परमागमानुरागवेगप्रचलितमनसा संक्षेपतः समस्तवस्तुतत्त्वसूचकत्वादतिविस्तृतस्यापि प्रवचनसारस्य सारभूतं पञ्चास्तिकायसङ्ग्रहाभिधानं भगवत्सर्वज्ञोपज्ञत्वात् सूत्रमिदमभिहितं मयेति । अथैवं शास्त्रकारः प्रारब्धस्यान्तमुपगम्यात्यन्तं कृतकृत्यो भूत्वा परमनैष्कर्म्यरूपे शुद्धस्वरूपे विश्रान्त इति श्रद्धीयते । इति श्रीसमयव्याख्यायां नवपदार्थपुरस्सरमोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनात्मको द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ।

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥ १ ॥

इति पञ्चास्तिकायविधानस्य समयस्य व्याख्या समाप्ता ॥

---

१ ………………………………… ।
चरणस्य सारं, निश्चयशुद्धं न जानन्ति ॥ इति च्छाया ।

२ निश्चयमालम्बन्तो, निश्चयतो निश्चयं अजानन्तः ।
नाशयन्ति चरणकरणं, बाह्यचरणालसाः केऽपि ॥ इति च्छाया ।